वृक्षारोपण क्यों करें ?

दादा ने कहा कि आज जिन बड़े-बड़े वृक्षों को तुम देख रहे हो, वे कभी छोटे-छोटे पौधे थे। छोटे-छोटे पौधे ही बढ़ने पर वृक्ष बनते हैं। उसी तरह बनते हैं, जिस तरह छोटे-छोटे बालक बड़े होने पर, पूरी अवस्था के मनुष्य बनते हैं। इसीलिए तो कहा जाता है, छोटे-छोटे पौधों की प्रेम से सार-सँभाल करनी चाहिए।

तुम समझते होगे, अरे, ये तो साधारण वृक्ष हैं! नहीं, ये हमारे मित्र हैं, सबसे बड़े हितैषी हैं। इनकी रक्षा हमें उसी प्रकार करनी चाहिए, जिस प्रकार हम अपनी रक्षा करते हैं।

पूछ सकते हो, वृक्ष हमारे मित्र कैसे है ? वे हमारा क्या हित करते हैं? मैं पूछता हूँ, मित्र किसे कहते हैं? हितैषी कौन होता है ? वही न, जो दुख में साथ देता है, जो सच्चे मन से भलाई करता है।

वृक्ष यही करते हैं। जो लकड़ी जलाते हो, जिस लकड़ी से अपना घर, अपनी चारपाइयां, और अपने लिए मेज-कुर्सियाँ, पलंग और तख्त आदि बना होवे

वह लकड़ी किससे मिलती है ? वृक्षों से। यदि वृक्ष न होंगे तो फिर अपना घर, अपनी मेजें, अपनी कुर्सियाँ, अपनी चारपाइयाँ और अपने तख्त किस तरह बनाओगे? वृक्षों का यह उपकार मित्र और हितैषी के उपकार के समान ही तो है।

फूलों को देखकर तुम बड़े प्रसन्न होते हो ! फूलों से देवी-देवताओं की पूजा करते हो, स्वयं भी उनकी माला बनाकर पहनते हो। क्या तुम बता सकते हो, फूल कौन देता है ? पौधे और वृक्ष। पौधे और वृक्ष

बिना कुछ लिए हुए रंग-रंग के, हँसते-मुस्कराते हुए, सुगन्धित फूल देते हैं। पौधे और वृक्ष दूसरों की प्रसन्नता का कितना ध्यान रखते हैं।

प्रतिदिन बड़े आनन्द से मीठे-मीठे फल खाते हो। फलों का रस पीकर सदा स्फूर्तिवान् और स्वस्थ बने रहते हो। क्या कभी यह सोचा है, फल किससे मिलते हैं ? वृक्षों से। वृक्ष बिना कुछ लिए हुए, तरह-तरह के मीठे फल देते हैं। वृक्ष बड़े दानी, बड़े परोपकारी होते हैं। ये अपने मीठे-मीठे फल स्वयं न खाकर सदा दूसरों को खिलाते हैं।

तुम समझते होगे, वृक्षों में जान नहीं होती। लेकिन मेरे नन्हे-मुन्नो, वृक्षों में भी जान होती है। जिस तरह तुम दुख-सुख का अनुभव करते हो, उसी तरह वृक्ष भी दुख-सुख का अनुभव करते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वृक्ष साँस भी लेते हैं।

यदि तुमसे यह प्रश्न किया जाय कि साँस क्यों लेते हो, तो क्या उत्तर दोगे ? हम साँस लेकर बाहर की शुद्ध हवा को, जिसे आक्सीजन या प्राणप्रद वायु कहते हैं। अपने भीतर खींचते है, और भीतर की साँस बाहर निकाल कर, उसके द्वारा भीतर की गन्दी हवा बाहर निकालते हैं। शरीर में शुद्ध हवा को खींचने

और गन्दी हवा को निकालने की क्रिया बराबर होती रहती है। इसी क्रिया के कारण हम-तुम जीवित रहते है।

पर वे कौन है, जो हमारे-तुम्हारे लिए वायुमण्डल के भण्डार को सदा शुद्ध हवा से भरते रहते है ? वे हैं हमारे सच्चे मित्र और हितैषी वृक्ष। इस बात को तुम जान ही चुके हो कि, हमारी तरह वृक्ष भी सांस लेते और निकालते है, पर उनका सांस लेने और निकालने का ढग बिलकुल उलटा है।

हम सांस के द्वारा बाहर की शुद्ध हवा को खीचते है, पर वृक्ष सांस के द्वारा बाहर की गन्दी हवा को खीचकर अपने भीतर ले जाते है। यह वही गन्दी हवा होती है जिसे हम अपने शरीर से बाहर निकालते रहते है। यदि वृक्ष हमारे द्वारा निकाली हुई गन्दी हवा को अपने भीतर न खींचते, तो फिर वायुमण्डल के भण्डार में इतनी जहरीली हवा भर जाती कि फिर हमारा जीवित रहना अत्यन्त कठिन हो जाता।

पूछ सकते हो, वृक्ष बाहर की गन्दी हवा को तो अपने भीतर खीचते हैं, पर भीतर से निकालते क्या हैं ? भीतर से निकालते हैं शुद्ध हवा—आक्सीजन। यह वही शुद्ध हवा है, जिसे हम अपनी सांसों के द्वारा

बिना कुछ लिए हुए रंग-रंग के, हँसते-मुस्कराते हुए, सुगन्धित फूल देते है। पौधे और वृक्ष दूसरों की प्रसन्नता का कितना ध्यान रखते है !

प्रतिदिन बड़े आनन्द से मीठे-मीठे फल खाते हो। फलों का रस पीकर सदा स्फूर्तिवान् और स्वस्थ बने रहते हो। क्या कभी यह सोचा है, फल किससे मिलते हैं ? वृक्षों से। वृक्ष बिना कुछ लिए हुए, तरह-तरह के मीठे फल देते है। वृक्ष बड़े दानी, बड़े परोपकारी होते है। वे अपने मीठे-मीठे फल स्वयं न खाकर सदा दूसरों को खिलाते हैं।

तुम समझते होगे, वृक्षों में जान नहीं होती। लेकिन मेरे नन्हे-मुन्नो, वृक्षों में भी जान होती है। जिस तरह तुम दुख-सुख का अनुभव करते हो, उसी तरह वृक्ष भी दुख-सुख का अनुभव करते है। आश्चर्य की बात तो यह है कि वृक्ष साँस भी लेते है।

यदि तुमसे यह प्रश्न किया जाय कि साँस क्यों लेते हो, तो क्या उत्तर दोगे ? हम साँस लेकर बाहर की शुद्ध हवा को, जिसे आक्सीजन या प्राणप्रद वायु कहते हैं। अपने भीतर खींचते हैं, और भीतर की साँस बाहर निकाल कर, उसके द्वारा भीतर की गन्दी हवा को बाहर निकालते हैं। शरीर में शुद्ध हवा को खींचने

और गन्दी हवा को निकालने की क्रिया बराबर होती रहती है। इसी क्रिया के कारण हम-तुम जीवित रहते है।

पर वे कौन है, जो हमारे-तुम्हारे लिए वायुमण्डल के भण्डार को सदा शुद्ध हवा से भरते रहते है ? वे है हमारे सच्चे मित्र और हितैषी वृक्ष। इस बात को तुम जान ही चुके हो कि, हमारी तरह वृक्ष भी साँस लेते और निकालते है, पर उनका साँस लेने और निकालने का ढग बिलकुल उलटा है।

हम साँस के द्वारा बाहर की शुद्ध हवा को खीचते है, पर वृक्ष सांस के द्वारा बाहर को गन्दी हवा को खीचकर अपने भीतर ले जाते है। यह वही गन्दी हवा होती है जिसे हम अपने शरीर से बाहर निकालते रहते हैं। यदि वृक्ष हमारे द्वारा निकाली हुई गन्दी हवा को अपने भीतर न खींचते, तो फिर वायुमण्डल के भण्डार में इतनी जहरीली हवा भर जाती कि फिर हमारा जीवित रहना अत्यन्त कठिन हो जाता।

गन्दी हवा को तो
से निकालते क्या
।—आक्सीजन।
सांसों के द्वारा

सदा भीतर खींचते रहते हैं। यदि वृक्ष अपने भीतर की शुद्ध हवा को बाहर निकालने का काम न करें, तो हमारे सांस खींचने के कारण वायुमण्डल के भण्डार की शुद्ध हवा खत्म हो जाएगी। ऐसी दशा में हमें शुद्ध हवा कैसे मिलेगी? जब शुद्ध हवा नहीं मिलेगी, तो हम जीवित कैसे रह सकेंगे? पर हमारे मित्र वृक्षों ने हमारी यह चिन्ता दूर कर दी है। वायुमण्डल के भण्डार में, हमारे लिए शुद्ध हवा की कमी कभी नहीं पड़ती।

समझ गए न, वृक्ष सांस लेने और छोड़ने के द्वारा क्या करते हैं? वे सांस लेकर बाहर की गन्दी हवा को भीतर ले जाते हैं, और सांस निकाल कर भीतर की शुद्ध हवा को बाहर निकालते हैं। तब तो उस स्थान में शुद्ध हवा का सागर-सा लहराता रहता होगा, जहाँ वृक्ष अधिक होते हैं। अवश्य, जहाँ हरे-हरे वृक्ष अधिक होते हैं, जहाँ बाग-बगीचे होते हैं वहाँ शुद्ध हवा अधिक मात्रा में होती है। इसीलिए तो लोग अपने घरों के आस-पास बाग-बगीचे लगाते हैं। इसीलिए लोग बाग-बगीचों में घूमना-फिरना भी अधिक पसन्द करते हैं।

हम-तुम भोजन के रूप में तरह-तरह के अनाज खाते हैं। यदि हम यह प्रश्न करें कि, अनाज कहाँ से मिलता है, तो क्या उत्तर दोगे? अवश्य कहोगे कि,

खेतों की फसलों से। पर यदि यह पूछा जाए कि, फसलों को कौन हरी-भरी और नम रखता है, तो क्या उत्तर दोगे? वे तो वृक्ष ही हैं, जो फसलों को हरी-भरी रखने के साथ-ही-साथ नम भी रखते हैं। यदि तुम चीन, जापान और रूस की यात्रा करो, तो तुम यह देखोगे कि, इन देशों में फसले मैदानों में नहीं उगाई जाती, बल्कि ऐसे स्थानों में उगाई जाती है जहां बड़े-बड़े वृक्षों की पत्तियां होती है। जानते हो, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि वृक्ष फसलो के पौधों को नम बनाते हैं। पौधे सूखने से बचे रहते हैं।

यदि फसलों के पौधों को सूखने से बचाना है तो फिर खेतों के आस-पास वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए। खेतों के आस-पास के वृक्ष फसलों के लिए वरदान सिद्ध होते है, फसल दुगुनी और चौगुनी होती है।

फसलों के उगने के लिए पानी भी तो चाहिए। कह सकते हो, पानी तो बादलों से मिलता है। हाँ, बादलों से तो मिलता है, पर वृक्ष ही हैं, जो उस पानी को तुम्हारी फसल के लिए रोक लेते हैं। यदि वृक्ष न हों, तो बादलों का पानी बरसकर, बहकर निकल जाए! फसलों के लिए उचित मात्रा में पानी न मिले। वृक्ष पानी को रोकने के लिए बाँध का काम करते हैं। वृक्षों

के ही कारण नदियों में प्रलयंकरी बाढ़ नहीं आने पातं

मौसम को सुहावना रखने और हवा के फैलने भी वृक्षों से सहायता मिलती है ।

जब बाढ़ आती है या तेज वृष्टि होती है, तो पा के बहाव के कारण भूमि का कटाव होता है। इस त बहुत-सी भूमि खेती के अयोग्य हो जाती है। वृक्ष भू के कटाव को रोकते है ।

दादा अपनी बात समाप्त करके सोचने लगे। कुछ क्षणों तक सोचते रहे, फिर उन्होंने सोचते-सोच कहा, "कहो, अब तो तुमने समझ लिया न कि, हमें वृक्षारोपण क्यों करना चाहिए ?"

राम, श्याम, किशोर आदि ने एकसाथ बड़े उत्साह से कहा, "हाँ, दादा, हमने समझ लिया, हमें वृक्षारोपण क्यों करना चाहिए ।"

१ | आम का वृक्ष

दादा एक छोटा-सा पौधा, धरती खोद कर लगा रहे थे। पौधे की जड मे एक छोटी-सी गुठली लगी हुई थी।

किशोर ने दादा से पूछा, "दादा, यह किस चीज का पौधा है ?"

दादा ने उत्तर दिया, "तुम प्रतिवर्ष गर्मी के दिनों में आम खाते हो। आम सभी फलों के राजा के रूप में प्रसिद्ध है। यह उसी आम का पौधा है। यह जब बडा होगा, तो इसमें भी मीठे-मीठे आम लगेंगे।"

दादा की बात सुनकर किशोर सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "दादा, क्या आप हमें आम के पौधे और वृक्ष का पूरा हाल बतायेंगे ?"

दादा ने कहा, "क्यों नहीं बतायेंगे, सुनो—आम उन देशों में होता है, जहाँ गर्मी पड़ती है। हमारा देश भारतवर्ष गर्म देश है। इसलिए हमारे देश में आम के

बाग-बगीचे अधिक संख्या में मिलते हैं। ठण्डे देशों में आम के वृक्ष नहीं उगते। रूस, इंगलैंड, जर्मनी और अमेरिका आदि ठण्डे देश हैं। इन देशों में आम के वृक्ष नहीं उगते। आम के मौसम के दिनों में, इन देशों में हमारे देश से आम भेजा जाता है।

आम के पौधे के लिए गर्म हवा और दोमट जमीन बहुत अच्छी होती है। ठण्डी हवा और ठण्डे स्थानों में, यदि आम के पौधे को लगाया जाय तो वह सूख जाता है।

आम का पौधा दो प्रकार से लगाया जाता है। गुठली से और कलम से। मैं जो पौधा लगा रहा हूँ, वह गुठली का है। इसे बीजू कहते हैं।

गुठली से पौधा उगाने के लिए, गुठली को तीन इंच की गहराई में धरती में गाड़ देना चाहिए। तीन-साढ़े तीन सप्ताह के भीतर गुठली के भीतर अँखुआ निकल आता है। फिर उस अँखुए को सावधानी से उखाड़कर, क्यारी या बाड़ में लगा देना चाहिए।

यदि बीजू आम के कई पौधे लगाने हों, या बाग लगाना हो, तो पौधों को साठ-साठ फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। कीड़े-मकोड़ों से भी पौधों को बचाना हिए।

बीजू आम के पौधे दस-बारह वर्ष के पश्चात् फल

देने लगते हैं। कुछ पौधे हर साल फल देते हैं, कुछ हर तीसरे साल देते है। यदि हर तीसरे साल पौधों को खाद दी जाय, उचित समय पर पानी से सींचा जाय, तो वे हर साल फल देते हैं।

जो पौधे कलम से लगाए जाते हैं, उन्हें कलमी कहते हैं। कलमी पौधे बरसात में, क्यारियों में लगाए जाते हैं। कलमों को एक-दूसरे से ४० फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। बीच-बीच में, डालियों और टहनियों की सावधानी से काट-छांट करते रहना चाहिए। यदि कोई टहनी सूख जाय, तो उसे काटकर अलग कर देना चाहिए।

कलमी पौधे पांच-छः वर्ष के पश्चात् फल देने लगते हैं, और पचास-साठ वर्ष तक बराबर फल देते रहते हैं। बीजू पौधे अधिक दिनों तक फल देते हैं। कोई-कोई बीजू पौधा तो सौ से भी अधिक वर्ष तक फल देता है।

अच्छी फसल के लिए आवश्यक है कि, बौर के समय वर्षा न हो, या पाला न गिरे। अधिक वर्षा से बौर में लसी लग जाती है। लसी एक लेसदार पदार्थ है, जिससे बौर में कीड़े पड़ जाते हैं। कीड़े आम की फसल को नष्ट कर देते हैं। यदि बौर में कीड़े लग

जायँ, तो डी० डी० टी० का छिड़काव करना चाहिए।"

दादा ने अपनी बात समाप्त की ही थी कि, राम ने प्रश्न किया, "दादा, मेरे चाचा वाराणसी गए थे। वे वहाँ से लँगड़ा आम लाए थे। लंगड़ा आम क्या होता है ?"

दादा ने उत्तर दिया कि लँगड़ा आम एक प्रकार का आम है, जो वाराणसी में ही होता है। वाराणसी और कई चीजों के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ लँगड़ा

आम के लिए भी प्रसिद्ध है। आम कई प्रकार का होता है, जैसे—दसहरी, लँगड़ा, सफेदा, गोपाल भोग, फजली, चौसा, हाथीफूल, लकीरवाला, बम्बइया, दिलपसन्द, तोतापरी, कालापहाड, नवाबपसन्दी, शकरपारा, पायरी और हापुस इत्यादि।

लँगड़ा वाराणसी और सफेदा लखनऊ का अच्छा होता है। दशहरी, लँगड़ा, सफेदा और गोपाल भोग आदि जेठ के अन्त में मिलते हैं। बम्बई, सेलम और अरकाट आदि स्थानों में दिलपसन्द, तोतापरी, शकरपारा आपुस आदि आम अच्छे होते हैं।

आम का फल तो खाया ही जाता है, उसकी गुठली का उपयोग भी कई प्रकार से किया जाता है। एक डाक्टर का कहना है, आम की गुठली साँप के विष की सर्वोत्तम दवा है। पेट के रोगों के लिए भी आम की गुठली अच्छी औषधि होती है। बवासीर आम की गुठली से नष्ट हो जाती है। आम से अचार और मुरब्बा आदि भी बनाया जाता है। कुछ लोग आम की गुठली के भीतर की गिरी को पीसकर, उसका उपयोग आटे के रूप में करते है। साबुन और कागज़ बनाने में भी आम की गुठली काम में लाई जाती है।

आम की लकड़ी और पत्तियाँ बड़ी पवित्र मानी

जाती हैं। यज्ञ और हवन आदि में आम की ही लकड़ी काम में लाई जाती है। पत्तियों से वन्दनवारें बनाई जाती हैं।

दादा की बात सुनकर राम, श्याम, मोहन प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा, "दादा, तब तो आम का वृक्ष अवश्य लगाना चाहिए।"

दादा ने कहा, "हाँ, इसीलिए तो मैं आम का वृक्ष लगा रहा हूँ।"

२ | जामुन का वृक्ष

दादा ने कहा, "आओ, आज जामुन का वृक्ष लगाये।"

दादा जामुन का एक पौधा ले आए, और उसे लगाने की तैयारी करने लगे।

राम ने कहा, "दादा, जामुन के पौधे को बाद में लगाइएगा, पहले जामुन के पौधे और वृक्ष का पूरा हाल बता दीजिए।"

दादा ने कहा—"हां, बच्चो, तुम ठीक ही कह रहे हो। जामुन के पौधे को लगाने से पहले, उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी तो प्राप्त कर ही लेनी चाहिए।"

दादा जामुन के पौधे और वृक्ष के सम्बन्ध में बताने लगे :

"जामुन के कई नाम हैं। 'जामुन' नाम तो तुम जानते ही हो, इसके अतिरिक्त इसके और भी कई नाम हैं। महाराष्ट्र में जामुन को 'जानबूल', कन्नड़

भाषा में 'नेरले', तमिल में 'नावाल' और तेलुगू में 'नेरडू' कहते हैं।

जामुन का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का जामुन का वृक्ष वह है जो जंगलों में मिलता है और दूसरे प्रकार का वह है जो मैदानों में होता है। जंगलों के जामुन के वृक्ष सीधे, छरहरे, और बहुत ऊँचे होते हैं, मैदानों और सड़कों के किनारे के वृक्ष छोटे, मोटे और टेढ़े-मेढ़े होते हैं। जामुन का वृक्ष बहुत मजबूत होता है। तेज से तेज आँधियाँ भी जामुन के पेड़ को हानि नहीं पहुँचा पाती।

यदि किसी बढ़ई से पूछो कि, किस वृक्ष की लकड़ी अधिक मजबूत होती है, तो वह सबसे पहले जामुन का नाम लेगा। टिकाऊपन और मजबूती के लिए प्राय: जामुन की लकड़ियों का ही उपयोग करते है। किवाड़ों के चौखट जामुन की लकड़ी के ही बनाए जाते हैं। रेलों के स्लीपर भी प्राय: जामुन की लकड़ी से ही बनाए जाते हैं।

भारत में तुम जहाँ भी जाओ, सर्वत्र जामुन के पेड़ दिखाई पड़ेंगे। राजपूताना जैसे अधिक गर्म और सूखे प्रदेश में भी जामुन के पेड़ मिलेंगे। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, दक्षिण और पंजाब में प्राय: जामुन

के पेड दिखाई पडेगे। हिमालय की ऊँची चोटियों पर भी, जहाँ शीत अधिक पडता है, जामुन के पेड मिलते हैं। महाबलेश्वर मे भी, जहाँ पानी अधिक बरसता है, जामुन के पेड अधिक मिलते है।

जामुन का पेड छोटा भी होता है और ऊँचा भी होता है। तना पतला भी होता है और मोटा भी होता है। जम्मू मे एक झील के किनारे एक ऐसा जामुन का पेड़ है, जिसके तने का घेरा २० फुट ६ इंच है। कहीं-कहीं ऐसे जामुन के पेड मिलते है, जिनकी ऊँचाई ६०-७० फुट होती है। ४०-५० फुट ऊँचे जामुन के पेड तो सब जगह मिलते है।

जामुन के पेड के लिए किसी खास मिट्टी और खास जलवायु की आवश्यकता नही होती। वह किसी भी जगह, किसी भी जलवायु में पैदा हो सकता है, जहाँ पानी अधिक बरसता है। मैदानों मे, घाटियों मे, सड़कों के किनारे, नदियो के किनारे और नालों के ऊपर— कहीं भी पैदा हो सकता है। नदियों के किनारे की, बाढ़ की मिट्टी जामुन के लिए अच्छी होती है। ऐसे स्थानों में जामुन के पेड बडे मजबूत और ऊँचे होते है।

जामुन के बीज होते है। जामुन के बीजों के सम्बन्ध मे जानने से पहले जामुन के फल के बारे में जानना

चाहिए। जामुन का फल रसदार, बैंगनी रंग का होता है। यदि जामुन के फल को हाथ में लेकर मलो, तो हाथ में बैंगनी रंग आ जाएगा। इसका फल बड़ा स्वादिष्ट होता है। मनुष्य और पक्षी इसे बड़े चाव से खाते हैं।

फल लगने से पहले डालियों में फूल खिलते हैं। के फूल धानी रंग के, गुच्छेदार होते हैं। ये फूल

चैत-बैसाख में लगते हैं। आषाढ़ अर्थात् जुलाई के महीने में डालियाँ फलों से लद जाती हैं।

जामुन के फल को हाथ मे लेकर देखो, या उसे खाकर देखो तो उसके भीतर एक छोटी-सी गुठली दिखाई पड़ेगी। गुठली बड़ी कड़ी होती है। यदि वह पेट के भीतर चली जाय, तो फिर पचने मे देर तो लगेगी ही, उसके कारण पेट मे दर्द भी पैदा हो जाय, तो आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है, लोग जामुन खाकर, गुठली मुँह से बाहर निकाल देते हैं।

उसी गुठली के भीतर जामुन का बीज छिपा रहता है। किसी के भीतर दो बीज होते है और किसी के भीतर पाँच। बीज बहुत छोटे होते है, पर उन्ही बीजो से तो जामुन के बड़-बड़े पेड़ पैदा होते हे।

यदि जामुन के वृक्ष लगाने हो, तो सबसे पहले उसके छोटे-छोटे पौधे लगाने चाहिए। पौधे उगाने के लिए, बीजो को डालियो मे बो देना चाहिए। लगातार दो वर्ष तक कड़ा परिश्रम करना होगा। पौधों की अधिक देखभाल करने की आवश्यकता है। प्रायः नन्हे-नन्हे पौधे धूप और पानी से सूख जाते है या सड़ जाते है। उन्हे कीड़े भी हानि पहुँचाते हैं और पक्षी भी खा जाते हैं।

दो वर्ष के बाद कहीं भी जामुन के पौधों को लगाया जा सकता है। पौधों को धूप, शीत और पाले से बचाना आवश्यक है। पौधे जब बड़े हो जाते हैं, तो अपने आप ही सब कुछ झेल लेते हैं; उस समय उनकी देख-रेख की आवश्यकता बिल्कुल नहीं रह जाती।

कभी-कभी जामुन के पेड़ से भी नया जामुन का पेड़ पैदा होता है। यदि जामुन के पेड़ को काटकर गिरा दो, तो कुछ दिनों पश्चात् उसकी जड़ से नया कल्ला निकलता हुआ दिखाई पड़ेगा। कई वर्षों पश्चात् वही नया कल्ला जामुन का नया बड़ा पेड़ बन जाएगा। कल्ले की पत्तियों को भेड़-बकरियों से बचाना चाहिए, क्योंकि भेड़-बकरियों को जामुन की पत्तियां बड़ी स्वादिष्ट लगती हैं।

जामुन का वृक्ष बड़े काम का होता है। इसकी लकड़ी बड़ी टिकाऊ होती है। अनेक चीजों के बनाने के काम में लाई जाती है। जामुन का फल भी बड़ा उपयोगी होता है। फल का सिरका बनाया जाता है, जो खाने में स्वादिष्ट तो होता ही है, बड़ा पाचक भी होता है। आयुर्वेद में पेट के रोगों के शमन के लिए

को रामबाण के समान प्रभावपूर्ण बताया गया

।"

दादा अपनी बात समाप्त करके विचारों में डूब गए। वे कुछ क्षणों तक सोचते रहे, फिर अपने ही आप बोले, "तुम लोगों ने जामुन के वृक्ष का हाल तो जान लिया न, क्या अब हम जामुन के पौधे का रोपण करें ?"

राम और श्याम ने कहा, "हाँ दादा, अब आप अवश्य जामुन के पौधे को लगाएँ। आपके साथ हम भी जामुन के पौधे को लगाएँगे।"

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब जामुन का एक-एक पौधा लाए। दादा के साथ-साथ वे सब भी बड़े उत्साह और उमंग के साथ जामुन के पौधे लगाने लगे।

३ शीशम का वृक्ष

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब बड़े उत्साह से एक छोटे से पौधे को लगा रहे थे। दादा घूमते हुए उनके पास पहुँचे। उन्होंने प्रश्न किया, "तुम लोग क्या कर रहे हो?"

राम ने बड़ी प्रसन्नता से उत्तर दिया, "हम सब वृक्षारोपण कर रहे हैं, दादा।"

दादा ने उस छोटे पौधे को ध्यान से देखा, जिसे राम, श्याम, किशोर और मोहन लगा रहे थे। दादा ने पौधे की ओर देखते हुए कहा, "वृक्षारोपण तो कर रहे हो, पर यह जानते हो, यह किस वृक्ष का पौधा है?"

राम ने उत्तर दिया, "नहीं दादा, यह तो नहीं मालूम है। आप बता सकते हैं, यह किस वृक्ष का ौधा है ?"

दादा ने कहा, "क्यों ो, यह पौधा शीशम के वृक्ष

का है। शीशम बड़े काम का वृक्ष होता है। क्या तुम लोग शीशम के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो ?"

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सबने एकसाथ ही कहा, "हाँ दादा, हम सब शीशम के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। पहले आप हमें शीशम का पूरा हाल बताएँ, फिर हम इस पौधे को लगाएँगे।"

दादा कुछ देर तक सोचते रहे, फिर वे सोचते-सोचते शीशम के सम्बन्ध में बताने लगे—

शीशम एक ऐसा वृक्ष है, जो सर्वत्र पाया जाता है। मैदानों में, सड़कों के किनारे, नदियों के किनारे, गाँवों में, जंगलों में—सब जगह पाया जाता है। यदि हिमालय और शिवालिक पर्वतों-घाटियों में जाओ, तो वहाँ भी चारों ओर शीशम के वृक्ष दिखाई पड़ेंगे। दक्षिण में शीशम बहुत कम देखने को मिलता है। उत्तर भारत के राज्यों में शीशम के पेड़ मिलते हैं।

शीशम कई नामों से पुकारा जाता है। 'शीशम' नाम तो प्रसिद्ध ही है। कुछ लोग इसे 'सिसू' या 'सीसो' भी कहते हैं। पंजाब में शीशम को 'टाइली' कहा जाता है। संस्कृत में शीशम को 'सिंसपा' कहा जाता है।

शीशम की लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। लकड़ी में और भी कई विशेषताएँ होती हैं। वह भारी होती

बंगाल में वर्षा भी खूब होती है। यही कारण है कि बंगाल में सर्वत्र शीशम के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष बहुत बडी संख्या मे देखने को मिलते है। दुमट जमीन मे शीशम के पेड़ बहुत ऊँचे-ऊँचे तो नही होते, पर उनके तने मोटे अवश्य होते है। किसी-किसी तने की मोटाई तो लगभग आठ फुट तक होती है।

शीशम यहां तो अकेला, इक्का-दुक्का मिलता है, पर जंगलों मे, घाटियों मे इसकी कतार की कतार देखने को मिलती है। मैदानों और जंगलों के पेड़ो मे अन्तर होता है। गांवो और मैदानों मे इक्के दुक्के पाए जाने वाले पेड़ ऊँचे कम होते है। उनके तने छोटे और टेढ़े-मेढ़े होते है। छतरी का फैलाव चौड़ा होता है। इसके विपरीत जगलो मे झुण्ड के झुण्ड पाए जाने वाले पेड बहुत ऊँचे होते है। इनके तने सीधे और मोटे होते है। तनो की छाल मोटी, खुरदरी और मटमैले रग की होती है।

शीशम लकड़ी के लिए अधिक प्रसिद्ध है। उसमें फूल और फल भी लगते है। पत्तियाँ छोटी और कटावदार होती हैं। छोटी और कटावदार पत्तियों के कारण शीशम छायादार नही होता। अतः लोग फल-फूल और छाया के लिए शीशम नही लगाते।

है। घुन इस पर नहीं लगते हैं। इसे चीरने और काटने में कठिनाई नहीं होती। यदि उस पर किसी तरह की पालिश की जाती है तो रंग खूब चढ़ता है। यही कारण है, लोग मेज-कुर्सियां, पलंग, चौखट और दरवाजे आदि बनाने में शीशम की लकड़ी का ही उपयोग करते हैं। इसीलिए शीशम की लकड़ी की बड़ी मांग रहती है। बहुत से लोग शीशम की लकड़ी का व्यापार करते हैं। अधिक मांग होने के कारण शीशम की लकड़ी बड़ी महंगी मिलती है।

यों तो शीशम का वृक्ष किसी भी जमीन में उग सकता है किन्तु रेतीली और दुआर जमीन शीशम के लिए बड़ी अच्छी होती है। नदियों के किनारे, नालों के ऊपर शीशम के बड़े-बड़े पेड़ दिखाई पड़ते हैं। यदि पहाड़ों की घाटियों की सैर की जाय तो दो-दो तीन-तीन हजार फुट ऊँचाई के शीशम के पेड़ देखने को मिलेंगे। इतने ऊँचे पेड़ तुम्हें मैदानों में न मिलेंगे। इसका कारण यह है कि नदियों के किनारे और घाटियों की जमीन रेतीली होती है और रेतीली जमीन में शीशम के पेड़ की बाढ़ खूब होती है।

दुआर और दुमट जमीन में भी शीशम खूब बढ़ता है। दुआर जमीन के लिए बंगाल अधिक प्रसिद्ध है।

बंगाल मे वर्षा भी खूब होती है। यही कारण है कि बंगाल मे सर्वत्र शीशम के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष बहुत बडी सख्या मे देखने को मिलते है। दुमट जमीन मे शीशम के पेड बहुत ऊँचे-ऊँचे तो नही होते, पर उनके तने मोटे अवश्य होते है। किसी-किसी तने की मोटाई तो लगभग आठ फुट तक होता है।

शीशम कही तो अकेला, इक्का-दुक्का मिलता है, पर जंगलो मे, घाटियो मे इसकी कतार की कतार देखने को मिलती है। मैदानो और जगलो के पडो मे अन्तर होता है। गांवो और मैदानो मे इसके दुक्के पाए जाने वाले पेड ऊँचे कम होते है। उनके तने छोटे और टेढे-मेढे होते है। छतरो का फैलाव चौडा होता है। इसके विपरीत जगलो मे झुण्ड के झुण्ड पाए जाने वाले पेड बहुत ऊँचे होते है। इनके तने सीधे और मोटे होते है। तनो की छाल मोटी, खुरदरी और मटमैले रग की होती है।

शीशम लकड़ी के लिए अधिक प्रसिद्ध है। उसमे फूल और फल भी लगते हैं। पत्तियाँ छोटी और कटावदार होती हैं। छोटी और कटावदार पत्तियो के कारण शीशम छायादार नही होता। अतः लोग फल-फूल और छाया के लिए शीशम नही लगाते।

जाड़े के दिनों में पत्तियाँ झड़ जाती हैं। बसन्त में फिर नई पत्तियाँ निकलती हैं। नई पत्तियाँ धानी रंग की और बहुत ही कोमल होती हैं। हर एक डण्ठल पर तीन-तीन पत्तियाँ निकलती है। कुछ दिनों बाद पत्तियाँ अपना रंग बदल कर, हरा रूप धारण कर लेती हैं।

बसन्त के दिनों जब डालियों में नई पत्तियाँ लगती हैं, तो उन्ही दिनों डालियो में फूल भी लग जाते हैं।

फूल पीले रंग के होते है। फूलो मे फलियां लगती है। फलियां पहले हरे रंग की होती है, किन्तु पकने पर बादामी रंग की हो जाती है। फलियां ढाई-तीन इंच लम्बी और आधा इंच चौड़ी होती है। बीज फलियों के ही भीतर होता है। किसी फली मे एक बीज होता है, किसी मे दो और किसी-किसी मे तीन बीज भी होते है।

शीशम अपने आप भी उगता है और लगाया भी जाता है। नदियो के किनारे, जगलो और घाटियो मे यह अपने आप बड़ी संख्या मे उगता है, पर सड़को के किनारे, गांवो और मैदानो मे लोग इसे बड़े चाव से लगाते है। इसके पौधे बड़ी सरलता से लग जाते है। न निराई की आवश्यकता, न गुडाई की। बस, केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधो को पास-पास नही लगाना चाहिए। पास-पास लगाने से छतरियां आपस मे टकरा जाती है। यो तो पौधो को कही भी लगाया जा सकता है, पर यदि थाले मे लगाया जाय और समय-समय पर सिंचाई कर दी जाय, तो पेड खूब बढ़ता है। छोटे-छोटे पौधो की देखभाल की आवश्यकता होती है। प्राय. जानवर छोटे-छोटे पौधो को खा जाते है।

पौधे उगाने के लिए बीज ज़मीन में बो देने चाहिए। ज़मीन पर गिरी हुई फलियों के बीज अच्छे नहीं होते। यदि पौधे उगाने हों, तो पेड़ों की डालियों से ही बीज इकट्ठे करने चाहिए, जब फलियाँ पक जायँ, तो तोड़ लेनी चाहिए, उनके भीतर से बीज निकाल लेना चाहिए। बीज ऐसी जगह बोना चाहिए, जहाँ किसी बड़े पेड़ की छाया न पड़ती हो। चिड़ियाँ आदि भी खा न सकें। जब पौधे निकल आयें तो उन्हें जानवरों, पाले और खुश्की आदि से बचाना चाहिए।

कुछ दिनों में पौधे बड़े हो जाते हैं। जब पौधे बड़े हो जायें तो उन्हें थाले में लगा देना चाहिए। चलो, अब हम लोग इस पौधे के लिए थाला तैयार करें।

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब मिलकर शीशम का पौधा रोपने के लिए थाला तैयार करने लगे।

४ | नीम का वृक्ष

धूप तेज़ थी। दादा राम, श्याम, किशोर, मोहन आदि सबके साथ कमरे में बैठे हुए थे। उन्हें तरह-तरह की रोचक और ज्ञानवर्द्धक बातें बता रहे थे। सहसा कुछ सोचते हुए बोले, "चलो, नीम की ठण्डी छाया में चलें। कमरे के भीतर तो बडी उमस है।"

दादा नीम के वृक्ष के नीचे जाकर, चारपाई पर बैठ गए। राम, श्याम, किशोर, मोहन आदि भी उनके सामने ज़मीन पर ही बैठ गए। सचमुच बड़ी ठण्डी छाया थी। नीम की पत्तियाँ धीरे-धीरे हिल रही थीं। ऐसा लग रहा था, मानो वे गर्मी से व्याकुल मनुष्यों को पंखा झल रही हों।

राम, श्याम और किशोर ने भी नीम के वृक्ष के नीचे जाकर सुख का अनुभव किया। राम ने प्रसन्न होकर कहा, "दादा, सचमुच यहाँ तो बिलकुल उमस नहीं है। ऐसा लग रहा है, मानो कोई पंखा झल

रहा हो।"

दादा ने कहा, "सचमुच कोई पखा ही झल रहा है और वह पखा झलने वाला है नीम का यह वृक्ष। नीम का वृक्ष अपनी शीतलता के लिए प्रसिद्ध है। तुम कितने ही थके हुए क्यो न हो, कितने ही गर्मी से व्याकुल क्यों न हो, नीम की शीतल छाया मे बैठने पर अवश्य ही सुख और शान्ति मिलेगी।"

श्याम ने बडी उत्कठा से पूछा, "दादा, थके हुए गर्मी से व्याकुल मनुष्य को नीम की छाया मे सुख क्यो मिलता है ?"

दादा ने उत्तर दिया, "नीम के वृक्ष की छाया बडी ठण्डी होती है। शीतलता नीम का अपना विशेष गुण है।"

श्याम ने पुन प्रश्न किया, "दादा, शीतलता के अतिरिक्त नीम के वृक्ष मे और कौन-कौन से गुण होते हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "नीम का वृक्ष अपने गुणों के लिए ही प्रसिद्ध है। नीम का फल, जिसे निबौली या निबौरी कहते है, बड़ा कड़वा होता है। नीम के वृक्ष में कई ऐसे गुण होते हैं, जो उसके फल की कड़वाहट को ढँक लेते है। नीम की छाल और पत्ते उबाल कर,

दाँत का मंजन बनाया जाता है। यह मंजन बड़ा लाभकारी होता है। दाँत मजबूत रहते हैं, कीड़े नहीं पड़ते। कीड़ों को मारने के लिए नीम की पत्तियों के समान कोई दूसरी चीज नहीं हो सकती। इसकी पत्तियों को उबालकर, साबुन भी बनाया जाता है। यह साबुन फोड़े-फुंसियों के लिए बड़ा उपयोगी होता है। कई ऐसी आयुर्वेदिक दवाएँ हैं, जिनमें नीम की छाल, निबौरी और गोंद का उपयोग किया जाता है। कई रोगों पर वे दवाएँ अचूक प्रभाव डालती हैं। नीम के बीज से तेल भी निकाला जाता है, जो कई तरह से काम में लाया जाता है। नीम से लकड़ी भी मिलती है, जो बड़ी मजबूत और टिकाऊ होती है। कभी-कभी पुराने नीम के पेड़ से सफेद रंग का एक रस-सा बहता है। आयुर्वेद में उस रस को अमृत के समान लाभकारी बताया गया है।"

दादा अपनी बात समाप्त करके विचारों में डूब गए, मन ही मन सोचने लगे। अभी सोच ही रहे थे कि किशोर ने उनकी ओर देखते हुए कहा, "दादा, क्या आप हमें नीम के वृक्ष का पूरा हाल बतायेंगे?"

दादा ने कहा, "क्यों नहीं बतायेंगे?" तुम सबको नीम के वृक्ष के सम्बन्ध में पूरी जानकारी होनी ही

चाहिए क्योंकि नीम का वृक्ष हमारा सबसे अधिक पड़ोसी वृक्ष है।"

दादा नीम के वृक्ष के बारे में आवश्यक बातें बताने लगे—नीम का वृक्ष हमारे देश में, सभी राज्यों में पाया जाता है। गाँव-गाँव में, नगर-नगर में, हर एक रास्ते पर, हर एक चौराहे पर, हर एक सड़क की पटरी पर नीम का वृक्ष धीरे-धीरे अपनी टहनियों को हिलाता हुआ दिखाई पड़ता है। कुछ लोगों का कहना है, नीम

विदेशी पेड़ है, वह भारत में ईरान से आया है; पर इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता। यदि नीम विदेशी वृक्ष होता, तो वह भारतीय जीवन में इतना घुल-मिल नही सकता था। भारत में कुछ लोग तो ऐसे हैं, जो नीम के वृक्ष को अधिक पवित्र मानते हैं, उसको पूजा करते हैं।

नीम का वृक्ष यो तो भारत में हर जगह पाया जाता है, पर पश्चिमी भारत में अधिक सख्या मे देखने को मिलता है। वास्तव मे, नीम भारत का ही वृक्ष है।

नम और दलदली जमीन को छोड़कर, नीम का पेड़ हर एक तरह की जमीन में उग सकता है। कँकरीली, पथरीली और सूखी जमीन नीम के लिए सर्वोत्तम होती है। जहाँ पानी अधिक बरसता है या जिन स्थानों में पानी भरा रहता है, नीम के पेड़ वहाँ नही उगते। यदि उगते हैं तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

नीम का पेड़ अपनी कड़वाहट के लिए अधिक प्रसिद्ध है। फल, फूल, पत्तियाँ और टहनियाँ—सब में कड़वाहट होती है। नीम का पेड़ अकेला रहने वाला पेड़ है। कड़वाहट के कारण नीम का पेड़ अपने भाई-

बन्धुओं के साथ मिलकर नहीं रहता। मैदानों की तो बात ही नहीं, जंगलों में भी अकेला ही रहता है।

पतझड़ के दिनों को छोड़कर यह सदा हरा-भरा रहने वाला पेड़ है। पतली-पतली डालियों में पतली-पतली टहनियां होती हैं। टहनियां छाते की छड़ी के समान होती हैं, जो छोटी-छोटी पत्तियों से गुंथी रहती हैं। तना मोटा होता है। नीम की छाल पतली और खुरदरी होती है।

बसन्त के दिनों में जिस तरह सभी पेड़ों में नए पत्ते और फल लगते हैं, उसी प्रकार नीम में भी नई पत्तियां और फूल लगते हैं। नई पत्तियां बड़ी मुलायम होती हैं। रंग कुछ पीलापन लिए होता है। पत्तियां बड़ी होने पर उनका रंग हरा हो जाता है। पत्तियां छोटी-छोटी होती हैं। उनमें बड़ी कड़वाहट होती है। पत्तियों को पीस कर फोड़े-फुंसी पर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

फूल छोटा, सफेद रंग का होता है। ऐसा लगता है, मानो गोल-सुडौल मोती हो। फूल चैत-बैसाख के महीने में आते हैं। फूलों में एक तरह की सुगन्ध होती है। कुछ लोग कभी-कभी फूलों की सब्जी बना कर खाते हैं। यद्यपि उसमें कड़वाहट होती है, पर

खाने में बड़ी अच्छी लगती है, और रक्त को साफ करती है।

फूल जब झड़ जाते हैं, टहनियों मे फल लगते है। इन फलों को निबौलियां कहते हैं। ये फल छोटे-छोटे होते है। कच्चे फलो का रंग हरा होता है, पकने पर पीले रंग के हो जाते है।

निबौली के ऊपर छिलका और छिलके के नीचे गरी होती है। गिरी से तेल निकाला जाता है। नीम का तेल दुर्गन्धयुक्त होता है, पर बड़ा लाभकर होता है। इसका तेल गाँवों मे बहुत से लोग दीपक मे जलाते है। कीड़े-मकोड़ों और जूं आदि को मारने के लिए नीम दवा के रूप मे प्रयुक्त होता है। नीम की खली भी होती है, जिसे जानवर आदि खाते है।

गिरी के भीतर बीज होता है। साधारण रूप से प्रत्येक निबौली मे एक ही बीज होता है, पर कभी-कभी एक ही निबौली मे दो बीज भी होते है।

नीम का पौधा अपने-आप उगता है। जुलाई-अगस्त के महीने में जब निबौलियां पककर गिर जाती है, तो कुछ दिनों मे उनमे छोटे-छोटे पौधे निकल आते है। इन पौधों को प्रायः भेड़ और बकरियां खा जाती है। भेड़-बकरियों को नीम की पत्तियां बड़ी स्वादिष्ट लगती

हैं। नीम के पौधे बहुत कम संख्या में बड़े पेड़ के रूप में विकसित हो पाते हैं, फिर भी बस्तियों के बाहर जो नीम के पेड़ होते हैं, वे अपने आप उगने वाले पौधों से ही बढ़कर बड़े बने होते हैं।

अनेक लोग ऐसे हैं, जो नीम के पौधों को बड़े प्रेम से लगाते हैं। पौधों के लिए बीजों को मिट्टी में डाल दिया जाता है। कुछ ही दिनों में हरे-हरे पौधे निकल आते हैं। पौधे जब छोटे होते हैं, उन्हें उसी समय खोद कर दूसरे स्थानों में लगा दिया जाता है। पौधों को लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती, बचाकर रखने में अवश्य कठिनाई होती है, क्योंकि प्रायः भेड़-बकरियाँ उन्हें खा जाया करती हैं। कभी-कभी पाले से भी इसके पौधों को नुकसान होता है। पाले से पौधे सूख जाते हैं।"

दादा अपनी बात समाप्त करके मौन हो गए। वे कुछ क्षणों तक मौन रहे, फिर उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हें नीम के पेड़ का पूरा हाल बता दिया। अब चलो, नीम के वृक्ष का रोपण करें।"

दादा उठ पड़े। उनके साथ ही साथ राम, श्याम, किशोर और मोहन आदि भी उठ पड़े। सब दादा के साथ नीम के वृक्ष का रोपण करने के लिए आयोजन करने लगे।

५ | पीपल का वृक्ष

दादा ने कहा, "चलो, आज पीपल का वृक्ष लगायें।"

राम बोला, "दादा, वृक्ष लगाने के लिए तो पौधा चाहिए। क्या आपने पौधे का प्रबन्ध कर लिया है ?"

दादा ने उत्तर दिया, "तुम समझते हो, पौधे की व्यवस्था किये बिना ही वृक्ष लगाने की बात कर रहा हूँ। मैंने गमले में बहुत पहले से ही पीपल का पौधा लगा रखा है। आज उसी पौधे का तो रोपण करूँगा।"

दादा की बात सुनकर राम, श्याम, किशोर और मोहन आदि विचारों में डूब गए। मोहन ने सोचते-सोचते कहा, "दादा, क्या आप हमें पीपल का पूरा हाल बताये बिना ही पीपल का पौधा लगायेंगे ?"

राम भी चुप न रह सका। उसने भी बड़े ही आग्रह के साथ कहा, "हाँ, दादा, पहले आप हमे पीपल के पेड़ का पूरा हाल बताएँ, इसके बाद पौधा लगाएँ।"

दादा ने कहा, 'अच्छा भाई, पहले तुम्हें पीपल के पेड़ का पूरा हाल ही बतायेंगे, पीछे दूसरे पेड़ बतायेंगे।'

दादा कुछ सोचकर पीपल का हाल बताने लगे—

पीपल हमारे देश का बड़ा प्रसिद्ध वृक्ष है। इसकी गणना पवित्र वृक्षों में की जाती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है "मैं पेड़ों में पीपल के वृक्ष पर निवास करता हूँ।" बौद्ध मत के प्रवर्तक भगवान बुद्ध को पीपल के वृक्ष के नीचे ही ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह वृक्ष आज भी बिहार के 'गया' नामक स्थान में मौजूद है। उसे लोग 'बोधि-वृक्ष' कहते हैं। यह वृक्ष हजारों वर्ष पश्चात् आज भी हरा-भरा है। बौद्ध धर्म के मानने वाले आज भी उसके नीचे एकत्रित होते हैं, बड़ी श्रद्धा से उसकी पूजा-अर्चना करते हैं। कहते हैं, उसकी शाखाएँ दूर-सुदूर देशों में भेजी गई थीं।

पीपल का वृक्ष पवित्र होता है, इसीलिए लोग उसे नदियों के किनारे, तालाबों पर, कुओं के पास और मन्दिरों के आसपास लगाते है। बहुत-से लोग प्रतिदिन पीपल के वृक्ष की अर्चना जल से करते हैं। कुछ लोग पीपल के वृक्ष के नीचे दीपक जलाते है। कुछ लोग फूल-मालाओं और अक्षत से भी पीपल के वृक्ष की पूजा

पीपल का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का वृक्ष वह है, जो मैदान में पाया जाता है और दूसरे प्रकार का वह है, जो पहाड़ों पर उगता है। यद्यपि दोनों प्रकार के वृक्षों के पत्ते एक-से समान होते हैं, फिर भी दोनों में कई बातों में अन्तर होता है। पहले हम मैदानों में पाए जाने वाले पीपल के सम्बन्ध में बताएँगे।

पीपल का वृक्ष एक ऐसा वृक्ष है, जो बड़ा ऊँचा और छतनार होता है। उसकी अपनी एक शान होती है। जब हवा बहुत मन्द-मन्द चलती है, उस समय भी उसके पत्ते हिलते रहते हैं। इसकी छाया बहुत ठण्डी होती

है। गर्मी से थका-हारा मनुष्य पीपल के वृक्ष के नीचे पहुँचने पर सुख का अनुभव करता है। डालियाँ बड़ी-

, लम्बी और तना गोलाई लिए हुए मोटा होता । इसका वृक्ष ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, तने में ऊँची-

ऊँची नालियाँ-सी बनने लगती हैं। पीपल की छाल चिकनी और मटमैले रंग की होती है, जो औषधियों के रूप में काम में लाई जाती है।

पीपल के पत्ते हरे रंग के, पतले और नुकीले सिरे वाले होते हैं। पत्तों में गाँठें-सी होती हैं। पत्तों को तोड़ा जाय, तो जड़ों में एक प्रकार का दूध-सा निकलता है। पीपल के फूल तीन प्रकार के होते हैं—नर, मादा और किड़ौले। किड़ौले उन फूल को कहते हैं, जिसमे कीड़े अण्डे देते हैं। कुछ लोग किडौले फूलों को 'पकुहे' भी कहते हैं। किड़ौले या पकुहे के कीडे ही नर ओर मादा फूलों को आपस मे मिलाते हैं।

इसके फल हरे रंग के ओर छोटे-छोटे होते हैं। कभी-कभी फलो को देखकर जामुन का भ्रम हो जाता है, क्योंकि दोनों की सूरत-शक्ल ही नही, आकार-प्रकार भी एक समान होता है। ये फल मनुष्य नहीं, केवल चिड़ियाँ ही खाती है। हारील को पीपल का फल बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए वह पीपल पर, या पीपल के आस-पास ही अड्डा जमाता है।

फरवरी के महीने में पीपल के पत्ते झड़ जाते हैं। कुछ दिनो में फिर नए पत्ते निकलते हैं। नए पत्ते जब निकलते हैं, तो आरम्भ में कोमल और कुछ ललाई

लिए होते है । ज्यों-ज्यों पत्ते बढ़ते है, उनमें हरापन आने लगता है । पूरी बाढ पर पत्तों का रंग बिल्कुल हरा हो जाता है ।

अप्रैल के महीने मे फूल लगने लगते है। फूल लगने के कुछ दिनों पश्चात् ही फल लग जाते हैं। फल पत्तों की जड़ों मे लगते हैं, जो गोल-गोल और छोटे आकार के होते है, लगभग आध इंच मोटे होते है । जून के महीने में फल पक जाते है। फलों के भीतर एक प्रकार के छोटे-छोटे कीड़े होते हैं । उन कीड़ों के ही कारण चिड़ियां फलों को बड़े चाव से खाती हैं ।

बीज इन्हीं फलों के भीतर रहता है । बीज बड़ा मुलायम होता है । यदि उसे सँभालकर नहीं रखा जाए तो शीघ्र नष्ट हो जाता है। चिड़ियां भी बीजों को खा जाती है ।

पीपल अपने-आप उगने वाला वृक्ष है । कभी-कभी किसी-किसी वृक्ष की डाल पर या दीवारों और छतों पर भी पीपल का वृक्ष उग आता है । तुम अवश्य जानना चाहते होगे कि वृक्षों की डालियों, छतों और दीवारों पर पीपल का वृक्ष किस प्रकार उगता है ? बच्चो, इस बात को तो तुम जान ही चुके हो कि चिड़ियां पीपल के फलों को बड़े चाव से खाती हैं ।

[illegible] इधर-उधर वृक्षों की डालियों तथा [illegible] दीवारों पर बैठकर बीट कर दिया करती हैं। चिड़ियों की बीट द्वारा ही पीपल के बीज [illegible] तथा और दीवारों पर पहुँचते हैं। इन्हीं बीजों से इन स्थानों में पीपल के वृक्ष उग आते हैं। चोंच के द्वारा भी चिड़ियाँ इन बीजों को इधर-उधर बिखेरती रहती हैं।

कभी-कभी किसी पुराने घर के भीतर, उसकी दीवारों में भी पीपल का वृक्ष उगता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कहा जा सकता है कि, अवश्य ही वहाँ भी पीपल का बीज किसी चिड़िया की बीट या उसके मुँह द्वारा पहुँचा होगा। यह भी हो सकता है कि पानी के बहाव के द्वारा पहुँचकर उग आया हो, क्योंकि किसी भी पौधे का उगना तो तभी सम्भव हो सकता है, जब उसका बीज होगा।

बहुत-से ऐसे लोग हैं, जो बड़े चाव और बड़ी श्रद्धा से पीपल के वृक्ष का रोपण करते हैं। रोपण करने के लिए पहले पौधा तैयार करना चाहिए। पौधा तैयार करने के लिए बीज को किसी लकड़ी के बाक्स में, जिसमें मिट्टी और कोयले का चूरा भरा हुआ हो, बो देना चाहिए। मिट्टी के चूरे को पानी से नर्म कर देना चाहिए। कुछ दिनों पश्चात् पौधा निकल आयेगा।

पौधे को अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थल पर लगाया जा सकता है।

पीपल के पेड़ के नीचे भी छोटे-छोटे पौधे मिल जाते हैं। इन पौधों को भी सावधानी के साथ उखाड़कर इच्छित स्थान पर लगाया जा सकता है।

पौधे को जाड़े, पाले और सूखे से तो कोई डर नहीं रहता; क्योंकि पीपल का पौधा सब कुछ सहन करता हुआ बढ़ सकता है, पर भेड़ों और बकरियों को पीपल की पत्तियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। अवसर मिला नहीं कि पत्तियों को खा जाती हैं।

अब हम पहाड़ी पीपल के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे—

पहाड़ी पीपल अपने नाम के ही अनुसार बड़े-बड़े पहाड़ों पर उगता है। पहाड़ी तालाबों, नदियों और झरनों के किनारे प्रायः पहाड़ी पीपल देखने को मिलता है। हिमालय की तराई में, काश्मीर की घाटी में, किशन गंगा के किनारे और कंधार में पहाड़ी पीपल के बड़े-बड़े जंगल देखने को मिलते हैं। पहाड़ी पीपल भी भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। कहीं सफेदा, कहीं बनपीपल, कहीं बगनू, कहीं मिलौना, कहीं चेलनो और कहीं पिपलासल के नाम से जाना जाता है। पर हम तो उसे पहाड़ी पीपल

के नाम से ही जानते हैं ।

पहाड़ी पीपल बहुत ऊँचा होता है । किसी-किसी पहाड़ी पीपल की ऊँचाई लगभग सौ फुट तक होती है। तना सीधा और सुडौल होता है, जो लगभग बारह फुट के घेरे मे फैला रहता हैं । डालियाँ लम्बी और मोटी होती हैं। डालियों में छोटी-छोटी टहनियाँ होती हैं, जिनमे पत्ते होते है । पत्तों का रग हरा होता है । आकार-प्रकार वैसा ही होता है, जैसा मैदानी पीपल के पत्तों का होता है ।

पहाड़ी पीपल की दो जातियाँ होती है। एक जाति को नर तथा दूसरी जाति को मादा कहते है । दोनों के फूलों में अन्तर होता है । नर पेडो के फूल छोटे-छोटे और बहुत ही मुलायम होते है । मादा पेडों के फूल हरे रंग के और कडे होते हैं। नर वृक्षो की अपेक्षा मादा वृक्ष अधिक संख्या में मिलते हैं ।

फल छोटे-छोटे और रोयेंदार होते है । फलो के रोयें, फलो से निकलकर हवा मे उड़ते रहते हैं। यदि ऐसी हवा मे पहुँच जाओ, तो साँस लेने में बडी कठिनाई होगी । बीज फलों के भीतर होता है । पहाड़ी पीपल का बीज छोटा और बहुत कम उपजाऊ होता है । बीज हवा मे उडकर इधर-उधर जा पहुँचते हैं ।

... नष्ट हो जाते हैं, कुछ पहाड़ों, नदियों, तालाबों
... झरनों के किनारों पर उग जाते हैं। इन्हीं बीजों
से उगे हुए पौधे धीरे-धीरे बढ़कर बड़े वृक्ष का रूप
धारण कर लेते हैं।

... पहाड़ी पीपल अपने-आप ही उगता है, पर
कुछ ... बीज से पौधे उगाकर, उसका रोपण भी करते
हैं। ... उगाने के लिए बीज को खुले हुए बाक्स में,
जिसमें मिट्टी और रेत भरी हो, बो देना चाहिए। मिट्टी
... कर देना चाहिए। लगभग सात-आठ दिनों में
... निकल आते हैं। पौधे बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं।
... कुछ बड़े हो जायें तो उन्हें सावधानी से उखाड़
कर दूसरे बाक्स में लगाना चाहिए। दो वर्ष तक उनकी
देखरेख करनी चाहिए। पानी तो देना ही चाहिए, जड़ों
पर मिट्टी भी डालनी चाहिए। जब पौधे काफी बड़े
हो जाएँ, तो मिट्टी सहित खोदकर, उन्हे इच्छित स्थानों
में रोप देना चाहिए।

पौधे धीरे-धीरे बढ़कर विशाल वृक्ष का रूप धारण
कर लेते हैं। समय पर उनमें फूल-फल लगते हैं पर
पीपलों की तरह पहाड़ी पीपल सदा हरे-भरे
... -नवम्बर के महीने में पत्ते झड़ जाते
... दिनों में, जब लोग तरह-तरह के कपड़े

पहनते हैं, पहाड़ी पीपल नंगे रहते हैं। उनमें शीत और पाले को सहन करने की अनोखी शक्ति होती है। पर जैसे ही बसन्त का आगमन होता है, नई कोंपले फूट पड़ती हैं। कोंपलें धीरे-धीरे बढ़कर हरे-हरे पत्तो का रुप धारण कर लेती हैं। बसन्त के दिनों में ही फूल लगते हैं। फूल तीन इच लम्बे होते है। किसी-किसी फूल की लम्बाई छह इंच तक होती है। फूलों के बाद फल लगते है। फल जून के महीने में पक जाते हैं।

पीपल चाहे मैदानी हो या पहाडी, बड़ा उपयोगी होता है। यद्यपि पीपल की लकडी किसी काम मे नही आती, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से पीपल का वृक्ष वडा लाभकर होता है। वडे-वड़े वैज्ञानिकों का कहना है कि, पीपल सभी पेड़ो की अपेक्षा सबसे अधिक आक्सीजन गैस बाहर निकालता है। रात में जब सभी पेड गन्दी हवा, जिसे कार्बन डाई-आक्साइड कहते हैं, बाहर निकालते हैं, पीपल आक्सीजन छोड़ता है। यह आक्सीजन हमारे स्वास्थ्य के लिए वड़ा लाभ पहुँचाने वाली होती है। इसके अतिरिक्त पीपल पानी के बहाव को रोकता है, और भूमि का कटाव नही होने देता। प्रायः आजकल लोग पौधों को मजवूत बनाने के लिए, आस-पास पीपल के वृक्ष उगाते हैं।

कुछ तो नष्ट हो जाते हैं, कुछ पहाड़ों, नदियों, तालाबों और झरनों के किनारों पर उग जाते हैं। इन्हीं बीजों से उगे हुए पौधे धीरे-धीरे बढ़कर बड़े वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं।

यों तो पहाड़ी पीपल अपने-आप ही उगता है, पर कुछ लोग बीज से पौधे उगाकर, उसका रोपण भी करते हैं। पौधा उगाने के लिए बीज को खुले हुए बाक्स में, जिसमें मिट्टी और रेत भरी हो, बो देना चाहिए। मिट्टी को नम कर देना चाहिए। लगभग सात-आठ दिनों में पौधे निकल आते हैं। पौधे बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं। जब पौधे कुछ बड़े हो जायें तो उन्हें सावधानी से उखाड़ कर दूसरे बाक्स में लगाना चाहिए। दो वर्ष तक उनकी देखरेख करनी चाहिए। पानी तो देना ही चाहिए, जड़ों पर मिट्टी भी डालनी चाहिए। जब पौधे काफी बड़े हो जाएँ, तो मिट्टी सहित खोदकर, उन्हे इच्छित स्थानों में रोप देना चाहिए।

पौधे धीरे-धीरे बढ़कर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं। समय पर उनमें फूल-फल लगते हैं पर मैदानी पीपलों की तरह पहाड़ी पीपल सदा हरे-भरे नहीं रहते। अक्तूबर-नवम्बर के महीने में पत्ते झड़ जाते हैं। जाड़े के दिनों में, जब लोग तरह-तरह के कपड़े

पड़ते हैं, फलतः पीपल नंगे रहते हैं। इनमें शीत और पाले को सहन करने की अनोखी शक्ति होती है। पर जैसे ही वसन्त का आगमन होता है, नई कोंपलें फूट पड़ती हैं। कोंपलें धीरे-धीरे बढ़कर हरे-हरे पत्तों का रूप धारण कर लेती हैं। वसन्त के दिनों में ही फूल लगते हैं। फूल तीन इंच लम्बे होते हैं। किसी-किसी फूल की लम्बाई छह इंच तक होती है। फूलों के बाद फल लगते हैं। फल जून के महीने में पक जाते हैं।

पीपल चाहे मैदानी हो या पहाड़ी, बड़ा उपयोगी होता है। यद्यपि पीपल की लकड़ी किसी काम में नहीं आती, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से पीपल का वृक्ष बड़ा लाभकर होता है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का कहना है कि, पीपल सभी पेड़ों की अपेक्षा सबसे अधिक आक्सीजन गैस बाहर निकालता है। रात में जब सभी पेड़ गन्दी हवा, जिसे कार्बन डाई-आक्साइड कहते हैं, बाहर निकालते हैं, पीपल आक्सीजन छोड़ता है। यह आक्सीजन हमारे स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभ पहुँचाने वाली होती है। इसके अतिरिक्त पीपल पानी के बहाव को रोकता है, और भूमि का कटाव नहीं होने देता। प्रायः आजकल लोग पोखरों को मजबूत बनाने के लिए, आस-पास पीपल के वृक्ष उगाते हैं।

दादा अपनी बात समाप्त करके कुछ सोचने लगे। उन्होंने सोचते-सोचते कहा, "चलो, अब पौधे का रोपण करें, क्योंकि पीपल के वृक्ष के सम्बन्ध में जो कुछ बताना था, वह हम बता चुके।"

दादा राम, श्याम, किशोर और मोहन के साथ पीपल के पौधे को रोपने लगे।

६ | इमली का वृक्ष

राम ने दादा से कहा, "दादा, आज हमें इमली के वृक्ष के सम्बन्ध में बतायें।"

किशोर ने भी राम की बात का प्रतिपादन किया। उसने भी दादा से बड़े आग्रह के साथ कहा, "हाँ दादा, आज तो आप हमें इमली के वृक्ष के सम्बन्ध में ही बतायें।"

दादा ने उत्तर दिया, "अवश्य बताऊँगा, प्यारे बच्चो! पर तुम्हें भी मेरी एक बात माननी होगी और वह यह कि, मेरे साथ तुम्हें भी इमली का वृक्षा-रोपण करना होगा।"

राम, श्याम, किशोर आदि एक साथ बोल उठे, "हमें आपकी शर्त स्वीकार है दादा! हम आपके साथ इमली का वृक्षारोपण अवश्य करेंगे। पहले आप हमें इमली के वृक्ष का आवश्यक और उचित ज्ञान करा दें।"

दादा कुछ सोचकर इमली के वृक्ष के सम्बन्ध बताने लगे—

कुछ लोगों का कहना है, इमली का वृक्ष विदे है, मध्य अफ्रीका से भारत में आया है, पर इस बा का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इमली का वृक्ष भार के प्रत्येक गाँव, कस्बे और नगर में पाया जाता है। उसके प्रचार और प्रसार को देखते हुए, यह बात गले के नीचे नहीं उतरती कि वह विदेशी है। यदि विदेशी होता, तो इस तरह सर्वत्र न पाया जाता।

इमली का वृक्ष हर एक राज्य में मिलता है, और हर राज्य में इसके अलग-अलग नाम हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश और दिल्ली आदि राज्यों में यह इमली के ही नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु महा-राष्ट्र में इसे 'चिंच', तमिलनाडु में 'पुली', कन्नड़ में 'हुणसे' और केरल में 'चिन्ता' कहते है।

इमली का वृक्ष एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी आयु बड़ी लम्बी होती है। केवल बरगद ही एक ऐसा वृक्ष है, जो आयु में इमली के पेड़ का मुकाबला कर सकता है। कहीं-कहीं दो-दो सौ और कहीं-कहीं तीन-तीन सौ तक के इमली के वृक्ष मिलते है। नवाब शुजाउद्दौला समय में लगाये गए इमली के वृक्ष आज भी फैजाबाद

में हरे-भरे दिखाई पड़ते हैं। नवाब शुजाउद्दौला १७६५ में शासनासीन थे।

इमली का वृक्ष अपनी छाया और अपने फल के लिए प्रसिद्ध है। इसके फल को भी इमली ही कहते हैं। इसके पेड़ की छाया बड़ी घना होती है। जिस तरह छाता हमे गर्मी, धूप और बरसात से बचाता है, उसी प्रकार इमली के वृक्ष की छाया भी धूप और बरसात से बचाती है। कोई यात्री कितना ही थका हुआ, गर्मी से व्याकुल क्यों न हो, इमली के वृक्ष के नीचे पहुँचने पर सुख और शान्ति का अनुभव करता है। इसकी घनी छाया उसको व्याकुलता और थकान को दूर कर देती है।

इमली का पका हुआ फल खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। कच्चा फल खट्टा और पका हुआ फल मीठा होता है। फल लम्बा और कुछ गाँठदार होता है। फल के भीतर एक प्रकार का गूदा-सा होता है। गूदे के भीतर बीज होते है, जो चिकने और कत्थई रंग के होते हैं। किसी फल में तीन, किसी में चार और किसी में आठ-नौ तक बीज होते हैं। इन बीजो से भी इमली का पौधा उगाया जाता है।

पत्तियाँ पंख के समान होती हैं। जिस प्रकार पंख

के बीच में डण्ठी होती है, उसी प्रकार इमली के पत्तों में भी डण्ठी होता है। डण्ठी में पत्तियाँ जुड़ी होती हैं जो लगभग आधा इंच लम्बी होती हैं।

इमली का वृक्ष सदा हरा-भरा रहता है। दूसरे पेड़ों के समान इसका पतझड़ नहीं होता। फिर भी मार्च-अप्रैल के महीने में इनमें नए-नए पत्ते निकलते हैं। इन्हीं दिनों फूल भी लगते हैं, जो आकार-प्रकार में छोटे ... रंग में पीले और लाल होते हैं। फूलों के पश्चात् फल लगने लगते हैं। फूल खिलते रहते हैं और फल

लगते रहते हैं। मार्च-अप्रैल के महीने मे ये फल पक जाते हैं।

इमली का फल बड़े काम का होता है। पके हुए फल को लोग बड़े चाव से खाते हैं। स्वाद खट्टा-मीठा होता है। फल के भीतर का गूदा तेजाबी होता है। यही कारण है कि, बहुत-से लोग इमली का प्रयोग खटाई के रूप मे करते हैं। कच्ची इमली की चटनी बनाई जाती है। कच्ची इमली हरे रग की होती है। जब पकती है, तो रग बदल जाता है। कई आयुर्वेदिक दवाओ मे इमली का उपयोग किया जाता है। इसके बीजो से स्टार्च भी तैयार किया जाता है।

इमली की लकडी बडी मजबूत होती है। कुछ ऐसी चीजे हैं, जिनके लिए इमली की लकडी विशेष रूप मे सर्वोत्तम समझी जाती है। जैसे धान कूटने की ढकी, कोल्हू, तख्त, चौखट इत्यादि। कोयले का व्यवसाय करने वाले लोग इसकी लकडी को जलाकर कोयला प्राप्त करते है, क्योकि इमली की लकडी का कोयला बडी सरलता से आग पकडता है, और इसकी आग देर तक बनी रहती है।

इमली के वृक्ष के लिए लोग पहले उसके पौधे उगाते हैं। पौधों के लिए इमली के बीजों को मिट्टी

में बो दिया जाता है। अप्रैल और मई के महीने में बीज वोये जाते हैं। दो-तीन सप्ताह में छोटे-छोटे पौधे निकल आते हैं। पौधे जब कुछ बड़े हो जाते है, तो उन्हें उखाड़ कर बड़ी-बड़ी टोकरियों में लगा दिया जाता है। एक बड़ी टोकरी में तीन या चार पौधे लगाये जाते हैं। टोकरियाँ मिट्टी से भरी रहती हैं। पौधों को पाला और लू न लगे, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

पूरे साल भर पौधे टोकरियों में ही बढ़ते और पुष्ट होते है। बरसात आने पर इन्हें टोकरियों से निकाल कर इच्छित स्थानों में लगा दिया जाता है। यों तो सभी तरह की भूमि में इसका पौधा बढ़कर बड़ा हो जाता है, पर उपजाऊ मिट्टी वाली जमीन में इसकी जड़ें बड़ी गहराई तक जाना पसन्द करती हैं।

पौधे को लू और पाले से बचाने की विशेष आवश्यकता रहती है। लू को तो वह किसी प्रकार सहन भी कर लेता है, पर पाला उसके लिए मृत्यु के समान है। जाड़े के दिनों में उसे घास या इसी प्रकार की किसी दूसरी चीज से घेर देना चाहिए।

दादा ने अपनी बात समाप्त करते हुए अन्त में

कहा, "मैंने इमली के वृक्ष के सम्बन्ध में बता दिया, अब चलो, इमली का रोपण करें।"

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब एक स्वर में बोल उठे, "अवश्य दादा, अवश्य! चलिए, अब इमली के वृक्ष का रोपण करें।"

७ | अशोक का वृक्ष

मन्दिर में उत्सव होने वाला था। दादा हरी-हरी पत्तियों से वन्दनवार बना रहे थे। राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब दादा के पास जाकर बैठ गए, बड़े ध्यान से उनका वन्दनवार बनाना देखने लगे।

मोहन ने दादा की ओर देखते हुए पूछा, "ये किस वृक्ष की पत्तियाँ है, दादा, जिनसे आप वन्दनवार बना रहे हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "यह पत्तियाँ अशोक के वृक्ष की है। सामान्य रूप में वन्दनवारें दो वृक्ष की पत्तियों से ही बनाई जाती हैं—आम की पत्तियों से, और अशोक की पत्तियों से। मैं अशोक की पत्तियों से वन्दनवार बना रहा हूँ।"

राम ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "अशोक की की पत्तियों से ! अशोक का वृक्ष कहाँ होता है दादा ! . तो आज तक नहीं देखा।"

राम ने अपनी बात पूरी की थी, कि किशोर ने बड़े गर्व से कहा, "अरे, तुमने अशोक का वृक्ष नहीं

देखा ? मेरे बगीचे में कई अशोक वृक्ष है। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें दिखा दूंगा।"

राम मन ही मन सोचने लगा। वह कुछ क्षणों तक सोचता ही रहा, फिर बोला, "अवश्य चलूंगा किशोर, पर आज तो मन में आ रहा है, दादा से अशोक के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त करूँ। दादा, क्या आप हमें अशोक के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान करायेंगे ?"

दादा ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं कराऊँगा! जब तुम अशोक के सम्बन्ध में जानना चाहते हो, तो मुझे उसका पूरा हाल बताना ही पड़ेगा।"

राम, श्याम, किशोर, मोहन—सब बड़ी उत्कण्ठा से दादा के मुख की ओर देखने लगे। दादा कुछ क्षणों तक मन ही मन सोचते रहे, फिर अशोक के सम्बन्ध में बताने लगे—

बच्चो, क्या तुम अशोक का अर्थ जानते हो? अशोक का अर्थ है वह, जिस में दुख न हो अथवा जो दुख और शोक को दूर करे। सचमुच, अशोक का वृक्ष अपने नाम के अनुसार ही होता है। वह दुख और शोक दूर करता है या नहीं, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि, जहाँ होता है, उस स्थान की शोभा बढ़ जाती है। हरी-हरी पत्तियाँ, उसकी ठण्डी और घनी छाया

मन में आनन्द और हर्ष का उद्रेक करती है। इस रूप में अवश्य ही अशोक दुःख व शोक को दूर कर देता है।

सुन्दर भवनों, स्कूलों, कालेजों और पंचायत-घरों और देवालयों के इर्द-गिर्द प्रायः अशोक झूमता हुआ दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि, अशोक घनी छायावाला सुन्दर वृक्ष है। उससे शोभा-सुन्दरता में अभिवृद्धि तो होती ही है, सुख, आनन्द और प्रसन्नता भी प्राप्त होती है।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य ही होगा कि अशोक लंका का वृक्ष है। क्या तुमने रामायण पढ़ी है? यदि रामायण पढ़ी होगी, यह बात मालूम ही होगी कि रावण ने सीता जी का अपहरण करके, उन्हें लंका में अपनी अशोकवाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे ही रखा था। उस अशोक वृक्ष के ऊपर से ही हनुमान जी ने श्री राम जी की मुद्रिका नीचे गिराई थी। तो अशोक लका का ही वृक्ष है। वह लंका से भारत में कैसे आया, उसे कौन ले आया—इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। भारत में आकर वह शीघ्र ही चारों ओर फैल गया। उसकी लोकप्रियता का कारण यही है कि वह एक घनी छाया वाला वृक्ष है। वह जिस

स्थान में होता है, उसे आकर्षक और सुखप्रद बना देता है।

अशोक सारे भारत में मिलता है। लोग उसे बड़े चाव से तालाबों के किनारे और मन्दिरों के आस-पास लगाते हैं। उसकी शीतल और घनी छाया थके हुए दर्शनार्थियों, यात्रियों को सुख देती है।

अशोक वृक्ष बहुत ऊँचा नहीं होता। देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। घनी और हरी-हरी पत्तियाँ उसे सदा ढँके रहती है। पत्तियाँ इतनी हरी होती है कि लगता है, हरे रंग मे डुबोई गई हों। पत्तियाँ गावदुम होती है, किनारे की ओर बड़े ढंग से नीचे होती चली जाती हैं। लगता है, सँवार कर बनाई गई हों।

अशोक के फूल धानी रंग के छोटे-छोटे होते हैं। टहनियों मे लटकते रहते है। जिन दिनों फूल लगते है, अशोक और भी अधिक सुन्दर हो जाता है। फूलों के बाद फल लगते है। फल अण्डे के समान होता है। फल के भीतर बीज होता है। प्रत्येक फल में एक ही बीज होता है। अशोक मार्च के महीने में फूलता है, और उसके बाद फल लगने लगते है। जुलाई-अगस्त के महीने तक पेड़ में फल बने रहते हैं।

अशोक के वृक्ष के लिए सबसे पहले उसका पौधा

उगाना चाहिए। अशोक के बीज को मिट्टी में बोना चाहिए। बीज प्राप्त करने के बाद तुरन्त बो देना चाहिए, क्योंकि इसका बीज बडा मुलायम होता है, शीघ्र नष्ट हो जाता है। जब पौधा उग आये, तो उसे उखाड़कर छोटे-से गमले मे लगाना चाहिए। पौधे को धूप और पाले से बचाना चाहिए। समय पर पानी से सींचना चाहिए। समय पर गोडाई भी करनी चाहिए। अशोक का पौधा बडा कोमल होता है, प्यार और कठिन परिश्रम मांगता है। जब पौधा बडा हो जाय, तो उसे इच्छित स्थान मे रोप देना चाहिए। अशोक का पौधा बहुत धीरे-धीरे उगता और बढता है। इसके उगने और बढने मे लगभग दो वर्ष का समय लग जाता है।

अन्त मे दादा ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, "अशोक की विशेषताओं को सुनकर अवश्य तुम्हारा मन भी उसे लगाने के लिए ललच उठा होगा।"

राम, श्याम, किशोर और मोहन ने कहा, "अवश्य, अवश्य ! दादा, अब तो हम भी उसका रोपण करेंगे।"

८ | सेमल का वृक्ष

जाड़े के दिन थे। दादा अपने तकिये में सेमल की रूई भर रहे थे। राम, श्याम, किशोर, मोहन दादा के पास जाकर बैठ गए। दादा ने उनकी ओर देखते हुए कहा, "जान पड़ता है, आज तुम सब किसी अन्य वृक्ष के सम्बन्ध में जानना चाहते हो? तो आओ, आज तुम्हें सेमल के सम्बन्ध मे बतायें। मैं अपने तकिये में जो रुई भर रहा हूँ यह सेमल की ही है।"

राम ने दादा की ओर देखते हुए बड़े आश्चर्य से कहा, "दादा, क्या सेमल में रुई भी होती है?"

दादा ने उत्तर दिया, "हाँ, सेमल में रुई भी होती है, बड़ी अच्छी रुई होती है। हाथ में लेकर देखो, [illegible] मुलायम है!"

राम, श्याम, किशोर, मोहन सभी हाथ में रुई [illegible], उसे ध्यान से देखने लगे। सचमुच बड़ी मुलायम

थी। राम ने रुई की ओर देखते हुए, बड़ी उत्कण्ठा से दादा से कहा, "दादा, फिर तो आप हमें सेमल के सम्बन्ध में अवश्य बतायें।"

दादा ने कहा, "अवश्य बताऊँगा, बताने के लिए ही तो चर्चा चलाई है। सुनो, ध्यान से सुनो—

सेमल का वृक्ष भारत के सभी राज्यों पाया जाता है, पर आकार-प्रकार मे भिन्नता होती है। किसी-किसी स्थान मे सौ-सौ फुट ऊँचे सेमल के वृक्ष मिलते है, पर किसी-किसी जगह केवल साठ-सत्तर फुट ऊँचे होते है। जिस स्थान की मिट्टी और हवा जितनी ही अनुकूल होती है, उस जगह सेमल उतना ही बढता और हृष्ट-पुष्ट होता है। तराई, पामर और बाढ की मिट्टी में उगा हुआ सेमल का वृक्ष बडा ऊँचा होता है। यदि हिमालय की तराई मे जाओ, तो कहीं-कहीं दो-दो सौ फुट ऊँचे सेमल के वृक्ष मिलेगे। तुम उनकी गगन-चुम्बी ऊँचाइयो को देखकर आश्चर्यचकित रह जाओगे।

तुम्हारे मन में प्रश्न उठ सकता है कि इतना ऊँचा वृक्ष जो डालियों और पत्तो से युक्त रहता है, धरती पर किस तरह खडा रहता होगा? इस सम्बन्ध में तुम्हें मालूम होना चाहिए कि लिए

प्रबन्ध कर रखा है। उसका तना बड़ा मोटा, मज़बूत, सीधा और चमकदार होता है। तने की गठन पुश्तदार होती है। पुश्त बड़े मज़बूत और गहरे होते हैं। किसी-किसी पुश्त में हाथी भी समा सकता है। यदि सेमल इस प्रकार पुश्तदार न होता तो फिर वह अपने भारी-भरकम भार को सँभालने में असमर्थ हो जाता।

हरएक राज्य में सेमल का वृक्ष अलग-अलग नाम से जाना और पुकारा जाता है। हिन्दी-भाषी राज्यों में उसका नाम सेमल ही है। हिन्दी के कई कवियों ने उस पर दोहे भी लिखे हैं। कन्नड में 'सारी' या 'बुर्ला और तेलगू में 'उर्धा' कहते है।

सेमल का तना चमकदार होता है। दूर से देखने पर तने की चमक चाँदी के समान लगती है। उसका तना सीधा और गोल आकार का होता है। तने पर छोटे-छोटे काँटे-से होते है। जब पेड़ पुराना हो जाता है, तो ये काँटे झड़ जाते हैं। तनों की छाल सलेटी रंग की होती है। तने में काफी ऊँचाई से डालियाँ आरम्भ होती हैं। सभी डालियाँ एक समान होती हैं, सभी डालियाँ एक समान होती हैं, और एक-दूसरे के आस-पास से ही निकलती हैं। इन डालियों में छोटी-छोटी टहनियाँ होती हैं जिनमें पत्ते निकलते हैं। पत्ते
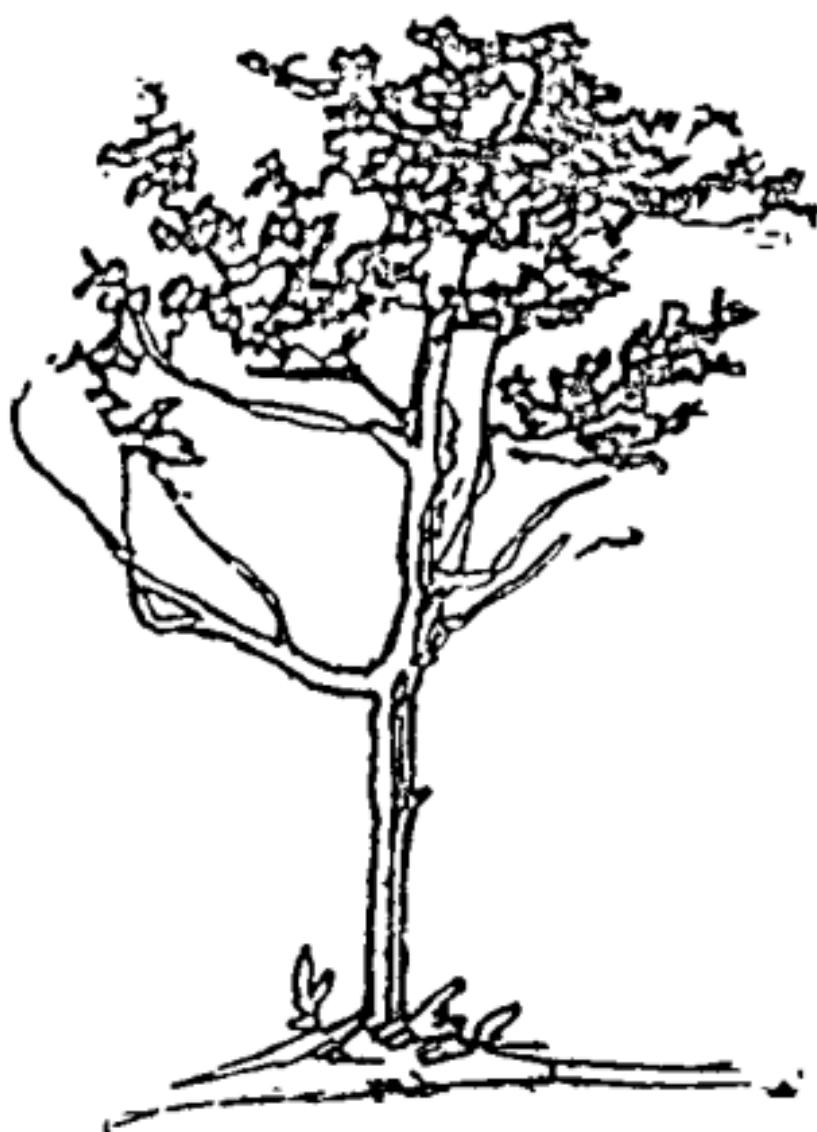
चटकीले, गुच्छेदार होते हैं।
सेमल के फूल लाल रंग के बडे भड़कीले होते हैं।
लगते हैं, सेमल का वृक्ष बड़ा सजीला

हैं, क्योंकि सेमल का पौधा एक ऐसा पौधा है, जो बड़ी तेजी के साथ बढ़ता है। यदि उसकी सिंचाई, गुड़ाई और नलाई पर भी ध्यान दिया जाय, तो कहना ही क्या ! वह देखते ही देखते बढ़ जाता है। इतना बढ़ जाता है कि आकाश से बातें करने लगता है।

रोपण करने के बाद पौधा मर न जाय, इसलिए लोग पूरे पौधे को न लगाकर, केवल तने सहित उसकी जड़ को ही लगाते हैं। पौधा जब बड़ा हो जाता है और उसका तना अँगूठे की तरह मोटा हो जाता है, तो उसे सावधानी से उखाड लिया जाता है। जड़ और एक इंच तने को छोडकर, ऊपर के हिस्से को निकाल लिया जाता है। तने सहित जड़ को थाले मे लगा दिया जाता है। कुछ दिनों बाद पौधा निकल आता है और धीरे-धीरे बढ़ने लगता है।

सेमल के पौधे को पाले और जानवरों से बचाने की आवश्यकता रहती है। पाला नुकसान न पहुँचाए इसलिए जाड़े के दिनों मे उसकी खूब देखभाल करनी चाहिए। जानवरों से बचाने के लिए चारों ओर काँटे-दार झाड़ियाँ जमा कर देनी चाहिए।

सेमल से रुई को छोड़कर और किसी बात की आशा नहीं करनी चाहिए। न फल की, न लकड़ी की।

फल के सम्बन्ध में जान ही चुके हो। लकड़ी भी इसकी बड़ी कमजोर होती है। हाँ, इसकी लकड़ी से दियासिलाई अवश्य बनाई जाती है। तने को खोखला करके, नावें भी बनाई जाती है। इसके तने से एक तरह का गोंद भी मिलता है, जो दवाओं में काम आता है।

अब तुम कह सकते हो, फिर सेमल का रोपण क्यों किया जाय ? तो बच्चो, सेमल का रोपण अवश्य करना चाहिए; क्योंकि उससे जो रुई मिलती है वह बड़ी अच्छी होती है।"

राम, श्याम, किशोर और मोहन ने कहा, "दादा, तब तो हम सेमल का रोपण करेंगे, अवश्य करेंगे।"

९ | बबूल का वृक्ष

दादा ने कहा, "बच्चो, चलो आज बबूल का वृक्ष लगायें।"

राम ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "बबूल का वृक्ष ! दादा, बबूल का वृक्ष क्यों लगायें ? वह तो काँटेदार होता है। यदि लगाना ही है, तो कोई ऐसा वृक्ष लगाइए, जो मीठे फल दे सके।"

दादा ने कहा, "हाँ, बबूल में काँटे होते हैं, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि वह काम का वृक्ष नहीं होता। वस्तुतः बात तो यह है कि बबूल सबसे अधिक काम का होता है। क्योंकि उसमें जितने हिस्से होते हैं, सभी काम में आते हैं।"

"जान पड़ता है, तुम लोगों को बबूल के सम्बन्ध में जानकारी नहीं है। अच्छा, पहले बबूल की पूरी-पूरी जानकारी करा दें, फिर उसके बाद रोपण का कार्य करेंगे।"

राम, श्याम, किशोर और मोहन बड़े ध्यान से दादा के मुख की ओर देखने लगे। दादा उन्हें बबूल के सम्बन्ध में आवश्यक बातें बताने लगे—

"बबूल को बहुत से लोग कीकर भी कहते है। उसकी प्रसिद्धि एक कांटेदार वृक्ष के ही रूप मे है। यही कारण है कि उसका प्रचार-प्रसार बहुत कम है। उत्तर प्रदेश, पंजाब और बरार आदि प्रदेशों में, बबूल के वृक्ष अधिक सख्या मे मिलते है। बबूल के कांटो को देखकर उसकी ओर से उदासीन हो जाना ठीक नही, क्योंकि बबूल बडे काम का वृक्ष है। हमें बबूल से जितना लाभ होता है, उतना लाभ कदाचित् ही किसी दूसरे वृक्ष से होता है।

दूसरे वृक्षों की तरह बबूल के भी कई भाग होते हैं। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य ही होगा कि, बबूल का हरएक भाग बडा उपयोगी होता है। बबूल की छाल में एक बड़ी अनोखी चीज़ होती है, जिसे टेनीन कहते हैं। चमड़े के उद्योग में टेनीन से अधिक काम लिया जाता है। प्रायः लोग टेनीन से ही चमड़े को पकाते हैं; क्योंकि टेनीन से पकाया हुआ चमड़ा बडा मजबूत और अच्छा होता है।

बबूल की फलियों का उपयोग चारे के रूप में

किया जाता है। जानवर इन फलियों को बड़े चाव से खाते हैं। बड़े-बड़े डाक्टरों का कहना है कि बबूल की फलियों में प्रोटीन का अंश अधिक होता है, जो जानवरों के पुट्ठों और हड्डियों को मजबूत बनाता है।

बबूल के वृक्ष से गोंद प्राप्त होता है। यह गोंद बड़े काम का होता है। कई आयुर्वेदिक दवाओं में उसका उपयोग किया जाता है। रँगाई, छपाई और कागज बनाने में भी काम आता है।

बबूल की लकड़ी बड़े काम की, मज़बूत और टिकाऊ होती है। न तो जल्दी सड़ती है, न उसमें घुन लगते हैं। यही कारण है कि बबूल की लकड़ी से तरह-तरह की चीजें बनाई जाती हैं। जैसे औज़ारों के बेंट, चरखा, खूँटियाँ, नावें, नावों की डाँड़ इत्यादि। बबूल की हरी टहनियाँ दातौन के काम आती हैं। बबूल की दातौन करने से दाँत मज़बूत होते हैं।

बबूल के पेड़ पानी से जमीन के कटाव को रोकते हैं। यदि उपजाऊ जमीन की ओर रेगिस्तान का प्रभाव बढ़ रहा हो, तो सीमा पर बबूल के पेड़ लगाने से रेगिस्तान का प्रभाव रुक जाता है।

और तो और, बबूल के काँटे भी काम आते हैं। मछली पकड़ने वाले बबूल के काँटे से भी मछलियाँ

पकड़ते है ।

इस तरह बबूल का वृक्ष एक ऐसा वृक्ष है, जिसके सभी हिस्से काम में आते है। लकडी, छाल, टहनी, पत्तियां, कांटे, फलियां आदि—सबका किसी न किसी रूप मे उपयोग किया जाता है ।

बबूल के वृक्ष की तीन जातियां होती है—गोदी, कोरिया और रमाकान्ता। तीनों जातियो के वृक्षों की ऊँचाई अलग-अलग होती है। हमारे देश में दो तरह के बबूल के वृक्ष होते हैं। एक देशी बबूल, दूसरा मासवीट बबूल। देशी बबूलो के वृक्ष यहाँ अधिक संख्या में मिलते हैं।

बबूल छायादार बिलकुल नहीं होता। इसकी डालियों में बहुत कम पत्तियाँ होती है। डालियों की संख्या भी अधिक नहीं होती। वे बहुत मोटी नहीं होतीं। इन डालियों में टहनियाँ होती है, जिनमें हरे रंग की छोटी-छोटी पत्तियाँ होती है। पत्तियों के पास ही कांटे होते है। कांटे एक इंच के, बड़े नुकीले और सफेद रंग के होते हैं।

फूल पीले रंग के होते है। फूलों में कुछ-कुछ गंध भी होती है। गंध मीठी होती है। फलियाँ सफेद रंग की, तीन से छः इच तक लम्बी होती हैं। फलियों के भीतर बीज होते है। एक फली में बीजों की संख्या आठ से लेकर बारह तक होती है।

चैत-बैसाख के महीने में फूल और फलियाँ लगतो है। इन दिनों वृक्ष कुछ घना हो जाता है।

इस बात को तुम जान चुके हो, कि बबूल से गोंद प्राप्त होता है। गोंद के लिए चैत-बैसाख के महीने में वृक्ष में निशान लगा देना चाहिए। नए पेड़ों में एक वर्ष में, एक सेर से भी अधिक गोंद मिल जाता है, ज्यों-ज्यों पेड़ पुराना होने लगता है, इस मात्रा में कमी आती जाती है।

यों तो बबूल अपने आप पैदा होने वाला पेड़ है,

पर बहुत-से लोग उसके गुणों को देखते हुए, स्वयं भी उसका रोपण करते हैं। नए पौधों के लिए बीजों को मिट्टी में डाल दिया जाता है। साधारण रूप से पाये जाने वाले बीजों की अपेक्षा वे बीज बहुत अच्छे होते है, जो जानवरों के गोबर में मिलते हैं। जैसा कि तुम जान चुके हो, कि बबूल की फलियों का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है। फलियो के साथ बीज भी जानवरो के पेट में चले जाते है और गोबर के साथ बाहर निकल आते है। गोबर में निकले हुए बीज नए पौधे उगाने के लिए बहुत अच्छे होते है, क्योकि उनमें जानवरों का पाचक रस मिला रहता है।

बबूल का बीज बड़ा कड़ा होता है। जानवरों के पेट में भी नही गलता। साधारण बीज बोने से पौधे बहुत देर में उगते हैं। कभी-कभी नही भी उगते, किन्तु गोबर से प्राप्त बीजों में यह दोष नही होता। ये बीज जानवरों के पाचक रस में सने रहते है, अत जब उन्हें बोया जाता है, तो वे शीघ्र फूट पडते है और पौधे निकल आते हैं।

पौधे जब कुछ बड़े हो जाएँ, तो उन्हें उखाड़कर इच्छित स्थानों में लगा देना चाहिए। स्थान साफ-सुथरा, हवादार और रोशनी वाला होना चाहिए।

यदि पौधों को अनुकूल हवा मिलती रहे और उनकी सुरक्षा भी होती रहे, तो एक-दो वर्ष में ही पौधे पेड़ का रूप धारण कर लेते हैं।"

दादा अपनी बात समाप्त करके विचारों में डूब गए। वे कुछ क्षणों तक सोचते रहे, फिर बोले, "बोलो अब तो यह न कहोगे, कि बबूल का पेड़ क्यों लगायें?"

राम ने कहा, "नहीं दादा, अब तो यह बात हमारी समझ में आ गई कि, बबूल काँटेदार ही नहीं होता, बड़ा उपयोगी भी होता है। उसका रोपण अवश्य करना चाहिए।"

दादा उठ पड़े, सबके साथ बड़े प्रेम से वृक्षारोपण करने लगे।

१० | बाँस का वृक्ष

दादा अपने कमरे में बैठकर राम, श्याम, किशोर और मोहन आदि को रामायण की चौपाइयों का अर्थ समझा रहे थे। सहसा उधर से एक आदमी निकला, जो डलियाँ बेच रहा था। दादा को डलियो की आवश्यकता थो। उन्होंने उस आदमी को बुलाकर, उसमे दो डलियाँ खरीदी। डलियाँ बडी सुन्दर थी, बड़े अच्छे ढग से बनाई गई थी।

दादा एक डलिया हाथ मे लेकर बडे ध्यान से देखने लगे। उन्होंने देखते ही देखते कहा, "देखो, कितनी अच्छी डलिया है। कितने अच्छे ढग से बनाई गई है।

श्याम ने दादा की बात का प्रतिपादन करते हुए कहा, "सचमुच दादा, ये डलियाँ बड़ी सुन्दर हैं। दादा, क्या आप बता सकते है, ये किस चीज से बनी है ?"

दादा ने कहा, "बांस की पतली-पतली खपच्चियों से । हमारे देश में बांस से तरह-तरह की चीजें बनाई जाती हैं। अनेक ऐसे गरीब लोग हैं, जो बांस से तरह-तरह की सुन्दर चीजें बनाकर, उन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं। यह आदमी भी उन्हीं में से एक है।"

दादा की बात सुनकर श्याम मन ही मन सोचने लगा। फिर उसने प्रश्न किया, "दादा, डलिया के अतिरिक्त बांस से और कौन-कौन सी चीजें बनाई जाती हैं?"

दादा ने उत्तर दिया, "बांस से कुर्सियां, मेजें, टोकरियां, चटाइयां, टट्टर और झोंपड़ियां आदि चीजें बनाई जाती हैं।"

दादा की बात सुनकर किशोर ने कहा, "दादा, तब तो बांस बड़े काम का वृक्ष है। क्या आप उसके सम्बन्ध में आवश्यक और उचित बातें बतायेंगे?"

"दादा ने कहा, "क्यों नहीं बतायेंगे भला! सबको बांस के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिए; क्योंकि हमें आये दिन बांस और उससे बनी चीज़ों की आवश्यकता पड़ती रहती है। तुम्हें बांस के सम्बन्ध में केवल ज्ञान ही प्राप्त नहीं करना चाहिए, उससे होने वाले लाभों को जानकर उसका रोपण भी करना चाहिए।"

दादा विचारों मे डूब गए। कुछ क्षणो बाद उन्होंने स्वयं राम, श्याम, किशोर और मोहन को बाँस के विषय मे बतलाना आरम्भ कर दिया—

"बाँस भारत के सभी राज्यों मे मिलता है। किसी-किसी राज्य मे तो यह बहुत बडी संख्या मे मिलता है। अलग-अलग राज्यों मे इसके अलग-अलग नाम हैं। हिन्दी-भाषी राज्यों मे बाँस 'बाँसे' के ही नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु अहिन्दी-भाषी राज्यों में दूसरे नामों से जाना जाता है। मराठी-भाषी क्षेत्रों मे बाँस को 'वेलू', कन्नड मे 'बिदिसआगुल' और तमिल मे 'कान्नमुंगिल' कहते हैं।

बाँस की अनेक जातियाँ होती है। पश्चिम के एक बहुत बड़े विद्वान ने, जिसका नाम वेम्बल है, बाँस की चौहत्तर जातियाँ बताई है। कुछ लोगो का कहना है, बाँस की इतनी अधिक जातियाँ है कि उनका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। जो हो, हमारे देश मे दो जातियों के बाँस विशेष रूप से मिलते है—बाँस जाति के और कटबाँस जाति के। दोनो जातियों के बाँसों की लम्बाई और मोटाई में अन्तर होता है। कटबाँस जाति के बाँस ३६ मीटर तक लम्बे होते हैं। इसी प्रकार कटबाँस जाति के पेड़ों के तने भी बाँस जाति के

पेड़ों के तने से अधिक मोटे होते हैं।

बांस की गिनती घास की कुल-परम्परा में की जाती है। जिस तरह घास को काट देने से उसके कल्ले अपने आप फिर फूटकर निकल आते हैं, उसी प्रकार बांस को काटने पर, उसकी जड़ से भी फिर कल्ला फूटता है। यदि उस कल्ले को अनुकूल हवा और पानी मिलता है, तो वह फिर बढ़कर बड़े पेड़ का रूप धारण कर लेता है।

बांसों की ऊँचाई अलग-अलग होती है। किसी जाति का पेड़ अधिक ऊँचा होता है, किसी जाति का कम ऊँचा होता है। इसी प्रकार किसी जाति के पेड़ों के तने अधिक मोटे होते हैं और किसी जाति के तने कम मोटे होते हैं। साधारण रूप से बांसों के तने खोखले होते हैं। कुछ जाति के बांसों के तने, जो सूखे प्रदेशों में मिलते हैं, ठोस होते हैं।

बांस के पेड़ में कुछ-कुछ फासले पर गाँठें होती हैं। गाँठों के पास पत्तियाँ होती हैं। पत्तियाँ हरी और लम्बी होती हैं। गाँठों के पास एक तरह का पोता भी लगता है, जो चिकना और मटमैले रंग का होता है। उसे सुपाली कहते हैं। फूल आकर्षक और बीज ज्वार के समान होता है।

बांस बारहों महीने हरा रहने वाला वृक्ष है। बांस में हर साल फूल नही लगते । किसी जाति के बांस में तीसरे वर्ष फूल लगते है, किसी जाति के बांस में पांचवें

वर्ष फूल लगते हैं। किसी-किसी जाति के बांस के फूलने में इससे भी अधिक समय लग जाता है। बांस की एक ऐसी जाति भी होती है, जिसे फूलने में पैंतालीस वर्ष तक का समय लग जाता है।

बांस दो तरह से पैदा होता है—एक तो बांस की जड़ से, और दूसरा बांस के बीज से। यदि बांस को काट दिया जाय, तो उसकी जड़ से फिर बांस का कल्ला निकल आता है। कल्ला धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा हो जाता है। इस तरह बांस को कई बार काटने पर हर बार नए कल्ले निकलते हैं। यदि बीज से बाँस उगाना हो, तो बीज मिट्टी में बो देना चाहिए। कुछ दिनों में अँखुए निकल आते हैं। बरसात के दिनों में ही बीज बोना चाहिए। अँखुए धीरे-धीरे बढ़कर, बड़े पेड़ का रूप धारण कर लेते हैं।

चाहे बांस जड़ से उगा हो या बीज से, बरसात के दिनों में ही फूटता है। फूटकर बड़ी तेजी के साथ बढ़ता है। बढ़ाव की गति प्रति घण्टे जारी रहती है। बड़ी सरलता से उसके बढ़ाव को देखा जा सकता है। चार-पाँच साल में बांस पूरा पेड़ बन जाता है। पहले वर्ष में उसकी गाँठें सुपालियों से ढँकी रहती हैं। दूसरे या तीसरे वर्ष में सुपालियां झड़ जाती है। पाँच वर्ष

के बाद, जब बांस पूरा बढ़कर तैयार हो जाता है, तो उसे काट लिया जाता है। काटने पर उसकी जड़ से फिर कल्ले फूटते हैं। यह क्रम लगातार कई वर्षों तक चलता रहता है। इसके बाद फल और बीज लगते है। फूल और बीज लगने के बाद उसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है। परिणामस्वरूप उसमें फिर कल्ले नही निकलते।

बांस अकेला नही रहता। यह जहां भी होता है चार-छः, दस-बीस बांसो के साथ होता है। किसी-किसी स्थान में तो झुण्ड के झुण्ड बांस मिलते है। सभी साथ ही साथ फूलते और फलते है। उनके इस ढंग को देखकर हम कह सकते है कि बांसो में बड़ी एकता होती है। बांसों मे परस्पर इतना प्रेम होता है कि वे कभी-कभी आपस मे मिलकर सिमट जाते है। इससे बांसों का बढाव रुक जाता है। बांस आपस में मिलकर सिमट न सकें, इसके लिए पुराने बांसों की कटाई बड़े सावधानी के साथ कर देनी चाहिए। यदि नए बांसों के सहारे के लिए कुछ पुराने बांसो को छोड़ दिया जाय, तो बांसों के आपस मे उलझने-सिमटने का भय नही रहता।

तो क्या तुम भी बांसों का रोपण करना चाहते

वर्ष फूल लगते हैं। किसी-किसी जाति के बाँस के फूलने में इससे भी अधिक समय लग जाता है। बाँस की एक ऐसी जाति भी होती है, जिसे फूलने में पैंतालीस वर्ष तक का समय लग जाता है।

बाँस दो तरह से पैदा होता है—एक तो बाँस की जड़ से, और दूसरा बाँस के बीज से। यदि बाँस को काट दिया जाय, तो उसकी जड़ से फिर बाँस का कल्ला निकल आता है। कल्ला धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा हो जाता है। इस तरह बाँस को कई बार काटने पर हर बार नए कल्ले निकलते हैं। यदि बीज से बाँस उगाना हो, तो बीज मिट्टी में बो देना चाहिए। कुछ दिनों में अँखुए निकल आते हैं। बरसात के दिनों में ही बीज बोना चाहिए। अँखुए धीरे-धीरे बढ़कर, बड़े पेड़ का रूप धारण कर लेते हैं।

चाहे बाँस जड़ से उगा हो या बीज से, बरसात के दिनों में ही फूटता है। फूटकर बड़ी तेजी के साथ बढ़ता है। बढ़ाव की गति प्रति घण्टे जारी रहती है। बड़ी सरलता से उसके बढ़ाव को देखा जा सकता है। चार-पाँच साल में बाँस पूरा पेड़ बन जाता है। पहले वर्ष में उसकी गाँठें सुपालियों से ढँकी रहती हैं। दूसरे या तीसरे वर्ष में सुपालियाँ झड़ जाती हैं। पाँच वर्ष

के बाद, जब बांस पूरा बढ़कर तैयार हो जाता है, तो उसे काट लिया जाता है। काटने पर उसकी जड़ से फिर कल्ले फूटते हैं। यह क्रम लगातार कई वर्षों तक चलता रहता है। इसके बाद फल और बीज लगते है। फूल और बीज लगने के बाद उसकी उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जाती है। परिणामस्वरूप उसमें फिर कल्ले नहीं निकलते।

बांस अकेला नही रहता। वह जहां भी होता है, चार-छः, दस-बीस बांसों के साथ होता है। किसी-किसी स्थान में तो झुण्ड के झुण्ड बांस मिलते हैं। सभी साथ ही साथ फूलते और फलते हैं। उनके इस ढंग को देखकर हम कह सकते हैं कि बांसों में बड़ी एकता होती है। बांसों में परस्पर इतना प्रेम होता है कि वे कभी-कभी आपस में मिलकर सिमट जाते हैं। इससे बांसों का बढ़ाव रुक जाता है। बांस आपस मे मिलकर सिमट न सके, इसके लिए पुराने बांसों की कटाई बड़े सावधानी के साथ कर देनी चाहिए। यदि नए बांसों के सहारे के लिए कुछ पुराने बांसों को छोड़ दिया जाय, तो बांसों के आपस में उलझने-सिमटने का भय नही रहता।

तो क्या तुम भी बांसों का रोपण करना चाहते

हो ? सुनो, बाँसों का रोपण दो प्रकार से होता है, एक तो बीज से पौधा उगाकर, दूसरा फुटावों के द्वारा, जो जड़ और गाँठों के पास होता है। अपनी क्यारी में बीज बो दो। बाँस का बीज किसी भी सरकारी बीज-भण्डार से मिल सकता है। जब पौधा निकल आये तो इच्छित स्थान में लगा दो। इसी प्रकार फुटावों को भी नर्सरी में गाड़ कर पौधा उगाया जा सकता है, और इच्छित स्थान में उसका रोपण किया जा सकता है। इस विधि से बाँस का जो पेड़ पैदा होता है, उसके फूलने-फलने का समय वही होता है, जिससे फुटाव लिया जाता है।

किन्तु अपने पौधों की रक्षा तुम्हें सावधानी के साथ करनी होगी, क्योंकि प्राय. गाय-भैंस बाँसों के पौधों को खा जाती है। चिड़ियों का हमला इसके बीजों पर अधिक होता है। चूहे, खरगोश, सूअर और साही आदि जानवर भी पौधों को नुकसान पहुँचाते है।

बाँस जब तैयार हो जायँ, तो उनसे आग दूर रखनी चाहिए; क्योंकि बाँसों और आग की शत्रुता जगतप्रसिद्ध है। यदि आग बाँसों को पकड़ लेती है तो फिर सब कुछ जलाकर ही शान्त होती है।

बाँस के गुणों को देखकर हर एक आदमी को

अपनी सुविधानुसार उसे लगाना चाहिए। हमें इस वर्ष बरसात में बाँस के वृक्षों का रोपण बड़े उत्साह से करना चाहिए।"

राम, श्याम, किशोर, मोहन ने बड़े उत्साह से कहा, "*अवश्य करना चाहिए, अवश्य !*"

११ | देवदार का वृक्ष

दादा ने कहा, "बच्चो, आज हम तुम्हें एक ऐसे वृक्ष के सम्बन्ध मे बतायेंगे, जिसे देवताओं का वृक्ष कहते हैं।"

मोहन ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा, "दादा, वह कौन-सा वृक्ष है, जिसे देवताओं का वृक्ष कहते हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "उस वृक्ष का नाम देवदार है। देवदार को देवदारु भी कहते है। यह और भी कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे—कीलर, कैलू, दियार और देओदार, पर इन सभी नामों से इसका देवदार नाम ही अधिक प्रचलित है।

तुम पूछ सकते हो कि, देवदार को देवताओं का वृक्ष क्यों कहते हैं ? इसके दो कारण हैं। एक तो इसका नाम ही देवदार है, जिसका अर्थ करने से यह स्पष्ट होता है कि, यह देवताओं का वृक्ष है। दूसरा कारण यह है कि पश्चिमी हिमालय पर, जिसे देवताओं की

भूमि कहा जाता है, देवदार के वृक्ष अधिक मिलते हैं।

देवदार ऐसा वृक्ष है, जो पहाड़ों पर उगता है। यों यह मैदानी क्षेत्रों में भी उगाया जाता है, पर पहाड़ों

पर तो उसके जंगल के जगल मिलते हैं। पश्चिमी हिमालय में, बड़ी ऊँचाई पर इसके बड़े-बड़े वन हैं। यों यह अकेला रहने वाला है, पर पहाड़ों पर यह बड़े-बड़े समूहों में भी मिलता है।

देवदार बड़ी ऊँचाई वाला वृक्ष है। साधारणतया इसकी ऊँचाई ४०-५० मीटर के लगभग होती है, पर कहीं-कहीं ६०-७० मीटर ऊँचे देवदार भी देखने को मिलते है। कुल्लू की घाटियों मे देवदार के कई पुराने वृक्ष हैं, जो सत्तर मीटर ऊँचे हैं। सतलुज की घाटी में एक ऐसा देवदार था, जो सत्तर मीटर से भी अधिक ऊँचा था।

देवदार का बढ़ाव बड़े ही करीने से होता है। पहले नीचे की शाखाएँ जो नोकदार होती हैं, बढ़ती और फैलती हैं। ज्यों-ज्यों वृक्ष बड़ा होता है, नीचे की शाखाएँ, ऊपर की ओर बढ़ने और फैलने लगती हैं। ऊपर की ओर बढने और फैलने में भी एक क्रम होता है। सभी शाखाएँ इस प्रकार बढ़ती हैं, मानो क्रम-क्रम से सीढ़ियों को पार कर रही हों। एक क्रम और एक ढंग से बढ़ाव होने के कारण लगता है, जैसे कोई देवदार को सँवार रहा हो। अपने सँवरे हुए रूप मे देवदार बड़ा सुन्दर लगता है। सुन्दरता ही के कारण

लोग इसे बड़े चाव से मन्दिरों के पास, तालाबों के किनारे और सड़कों की पटरियों पर लगाते है।

देवदार की पत्तियां पौने रंग की, गुच्छेदार होती है। पत्तियां आकार-प्रकार मे सुई से मिलती-जुलती होती है। फूल दो प्रकार के होते है—नर फूल और मादा फूल। एक पेड में एक ही तरह के फूल लगते हैं। फूलों का रंग पहले हरा होता है, पर जब फूल पकते है, तो रग बदल कर पीला हो जाता है। फूलों के बाद फल लगते है। फलों के भीतर बीज होते है। बीज बहुत हल्के होते है। दस बीज लगभग एक ग्राम के बराबर होते हैं।

फरवरी और मार्च के महीने मे नई पत्तियाँ निकलने लगती है। नई पत्तियो के निकलने के साथ ही साथ, पुरानी पत्तियां झडने लगती है। मई-जून तक पुरानी पत्तियां बिलकुल झड जाती है, नई-नई पत्तियो से पेड़ ढँक जाता है। इसके बाद ही फूल निकलने लगते है। जुलाई-अगस्त के महीने मे फूल पक जाते है। उन दिनों देवदार और भी अधिक सुहावना प्रतीत होता है।

फूलों में एक प्रकार का पराग होता है। नर फूलों के पराग का रंग पीला होता है। फूल जब पकते हैं,

तो नर और मादा दोनों के पराग हृदय के बीच से बाहर निकलते हैं, हवा में उड़ते है। हवा में उड़ते हुए, दोनों परागों का परस्पर संयोग होता है।

बीज बड़े उपजाऊ होते है। ये बीज पंखदार होते है। कोये जब फूटते हैं, तो बीज बाहर निकल कर, हवा में उड़कर, इधर-उधर छितरा जाते है। हवा में उड़ते हुए बीज जहाँ कहीं गिरते है वही उग आते हैं, पर ऐसे स्थानों मे नहीं उगते जहाँ धूप और रोशनी का अभाव होता है। अधिक वर्षा वाले स्थान भी देवदार के लिए अनुकूल नहों होते। जिन स्थानों में पाँच से सात सेंटीमीटर तक वर्षा होती है वे देवदार की उपज के लिए बहुत अनुकूल होते है।

यों देवदार अपने आप पहाड़ों की ऊँचाई पर पैदा होने वाला वृक्ष है, पर इसका रोपण भी किया जाता है। रोपण के लिए पौधों को ऐसे स्थानों में उगाना चाहिए, जहाँ धूप और रोशनी की भरपूर व्यवस्था हो। जब पौधे कुछ बडे हो जायें, तब उनका रोपण करना चाहिए। रोपण में धूप और रोशनी का ख्याल रखना चाहिए। तेज हवा और वर्षा से भी पौधों को बचाना चाहिए। आग से पौधों को नुकसान न पहुँचे, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि देवदार

के छोटे-छोटे पौधों को आग से बड़ा डर रहता है।

देवदार बड़े काम का वृक्ष है। मेज, कुसियाँ और घर आदि बनाने में उसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। इसका कारण यह है, कि देवदार की लकड़ी बडी मजबूत होती है। उसमें घुन लगने का डर बिलकुल नही रहता।"

दादा अपनी बात समाप्त कर कुछ सोचने लगे। उन्होने सोचते-सोचते कहा, "हमने तुम्हें देवदार के सम्बन्ध मे आवश्यक बातें बता दी। अब तुम्हारा काम है कि तुम देवदार का रोपण करो।"

राम, श्याम, किशोर, मोहन ने बड़े उत्साह से कहा, "हाँ दादा, हम अपने काम को अवश्य पूरा करेंगे—हम देवदार का रोपण अवश्य करेंगे।"

१२ | चिनार का वृक्ष

सवेरे के दस बज रहे थे। दादा एक बाक्स में मिट्टी भर कर, उसमें किसी पौधे के बीज बो रहे थे। राम, श्याम, मोहन, किशोर सबके सब दादा के पास पहुँचे, और बड़े ध्यान से दादा का मिट्टी में बीज बोना देखने लगे।

राम ने देखते-देखते प्रश्न किया, "दादा, आप यह किस चीज का बीज बो रहे हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "हम चिनार के पौधे उगाने लिए चिनार के बीज बो रहे हैं। पौधे जब बड़े हो जायेंगे, हम उनका रोपण कर देंगे।"

राम सोचने लगा। वह कुछ क्षण तक सोचता ही रहा। कुछेक क्षण पश्चात् उसने दादा से फिर प्रश्न किया, "दादा, क्या चिनार भी कोई वृक्ष होता है ? मैंने तो आज तक उसे नहीं देखा।"

दादा ने उत्तर दिया, "हाँ, चिनार भी एक वृक्ष

होना है, और होता भी है बड़ा सुन्दर ! लोग उसे 'बुना', 'बुइन' और 'भोज' भी कहते हैं। तुम उसे देखते कैसे – वह इधर हमारे आस-पास कहीं नहीं है। इसीलिए तो हम उसका पौधा उगाकर उसका रोपण करना चाहते हैं।"

दादा अपनी बात समाप्त करके सोचने लगे। कुछ क्षणों तक सोचने के बाद फिर उन्होंने अपने ही आप कहा, "हमारे देश में, केवल काश्मीर में ही चिनार के पेड़ हैं। काश्मीर की शोभा चिनार के पेड़ों से ही है। वहाँ के लोग चिनार के पेड़ को कभी नहीं काटते। वे उसे बहुत प्यार करते हैं। काश्मीर के कारीगरों ने अखरोट की लकड़ी से चिनार की पत्ती बनाकर उसे 'ट्रेड मार्क' का रूप प्रदान किया है। प्रायः हर एक काश्मीरी चीज पर चिनार की पत्ती अंकित मिलती है।

"पर तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि काश्मीर में भी चिनार विदेशों से ही पहुँचा है।"

दादा फिर सोचने लगे। मोहन ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा, "अच्छा ! पर दादा, चिनार काश्मीर में आया किस देश से है ?"

दादा ने सोचते-सोचते उत्तर दिया, "चिनार का

माकूल स्थान यूनान है। यूनान में पहाड़ों की तराई में और नदियों-नालों के किनारे प्रायः चिनार के पेड़ मिलते हैं। चिनार यूनान से ईरान, सीरिया, लेबनान और अफगानिस्तान आदि देशों में गया। फिर अफगानिस्तान होता हुआ हमारे देश में, काश्मीर में भी आ गया।"

श्याम ने दादा की ओर देखते हुए एक दूसरे प्रकार का प्रश्न किया, "दादा, चिनार का पेड़ कितना बड़ा होता है? वह अधिकतर किस प्रकार के स्थानों में पाया जाता है?"

दादा ने उत्तर दिया, "चिनार पहाड़ी पेड़ है। यह अधिकतर पहाड़ों की तराई में, नदियों के किनारे और नालों के आस-पास पाया जाता है। पश्चिमी हिमालय की तराई में चिनार के पेड़ प्रायः देखने को मिलते हैं। तराई के निवासी बड़े चाव से चिनार का रोपण करते हैं।

पर मैदानी क्षेत्रों में भी चिनार के पेड़ उगाए जाते हैं। काश्मीर में जो चिनार के पेड़ हैं, उनमें अधिकांश लगाये गए हैं। बहुत से ऐसे भी हैं, जो अपने आप उगे हैं। मुगल बादशाह अकबर ने काश्मीर के नसीमबाग में 'बहुत से चिनार के पेड़

लगवाए थे।

चिनार का पेड़ ऊँचाई की ओर अधिक ध्यान नहीं देता। उसका ध्यान केवल फैलाव ही की ओर रहता है। वह कुछ ऊपर जाकर फैलने लगता है और खूब फैलता है। काश्मीर-घाटी में ऐसे चिनार के

पेड़ मिलते हैं जिनका फैलाव पचास-साठ फुट के लगभग है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि चिनार ऊँचा नहीं होता। चिनार की ऊँचाई भी साठ-सत्तर फुट के लगभग होती है।"

किशोर ने दादा से एक और प्रश्न किया, "दादा, चिनार की पत्तियाँ और फूल-फल कैसे होते हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "चिनार की पत्तियाँ आकार-प्रकार में छोटी और हरे रंग की होती है। जाड़े के दिनों में पत्तियाँ गिर जाती है। अप्रैल-मई के महीने में नई पत्तियाँ निकलती हैं। उसके बाद ही फल और फूल लगते है। जुलाई में फल पक जाते है, जो हल्के होने के साथ ही साथ बहुत छोटे होते है। बीजों से नए पौधे उगते है। कुछ तो अपने आप उगते हैं, और कुछ उगाये भी जाते है।"

मोहन ने प्रश्न किया, "चिनार के पौधे किस प्रकार उगाये जाते हैं ?"

दादा ने उत्तर दिया, "ये पौधे दो प्रकार से उगाये जाते है—बीजो के द्वारा और कलमो के द्वारा। बीजो के द्वारा पौधे उगाने के लिए बाजों को एक ऐसे बाक्स में बो दिया जाता है, जिस में मिट्टी भरी होती है। बीज बोने के बाद, उस पर रेत और खाद का चूरा डाल दिया जाता है। उसे पानी के फुहारों से तर कर दिया जाता है। सात-आठ दिन मे अँखुए निकल आते हैं। जब अँखुए बढकर आठ-दस इंच के हो जाते है, तो उन्हे सावधानी से उखाड कर क्यारियो में लगा दिया

जाता है । पौधे लगभग दो वर्ष तक क्यारियों में ही बढ़ते और हृष्ट-पुष्ट होते है । उसके बाद इच्छित स्थानों में उनका रोपण किया जाता है ।

बहुत से लोग पौधे न उगाकर चिनार की कलमें भी लगाते है । यदि कलम लगानी हो, तो मुलायम-सी कलम लेनी चाहिए । कलम एक हाथ लम्बी और उँगली के समान मोटी होनी चाहिए । उसे मिट्टी में गाड़ देना चाहिए । तुम देखोगे कि उसमें शीघ्र ही जड़े पैदा हो जायेंगी और पौधा निकल आयेगा ।

यद्यपि पौधों को पाले से नुकसान नही होता, पर उन्हें तेज हवा से बचाने की आवश्यकता है। तेज हवा मे प्राय. पौधे गिर पड़ते है । कलमी पौधे बहुत शीघ्र बढ़ते है । पौधे छ-सात वर्ष में बढ़कर पूरे पेड़ बन जाते है।"

दादा की बातें सुनकर राम, श्याम, किशोर, मोहन सोचने लगे । मोहन ने सोचते-सोचते पूछा, "दादा, आपने चिनार की लकड़ी के बारे मे कुछ नही बताया।"

दादा ने कहा, "चिनार की लकड़ी पीले रंग की और बहुत अच्छी होती है । कुशल कारीगर उससे तरह-तरह के खिलौने और बर्तन बनाते है।"

हमारा चिनार जब तैयार हो जाएगा, तो इसकी

लकड़ी से खिलौने और बर्तन तैयार करायेंगे।

राम, श्याम, किशोर, मोहन सब एकसाथ हँस पड़े और दादा पौधे उगाने के लिए बीज बोने लगे। बाक्स में रेत और खाद डालने लगे।

३ | अमलतास का वृक्ष

दादा ने कहा, "आओ, तुम्हें आज एक ऐसे वृक्ष
हाल बताएँ, जो केवल अपने सुनहरे फूलों और
ी छाया के लिए लगाया जाता है ।"

किशोर ने कहा, "अवश्य बताइए, दादा ! उस
त का नाम क्या है और वह कहाँ उगता है ?"

दादा ने उत्तर दिया,"उस वृक्ष को अमलतास कहते
। अमलतास का पेड़ पहाड़ों की घाटियों और मैदानों
दोनों स्थानों में उगता है । शिवालिक और उत्तरी
मालय की घाटियों में, पाँच-पाँच हजार फुट की
चाई पर भी अमलतास के पेड मिलते है। मैदानों मे भी
ही-कही अमलतास मिलता है। अमलतास जहाँ कही
होता है, इक्का-दुक्का ही होता है । जैसे आम के
ीचे होते है, उस तरह अमलतास का बगीचा तुम्हें
ही भी न मिलेगा, क्योंकि पेड़ो मे यह उपयोगी पेड़
ही समझा जाता । इसलिए लोग अधिक संख्या में

इसका रोपण नहीं करते।"

मोहन ने दादा की ओर देखते हुए कहा, "अमलतास का पेड़ कितना ऊँचा होता है दादा? उसकी पत्तियाँ और उसके फल-फूल कैसे होते है?"

दादा ने उत्तर दिया, "अमलतास का पेड़ लगभग पचास-साठ फुट ऊँचा होता है। कहीं-कहीं इससे कम ऊँचाई के भी अमलतास मिलते हैं। इसके तने का घेरा पाँच फुट के लगभग होता है। यह पेड़ों के झुण्ड मे अपनी जाति का अकेला पेड़ होता है। अकेला होने पर भी, यह अपने फूलो के द्वारा अपनी सत्ता को प्रकट करता रहता है। अमलतास की पत्तियाँ आकार-प्रकार में छोटी और हरे रंग की होती हैं, किन्तु जब पत्तियाँ निकलती है, तो वे धानी और ताबई रंग की होती हैं। ज्यों-ज्यों पत्तियाँ बढ़ती है उनका रंग हरा होता जाता है। पत्तियाँ जब बढ़कर पूरे आकार की हो जाती हैं, तो उनका रंग बिलकुल चटकीला हरा हो जाता है।

अमलतास घनी पत्तियो वाला छायादार पेड़ है। प्रत्येक टहनी मे चार से लेकर आठ तक पत्तियाँ निकलती हैं। बसन्त के पहले पत्तियाँ झड़कर गिर जाती है। मई के बाद फिर नई-नई पत्तियाँ निकलती

अमलतास का वृक्ष

हैं। जिन दिनों नई पत्तियाँ निकलती हैं, अमलतास की सुन्दरता में पंख लग जाते हैं।

अमलतास के फूल सुनहरे और चमकदार होते

हैं। नई पत्तियों के बाद ही डालियों में फूल निकलते हैं। अपने सुनहरे फूलों और नई पत्तियों के कारण अमलतास अनोखी वेश-भूषा में सज उठता है, मानो वह पेड़ों का राजा हो।

फूल के बाद ही इसमें फल लगते हैं। अमलतास के फलों को हम फलियाँ कहेंगे क्योंकि वे डेढ़ फुट लम्बे और एक इंच मोटे आकार के होते हैं। फलियाँ जून-जुलाई में निकलती हैं और नवम्बर-दिसम्बर तक रहती हैं। पतझड़ के दिनों में जब पत्ते झड़ने लगते हैं, तो फलियाँ भी झड़ जाती हैं।

फलियों के भीतर कई खाने से बने रहते हैं। ये खाने एक प्रकार से मीठे गूदे से भरे रहते हैं। उसी गूदे के भीतर अमलतास का बीज छिपा रहता है। हर एक खाने में कत्थई रंग का एक बीज होता है।

अमलतास की फलियों को गीदड़, भालू, बंदर और सूअर आदि जानवर बड़े चाव से खाते है। कई दवाओं में भी इसकी फलियों का उपयोग किया जाता है। उसका गूदा तम्बाकू में मिलाया जाता है। गूदा बड़ा दस्तावर होता है।"

राम सोचने लगा। दो-एक क्षण पश्चात् बोला, ", यदि अमलतास का पेड़ लगाना हो, तो किस

तरह लगाना चाहिए ?"

दादा ने उत्तर दिया, "अमलतास अपनी फलियों और अपनी लकड़ी के लिए बहुत उपयोगी नही समझा जाता। उसकी फलियों का उपयोग केवल दवाओं में किया जाता है। इसी प्रकार उसकी लकड़ी भी केवल कुछ औज़ारों के बेंट बनाने के ही काम में आती है। लकड़ी कत्थई पीले रंग की और वज़नी होती है। यही कारण है कि अमलतास का पेड़ बहुत कम लगाया जाता है, फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह बिलकुल अनुपयोगी समझ कर छोड़ दिया जाता है। बहुत से लोग अमलतास का पेड़ बड़े चाव से लगाते हैं, क्योंकि उसकी लकड़ी जलाने के काम में आती है। उसकी लकड़ी का कोयला बहुत अच्छा होता है। अमलतास के पेड़ की छाल बहुत अच्छी समझी जाती है। चमड़े को रंगीन बनाने में उसका उपयोग बड़े आदर से किया जाता है।

पौधे उगाने के लिए अमलतास के बीजों को छोटी-छोटी क्यारियों में बो देना चाहिए। बोने के पहले बीजों को पानी में भिगो देना चाहिए, क्योंकि बीजों के ऊपर का छिलका बड़ा कड़ा होता है। बिना भिगोए बोने से बीज मिट्टी के भीतर पड़े रहते हैं, उगते नहीं,

भीतर ही भीतर सड़-गलकर नष्ट हो जाते हैं। पर भिगोए बीजों से पौधे शीघ्र ही बाहर निकल आते हैं। जब पौधे कुछ बड़े हो जायें, तो उन्हें उखाड़कर टोकरियों में लगा देना चाहिए। समय-समय पर पौधों की निराई-गोडाई करनी चाहिए। अमलतास के पौधों को जानवरों से भय नहीं रहता, क्योंकि जानवर इन पौधों में मुँह लगाकर ही इन्हें छोड़ देते है। इन्हें खाने का साहस उनमें नहीं होता। फिर भी धूप और पाले से पौधों के नष्ट हो जाने का डर रहता है। जब पौधे बड़े और हृष्ट-पुष्ट हो जायें तो उन्हे इच्छित स्थानों में लगा देना चाहिए।

कुछ लोग अमलतास की कलम भी लगाते है।"

दादा अपनी बात समाप्त करके मौन हो गए। राम ने दादा की ओर देखते हुए कहा, "तो दादा, क्यों न अमलतास का वृक्ष लगाया जाय ?"

दादा ने कहा, "हाँ, हाँ, अवश्य लगाना चाहिए। चलो, पौधा उगाने के लिए बीज बोएँ।"

दादा राम, श्याम, किशोर और मोहन के साथ अमलतास का बीज बोने के लिए छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाने लगे। ❀ ❁

राजकुमारी श्रीवास्तव

वृक्षारोपण

मूल्य : पन्द्रह रुपये

प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
३५४३, जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

संस्करण : 1989

रूप-सज्जा : नम्पर

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली-११०

दो शब्द

यज्ञ-याग करना, और वृक्ष लगाना—दोनों एक समान हैं।

जिस प्रकार यज्ञ-याग से सकट टलते हैं, जन-कल्याण होता है, उमी प्रकार वृक्षो से भी सकट टलते हैं, जन-कल्याण होता है।

इसी बात को दृष्टि मे रखकर, आजकल वृक्षारोपण पर अधिक बल दिया जाता है। स्वर्गीय कन्हैयालाल मुन्शो ने एक बार वृक्षारोपण करते हुए कहा था, "वृक्ष मनुष्य के सबसे बड़े मित्र होते हैं। इन मित्रों को पैदा करना मनुष्य का सबसे बड़ा और पवित्र कर्त्तव्य होता है।"

स्वर्गीय श्रीमति इन्दिरा गांधी ने भी कहा था, "वृक्षों की हरियाली से देश की खुशहाली और बढ़ेगी।" आज हमारे सम्पूर्ण देश में ही वृक्षारोपण का कार्य जोर-शोर से हो रहा है। यह कार्यक्रम देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

'वृक्षारोपण' पुस्तक में कुछ उपयोगी वृक्षों के महत्त्व और उनके रोपण पर ही, सरल ढग से प्रकाश डाला गया है।

इसका उद्देश्य बच्चों, प्रौढ़ों और वयस्को के मन मे वृक्षों के बारे में प्रेम पैदा करना तो है ही, उन्हे सामान्य ज्ञान कराना भी है।

पुस्तक की भाषा और शैली वर्णनात्मक है, सरल है, सुबोध है।

आशा है, इससे पाठको का मनोरजन एवं ज्ञानवर्द्धन होगा।

—राजकुमारी श्रीवास्तव

क्रम-सूची

आओ वृक्षारोपण करें	...	५
वृक्षारोपण क्यों करें ?	...	६
१ आम का वृक्ष	...	१३
२. जामुन का वृक्ष	...	१९
३ शीशम का वृक्ष	...	२६
४. नीम का वृक्ष	...	३३
५. पीपल का वृक्ष	...	४१
६. इमली का वृक्ष	...	५४
७. अशोक का वृक्ष	...	६०
८. सेमल का वृक्ष	...	६६
९ बबूल का वृक्ष	...	७४
१०. बाँस का वृक्ष	...	८१
११. देवदार का वृक्ष	...	९०
१२. चिनार का वृक्ष	.	९६
१३. अमलतास का वृक्ष	...	१०३

आओ, वृक्षारोपण कर

दादा ने कहा, "आओ, वृक्षारोपण करे!"

राम, श्याम, मोहन, किशोर आदि सब दादा के पास बैठे हुए थे।

राम ने कहा, "वृक्षारोपण करे! दादा, वृक्षारोपण क्यो करे? वृक्षारोपण से क्या होगा?"

श्याम ने हाँ मे हाँ मिलाते हुए कहा, "हाँ दादा, वृक्षारोपण क्यो करे? वृक्षारोपण से लाभ क्या होगा?"

दादा ने राम और श्याम की ओर देखते हुए कहा, "तो तुम जानना चाहते हो, वृक्षारोपण क्यो करे?"

राम, श्याम, मोहन सबने कहा, "हाँ दादा, हम सब जानना चाहते है, वृक्षारोपण क्यों करे?"

दादा राम, श्याम, मोहन और किशोर को बताने लगे, कि वृक्षारोपण क्यों करे? वृक्षारोपण से क्या-क्या लाभ है?

मुकदमे चलाये। उन्हें अपने जीवन मे लगभग ढाई वर्ष की कैद की सजा हुई तथा दो वर्ष नजरबन्द रखा गया। सरदार अजीतसिंह से अंग्रेज सरकार अत्यधिक भयभीत रहती थी। अंग्रेजो के विरुद्ध आन्दोलनो मे भाग लेने के कारण जून 1907 मे उन्हे भारत से दूर बर्मा की राजधानी रगून भेज दिया गया। भगतसिंह के जन्म के समय वह वही कैद मे थे। कुछ ही महीनो बाद वहाँ से रिहा होने के बाद वह ईरान, टर्की एव आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध मे जर्मनी के हार जाने पर वह वहाँ से ब्राजील चले गये थे। सन् 1946 मे मध्यावधि सरकार बनने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नो से पुन भारत आये।

भगतसिंह के छोटे चाचा स्वर्णसिंह भी अपने पिता और दोनो बडे भाइयो के समान स्वतन्त्रता सेनानी थे। बड़े भाई सरदार किशनसिंह ने 'भारतमाता सोसायटी' की स्थापना की थी। स्वर्णसिह भी इसमे शामिल हो गये थे। उन्हे राजद्रोह के मुकदमे मे कैद की सजा हुई और लाहौर सेण्ट्रल जेल मे रखा गया। जहाँ उनसे कोल्हू मे बैल की तरह काम लिया गया, जिससे उन्हें टी० बी० हो गयी और केवल 23 वर्ष की अल्प आयु मे ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार के परिवार मे जन्म लेने के कारण भगतसिंह को देशभक्ति और स्वतन्त्रता का पाठ अनायास ही पढने को मिला था। पूत के पाँव पालने मे ही दिखाई पडते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात, यह कहावत भगतसिंह पर भी खरी उतरती है। उनकी आदतें, उनकी बातें, उनका व्यवहार आदि बचपन से ही बड़ा अनोखा था। अभी वह केवल तीन ही वर्ष के थे, एक दिन उनके पिता सरदार किशनसिंह उन्हें लेकर अपने मित्र श्री नन्दकिशोर मेहता के पास उनके खेत मे गये। बालक भगतसिंह ने मिट्टी के ढेरो पर छोटे-छोटे तिनके लगा दिये। उनके इस काम को देख-कर श्री मेहता और बालक भगतसिंह के बीच जो बातचीत हुई वह देखने योग्य है—

मेहता—तुम्हारा नाम क्या है ?

भगतसिंह—भगतसिंह।

मेहता—तुम क्या करते हो ?

कर घर आ गये तथा लगभग इसी समय दूसरे चाचा सरदार अजीतसिंह भी रिहा कर दिये गये। इस प्रकार उनके जन्म लेते ही घर में एकाएक खुशियों की बहार आ गयी, अतः उनके जन्म को शुभ समझा गया। इस भाग्यशाली बालक का नाम उनकी दादी ने भागां वाला अर्थात् अच्छे भाग्य वाला रखा। इसी नाम के आधार पर उन्हें भगतसिंह कहा जाने लगा।

भगत सिंह अपने माता-पिता की दूसरी सन्तान थे। सरदार किशन सिंह के सबसे बड़े पुत्र का नाम जगतसिंह था, जिसकी मृत्यु केवल ग्यारह वर्ष की छोटी अवस्था में ही हो गयी थी, जब वह पाँचवीं कक्षा में ही पढ़ता था। इस प्रकार पहले पुत्र की इतनी छोटी अवस्था में मृत्यु हो जाने के कारण भगतसिंह को ही अपने माता-पिता की सबसे पहली सन्तान माना जाता है। भगतसिंह के अलावा सरदार किशनसिंह के चार पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ और थीं। कुल मिलाकर उनके छः पुत्र हुए थे तथा तीन पुत्रियाँ, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—जगतसिंह, भगतसिंह, कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह, राजेन्द्रसिंह, रणबीरसिंह, बीबी अमर कौर, बीबी प्रकाश कौर (सुमित्रा) तथा बीबी शकुन्तला।

देशप्रेम की शिक्षा भगतसिंह को अपने परिवार से विरासत में मिली थी। उनके दादा सरदार अर्जुनसिंह भी अंग्रेज सरकार के कट्टर विरोधी थे। यह वह समय था, जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक भी शब्द बोलना मौत को बुलावा देने के समान था। इन दिनों अंग्रेजों की प्रशंसा करना लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसी से उन्हें सब प्रकार का लाभ होता था। इसलिए सरदार अर्जुनसिंह के दो भाई सरदार बहादुरसिंह तथा सरदार दिलबागसिंह भी अंग्रेजों की खुशामद करना अपना धर्म समझते थे, जबकि सरदार अर्जुनसिंह को अंग्रेजों से घृणा थी। अतः उनके ये दोनों भाई उन्हें मूर्ख समझते थे। सरदार अर्जुनसिंह के तीन पुत्र थे—सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह तथा सरदार स्वर्णसिंह। तीनों भाई अपने पिता के समान ही निडर देशभक्त थे।

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह पर भारत की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में सरकार ने 42 बार राजनीतिक

मुकदमे चलाये। उन्हें अपने जीवन में लगभग ढाई वर्ष की कैद की सजा हुई तथा दो वर्ष नजरबन्द रखा गया। सरदार अजीतसिंह से अंग्रेज सरकार अत्यधिक भयभीत रहती थी। अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में भाग लेने के कारण जून 1907 में उन्हें भारत से दूर बर्मा की राजधानी रंगून भेज दिया गया। भगतसिंह के जन्म के समय वह वहीं कैद में थे। कुछ ही महीनों बाद वहाँ से रिहा होने के बाद वह ईरान, टर्की एवं आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी के हार जाने पर वह वहाँ से ब्राजील चले गये थे। सन् 1946 में मध्यावधि सरकार बनने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों से पुनः भारत आये।

भगतसिंह के छोटे चाचा स्वर्णसिंह भी अपने पिता और दोनों बड़े भाइयों के समान स्वतन्त्रता सेनानी थे। बड़े भाई सरदार किशनसिंह ने 'भारतमाता सोसायटी' की स्थापना की थी। स्वर्णसिंह भी इसमें शामिल हो गये थे। उन्हें राजद्रोह के मुकदमे में कैद की सजा हुई और लाहौर सेन्ट्रल जेल में रखा गया। जहाँ उनसे कोल्हू में बैल की तरह काम लिया गया, जिससे उन्हें टी० बी० हो गयी और केवल 23 वर्ष की अल्प आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार के परिवार में जन्म लेने के कारण भगतसिंह को देशभक्ति और स्वतन्त्रता का पाठ अनायास ही पढ़ने को मिला था। पूत के पाँव पालने में ही दिखाई पड़ते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात, यह कहावत भगतसिंह पर भी खरी उतरती है। उनकी आदतें, उनकी बातें, उनका व्यवहार आदि बचपन से ही बड़ा अनोखा था। अभी वह केवल तीन ही वर्ष के थे, एक दिन उनके पिता सरदार किशनसिंह उन्हें लेकर अपने मित्र श्री नन्दकिशोर मेहता के पास उनके खेत में गये। बालक भगतसिंह ने मिट्टी के ढेरों पर छोटे-छोटे तिनके लगा दिये। उनके इस काम को देख-कर श्री मेहता और बालक भगतसिंह के बीच जो बातचीत हुई वह देखने योग्य है—

मेहता—तुम्हारा नाम क्या है?
भगतसिंह—भगतसिंह।
मेहता—तुम क्या करते हो?

कर घर आ गये तथा लगभग इसी समय दूसरे चाचा सरदार अजीतसिंह भी रिहा कर दिये गये। इस प्रकार उनके जन्म लेते ही घर में यकायक खुशियों की बहार आ गयी, अतः उनके जन्म को शुभ समझा गया। इस भाग्यशाली बालक का नाम उनकी दादी ने भागा वाला अर्थात् अच्छे भाग्य वाला रखा। इसी नाम के आधार पर उन्हें भगतसिंह कहा जाने लगा।

भगत सिंह अपने माता-पिता की दूसरी सन्तान थे। सरदार किशन सिंह के सबसे बड़े पुत्र का नाम जगतसिंह था, जिसकी मृत्यु केवल ग्यारह वर्ष की छोटी अवस्था में ही हो गयी थी, जब वह पाँचवीं कक्षा में ही पढता था। इस प्रकार पहले पुत्र की इतनी छोटी अवस्था में मृत्यु हो जाने के कारण भगतसिंह को ही अपने माता-पिता की सबसे पहली सन्तान माना जाता है। भगतसिंह के अलावा सरदार किशनसिंह के चार पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ और थी। कुल मिलाकर उनके छः पुत्र हुए थे तथा तीन पुत्रियाँ, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—जगतसिंह, भगतसिंह, कुलवीरसिंह, कुलतारसिंह, राजेन्द्रसिंह, रणवीरसिंह, बीबी अमर कौर, बीबी प्रकाश कौर (सुमित्रा) तथा बीबी शकुन्तला।

देशप्रेम की शिक्षा भगतसिंह को अपने परिवार से विरासत में मिली थी। उनके दादा सरदार अर्जुनसिंह भी अंग्रेज सरकार के कट्टर विरोधी थे। यह वह समय था, जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक भी शब्द बोलना मौत को बुलावा देने के समान था। इन दिनों अंग्रेजों की प्रशंसा करना लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसी से उन्हें सब प्रकार का लाभ होता था। इसलिए सरदार अर्जुनसिंह के दो भाई सरदार बहादुरसिंह तथा सरदार दिलबागसिंह भी अंग्रेजों की खुशामद करना अपना धर्म समझते थे, जबकि सरदार अर्जुनसिंह को अंग्रेजों से घृणा थी। अतः उनके ये दोनों भाई उन्हें मूर्ख समझते थे। सरदार अर्जुनसिंह के तीन पुत्र थे—सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह तथा सरदार स्वर्णसिंह। तीनों भाई अपने पिता के समान ही निडर देशभक्त थे।

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह पर भारत की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में सरकार ने 42 बार राजनीतिक -

मुकदमे चलाये। उन्हें अपने जीवन में लगभग ढाई वर्ष की कैद की सजा हुई तथा दो वर्ष नजरबन्द रखा गया। सरदार अजीतसिंह से अंग्रेज सरकार अत्यधिक भयभीत रहती थी। अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में भाग लेने के कारण जून 1907 में उन्हें भारत से दूर बर्मा की राजधानी रंगून भेज दिया गया। भगतसिंह के जन्म के समय वह वहीं कैद में थे। कुछ ही महीनों बाद वहाँ से रिहा होने के बाद वह ईरान, टर्की एवं आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी के हार जाने पर वह वहाँ से ब्राज़ील चले गये थे। सन् 1946 में मध्यावधि सरकार बनने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों से पुनः भारत आये।

भगतसिंह के छोटे चाचा स्वर्णसिंह भी अपने पिता और दोनों बड़े भाइयों के समान स्वतन्त्रता सेनानी थे। बड़े भाई सरदार किशनसिंह ने 'भारतमाता सोसायटी' की स्थापना की थी। स्वर्णसिंह भी इसमें शामिल हो गये थे। उन्हें राजद्रोह के मुकदमे में कैद की सजा हुई और लाहौर सेण्ट्रल जेल में रखा गया। जहाँ उनसे कोल्हू में बैल की तरह काम लिया गया, जिससे उन्हें टी० बी० हो गयी और केवल 23 वर्ष की अल्प आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार के परिवार में जन्म लेने के कारण भगतसिंह को देशभक्ति और स्वतन्त्रता का पाठ अनायास ही पढ़ने को मिला था। पूत के पाँव पालने में ही दिखाई पड़ते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात, यह कहावत भगतसिंह पर भी खरी उतरती है। उनकी आदतें, उनकी बातें, उनका व्यवहार आदि बचपन से ही बड़ा अनोखा था। अभी वह केवल तीन ही वर्ष के थे, एक दिन उनके पिता सरदार किशनसिंह उन्हें लेकर अपने मित्र श्री नन्दकिशोर मेहता के पास उनके खेत में गये। बालक भगतसिंह ने मिट्टी के ढेरों पर छोटे-छोटे तिनके लगा दिये। उनके इस काम को देखकर श्री मेहता और बालक भगतसिंह के बीच जो बातचीत हुई वह देखने योग्य है—

मेहता—तुम्हारा नाम क्या है ?

भगतसिंह—भगतसिंह।

मेहता—तुम क्या करते हो ?

कर घर आ गये तथा लगभग इसी समय दूसरे चाचा सरदार अजीतसिंह भी रिहा कर दिये गये। इस प्रकार उनके जन्म लेते ही घर में यकायक खुशियों की बहार आ गयी, अतः उनके जन्म को शुभ समझा गया। इस भाग्यशाली बालक का नाम उनकी दादी ने भागां वाला अर्थात् अच्छे भाग्य वाला रखा। इसी नाम के आधार पर उन्हें भगतसिंह कहा जाने लगा।

भगत सिंह अपने माता-पिता की दूसरी सन्तान थे। सरदार किशन सिंह के सबसे बड़े पुत्र का नाम जगतसिंह था, जिसकी मृत्यु केवल ग्यारह वर्ष की छोटी अवस्था में ही हो गयी थी, जब वह पाँचवीं कक्षा में ही पढ़ता था। इस प्रकार पहले पुत्र की इतनी छोटी अवस्था में मृत्यु हो जाने के कारण भगतसिंह को ही अपने माता-पिता की सबसे पहली सन्तान माना जाता है। भगतसिंह के अलावा सरदार किशनसिंह के चार पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ और थीं। कुल मिलाकर उनके छ: पुत्र हुए थे तथा तीन पुत्रियाँ, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—जगतसिंह, भगतसिंह, कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह, राजेन्द्रसिंह, रणबीरसिंह, बीबी अमर कौर, बीबी प्रकाश कौर (सुमित्रा) तथा बीबी शकुन्तला।

देशप्रेम की शिक्षा भगतसिंह को अपने परिवार से विरासत में मिली थी। उनके दादा सरदार अर्जुनसिंह भी अंग्रेज सरकार के कट्टर विरोधी थे। यह वह समय था, जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक भी शब्द बोलना मौत को बुलावा देने के समान था। इन दिनों अंग्रेजों की प्रशंसा करना लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसी से उन्हें सब प्रकार का लाभ होता था। इसलिए सरदार अर्जुनसिंह के दो भाई सरदार बहादुरसिंह तथा सरदार दिलबागसिंह भी अंग्रेजों की खुशामद करना अपना धर्म समझते थे, जबकि सरदार अर्जुनसिंह को अंग्रेजों से घृणा थी। अतः उनके ये दोनों भाई उन्हें मूर्ख समझते थे। सरदार अर्जुनसिंह के तीन पुत्र थे—सरदार किशनसिंह, सरदार अजीतसिंह तथा सरदार स्वर्णसिंह। तीनों भाई अपने पिता के समान ही निडर देशभक्त थे।

भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह पर भारत की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में सरकार ने 42 बार राजनीतिक

मुकदमे चलाये। उन्हें अपने जीवन में लगभग ढाई वर्ष की कैद की सजा हुई तथा दो वर्ष नजरबन्द रखा गया। सरदार अजीतसिंह से अंग्रेज सरकार अत्यधिक भयभीत रहती थी। अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में भाग लेने के कारण जून 1907 में उन्हें भारत से दूर बर्मा की राजधानी रंगून भेज दिया गया। भगतसिंह के जन्म के समय वह वहीं कैद में थे। कुछ ही महीनों बाद वहाँ से रिहा होने के बाद वह ईरान, टर्की एवं आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी के हार जाने पर वह वहाँ से ब्राजील चले गये थे। सन् 1946 में मध्यावधि सरकार बनने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों से पुन भारत आये।

भगतसिंह के छोटे चाचा स्वर्णसिंह भी अपने पिता और दोनों बड़े भाइयों के समान स्वतन्त्रता सेनानी थे। बड़े भाई सरदार किशनसिंह ने 'भारतमाता सोसायटी' की स्थापना की थी। स्वर्णसिंह भी इसमें शामिल हो गये थे। उन्हें राजद्रोह के मुकदमे में कैद की सजा हुई और लाहौर सेण्ट्रल जेल में रखा गया। जहाँ उनसे कोल्हू में बैल की तरह काम लिया गया, जिससे उन्हें टी० बी० हो गयी और केवल 23 वर्ष की अल्प आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार के परिवार में जन्म लेने के कारण भगतसिंह को देशभक्ति और स्वतन्त्रता का पाठ अनायास ही पढ़ने को मिला था। पूत के पाँव पालने में ही दिखाई पड़ते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात, यह कहावत भगतसिंह पर भी खरी उतरती है। उनकी आदतें, उनकी बातें, उनका व्यवहार आदि बचपन से ही बड़ा अनोखा था। अभी वह केवल तीन ही वर्ष के थे, एक दिन उनके पिता सरदार किशनसिंह उन्हें लेकर अपने मित्र श्री नन्दकिशोर मेहता के पास उनके खेत में गये। बालक भगतसिंह ने मिट्टी के ढेरों पर छोटे-छोटे तिनके लगा दिये। उनके इस काम को देख-कर श्री मेहता और बालक भगतसिंह के बीच जो बातचीत हुई वह देखने योग्य है—

मेहता—तुम्हारा नाम क्या है ?

भगतसिंह—भगतसिंह।

मेहता—तुम क्या करते हो ?

कर घर आ गये तथा लगभग इसी समय दूसरे चाचा सरदार अजीतसिंह भी रिहा कर दिये गये। इस प्रकार उनके जन्म लेते ही घर में यकायक खुशियों की बहार आ गयी, अतः उनके जन्म को शुभ समझा गया। इस भाग्यशाली बालक का नाम उनकी दादी ने भागां वाला अर्थात् अच्छे भाग्य वाला रखा। इसी नाम के आधार पर उन्हें भगतसिंह कहा जाने लगा।

भगत सिंह अपने माता-पिता की दूसरी सन्तान थे। सरदार किशनसिंह के सबसे बड़े पुत्र का नाम जगतसिंह था, जिसकी मृत्यु केवल ग्यारह वर्ष की छोटी अवस्था में ही हो गयी थी, जब वह पाँचवीं कक्षा में ही पढ़ता था। इस प्रकार पहले पुत्र की इतनी छोटी अवस्था में मृत्यु हो जाने के कारण भगतसिंह को ही अपने माता-पिता की सबसे पहली सन्तान माना जाता है। भगतसिंह के अलावा सरदार किशनसिंह के चार पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ और थीं। कुल मिलाकर उनके छः पुत्र हुए थे तथा तीन पुत्रियाँ, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—जगतसिंह, भगतसिंह, कुलबीरसिंह, कुलतारसिंह, राजेन्द्रसिंह, रणवीरसिंह, बीबी अमर कौर, बीबी प्रकाश कौर (सुमित्रा) तथा बीबी शकुन्तला।

देशप्रेम की शिक्षा भगतसिंह को अपने परिवार से विरासत में मिली थी। उनके दादा सरदार अर्जुनसिंह भी अंग्रेज सरकार के कट्टर विरोधी थे। यह वह समय था, जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक भी शब्द बोलना मौत को बुलावा देने के समान था। इन दिनों अंग्रेजों की प्रशंसा करना लोग अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसी से उन्हें सब प्रकार का लाभ
इसलिए सरदार अर्जुनसिंह के दो भाई सरदार
दिलबागसिंह भी अंग्रेजों की खुशामद करना अपना
सरदार अर्जुनसिंह को अंग्रेजों से घृणा थी।
मूर्ख समझते थे। सरदार अर्जुनसिंह के
सरदार अजीतसिंह
समान ही निडर देशभक्त थे

भगतसिंह के पिता
लिए अंग्रेजों के विरुद्ध

मुकदमे चलाये। उन्हे अपने जीवन मे लगभग ढाई वर्ष की कैद की सजा हुई तथा दो वर्ष नजरबन्द रखा गया। सरदार अजीतसिंह से अंग्रेज सरकार अत्यधिक भयभीत रहती थी। अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलनों में भाग लेने के कारण जून 1907 मे उन्हें भारत से दूर वर्मा की राजधानी रगून भेज दिया गया। भगतसिंह के जन्म के समय वह वहीं कैद मे थे। कुछ ही महीनों बाद वहाँ से रिहा होने के बाद वह ईरान, टर्की एव आस्ट्रिया होते हुए जर्मनी पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध मे जर्मनी के हार जाने पर वह वहाँ से ब्राजील चले गये थे। सन् 1946 मे मध्यावधि सरकार बनने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्नों से पुन भारत आये।

भगतसिंह के छोटे चाचा स्वर्णसिंह भी अपने पिता और दोनो बड़े भाइयो के समान स्वतन्त्रता सेनानी थे। बड़े भाई सरदार किशनसिंह ने 'भारतमाता सोसायटी' की स्थापना की थी। स्वर्णसिंह भी इसमें शामिल हो गये थे। उन्हे राजद्रोह के मुकदमे मे कैद की सजा हुई और लाहौर सेण्ट्रल जेल मे रखा गया। जहाँ उनसे कोल्हू में बैल की तरह काम लिया गया, जिससे उन्हें टी॰ बी॰ हो गयी और केवल 23 वर्ष की अल्प आयु मे ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार के परिवार मे जन्म लेने के कारण भगतसिंह को देशभक्ति और स्वतन्त्रता का पाठ अनायास ही पढ़ने को मिला था। पूत के पैर पालने मे ही दिखाई पडते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात, ए कहावत भगतसिंह पर भी खरी उतरती है। उनकी आदतें, उनकी [illegible] है उनका व्यवहार आदि बचपन से ही बड़ा अनोखा था। [illegible] वह केवल [illegible] ही ही वर्ष के [illegible] एक दिन उनके पिता [illegible] [illegible] खेत [illegible] मार

भगतसिंह—मैं बन्दूकें बोता हूँ।

मेहता (आश्चर्य के साथ)—बन्दूकें !

भगतसिंह—हाँ, बन्दूकें।

मेहता—ऐसा क्यों मेरे बच्चे !

भगतसिंह—अपने देश को आजाद कराने के लिए।

मेहता—तुम्हारा धर्म क्या है ?

भगतसिंह—देश की सेवा करना।

इसी प्रकार उनके चाचा अजीतसिंह के विदेश चले जाने पर इस घटना का भी बालक भगतसिंह पर अमिट प्रभाव पड़ा। पति के वियोग में उनकी पत्नी बार-बार रोती रहती थी। उन्हें रोती देख बालक भगतसिंह कहते थे, "चाची रो मत, जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, तब मैं अंग्रेजों को देश से बाहर भगा दूँगा और अपने चाचा को वापस ले आऊँगा।"

केवल पाँच वर्ष की अवस्था मे भी वह अपने साथियो के साथ खेलते समय उन्हें दो दलो मे बाँट लेते थे और एक दल दूसरे पर आक्रमण करता था।

इस सब से स्पष्ट होता है कि देशप्रेम की भावना भगतसिंह मे उनके बचपन से ही कूट-कूट कर भरी थी। श्री नन्दकिशोर मेहता स्वयं राष्ट्र-प्रेमी व्यक्ति थे। बालक भगतसिंह से उपर्युक्त बातचीत होने पर उन्होंने सरदार किशनसिंह से कहा था, "भाई तुम बहुत बड़े भाग्यवान हो। तुम्हारे घर में एक महान आत्मा ने जन्म लिया है। मेरा आशीर्वाद है कि यह बालक आपके लिये नाम पैदा करे और सारे विश्व मे प्रसिद्ध हो। इसका नाम राष्ट्र के इतिहास में अजर-अमर रहेगा।" वास्तव मे समय आने पर श्री मेहता की यह भविष्य वाणी सत्य सिद्ध हुई।

शिक्षा :

चार-पाँच वर्ष की अवस्था मे भगतसिंह का नाम बंगा गाँव के जिला बोर्ड प्राइमरी स्कूल मे लिखाया गया। वह अपने बड़े भाई जगतसिंह के साथ पढ़ने जाने लगे। स्कूल मे वह सभी साथियो को प्रिय थे। सभी विद्यार्थी उनके साथ मित्रता करना चाहते थे। भगतसिंह स्वयं भी सभी

विद्यार्थियों को अपना मित्र बना लेते थे। उनके मित्रों को उनसे कितना प्रेम था, इस बात का पता इससे लगता है कि अनेक बार उनके मित्र उन्हें कन्धों पर बिठाकर घर तक छोड़ जाते थे, किन्तु भगतसिंह की आदतें बचपन से ही अनोखी थीं। जिस अवस्था में बच्चों को खेलना-कूदना या पढ़ना अच्छा लगता है, उस अवस्था में उनका मन न जाने क्या-क्या सोचता रहता था, कहाँ-कहाँ भटकता रहता था। स्कूल के तंग कमरों में बैठे रहना उन्हें बड़ा ही उबाऊ लगता था, वह कक्षा छोड़कर खुले मैदानों में घूमने निकल जाते। कल-कल करती नदियाँ, चहचहाते पक्षी, धीरे-धीरे बहने वाली हवा उनके मन को मोह लेती थी। बड़े भाई जगतसिंह बालक भगतसिंह को कक्षा में नदारद पाकर न उन्हें ढूंढने जाते और देखते कि वह खुले मैदान में बैठे हुए हैं। जगतसिंह कहते—'तू यहाँ क्या कर रहा है? वहाँ गुरुजी पढ़ा रहे हैं। चल उठ।'

मुस्कराते हुए बालक भगतसिंह उत्तर देते—"मुझे यहीं अच्छा लगता है।"

"तू यहाँ क्या करता है?"

"कुछ नहीं, बस चुपचाप मैदान को देखता रहता हूँ।"

"मैदान को! भला मैदान में देखने की कौन-सी चीज है?"

"है तो कुछ भी नहीं भैया! लेकिन इस खुले मैदान की तरह मैं भी आजाद हो जाना चाहता हूँ।"

छोटे भाई की इस प्रकार की बातें जगतसिंह के पल्ले न पड़तीं। वह खीझते हुए कहने लगते, "अगर यही सब करना था, तो स्कूल में नाम ही क्यों लिखवाया? खेती का काम करते। पढ़ोगे नहीं, तो स्कूल में मार पड़ेगी।"

यकायक एक दुःखद घटना घट गई। उनके बड़े भाई जगतसिंह की जो उन्हीं के साथ पढ़ते थे, मृत्यु हो गई; केवल ग्यारह वर्ष की अवस्था में। इस घटना से भगतसिंह को गहरा धक्का लगा।

इसके बाद सरदार किशनसिंह लाहौर के पास नवाकोट नामक स्थान पर चले गये। इस स्थान पर भी उनकी कुछ जमीन-जायदाद थी। बालक भगतसिंह ने भी अपनी प्राइमरी की शिक्षा पूरी कर ली थी। सिक्खों में यह परम्परा थी कि वे प्रायः अपने बच्चों को खालसा स्कूल में भर्ती कराते थे। किन्तु, इस स्कूल का झुकाव अंग्रेजों के प्रति भक्ति की ओर था। यहाँ के प्रबन्धक एवं अध्यापक अंग्रेजों को अधिक सम्मान देते थे। सरदार किशनसिंह को यह सब बिल्कुल भी पसंद न था। वह एक सच्चे देशभक्त, स्वतन्त्रता सेनानी थे। वह भगतसिंह को किसी ऐसे स्कूल में भर्ती करना चाहते थे, जहाँ बच्चे पर गुलामी की छाया भी न पड़े। अतः उन्होंने भगतसिंह को लाहौर के डी० ए० वी० स्कूल में भर्ती कराने का निश्चय किया। डी० ए० वी० स्कूल राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत था। इस स्कूल में भर्ती कराने पर सरदार किशनसिंह का अपने समाज में विरोध भी हुआ, किन्तु उन्होंने इसकी बिल्कुल भी परवाह न की। यह घटना सन् 1916-17 की है। इस स्कूल में प्रवेश लेने पर भगतसिंह ने अंग्रेजी-उर्दू आदि विषयों के साथ-साथ संस्कृत का भी अध्ययन किया। संस्कृत से उन्हें विशेष अनुराग था। अपने दादाजी को लिखे गये उनके 22-7-1918 के पत्र से इस भाषा के प्रति उनके विशेष प्रेम का परिचय मिलता है। अपनी परीक्षा के परिणाम और प्राप्त किये अंकों के विषय में उन्होंने लिखा था कि संस्कृत और अंग्रेजी में उन्हें 150 में से क्रमशः 110 तथा 68 अंक मिले थे।

इसी समय सन् 1919 में 'रौलेट एक्ट' के विरोध में सारे भारत में प्रदर्शन हुए। इसी प्रकार का एक प्रदर्शन अमृतसर के जलियांवाला बाग में भी हो रहा था, जिसमें हजारों लोग उपस्थित थे। इन निहत्थे लोगों को जनरल डायर ने गोलियों से भून डाला था। जलियांवाला बाग काण्ड ने देशभक्त भारतीयों की देशभक्ति को और भी अधिक दृढ़ बना दिया। भगतसिंह एक देशभक्त परिवार की तीसरी पीढ़ी थे। अतः वह इस काण्ड

से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकते थे। इस काण्ड का समाचार सुनकर वह लाहौर से अमृतसर पहुँचे; देश-प्रेम के लिए अपने प्राणों को त्यागने वाले वीरों को अपनी श्रद्धांजलि देने के लिए। भगतसिंह की दृष्टि में जलियावाला बाग एक पवित्र धर्म-स्थल बन गया था। इस स्थान को देखकर भगतसिंह लहू के घूंट पीकर रह गये। सारा बाग खून की नदियों से भीगा हुआ था। मानो वह भूमि उनसे कह रही थी—"तुम्हें इस भूमि की कसम, भारतमाता की कसम, इस खून को बेकार मत जाने देना, तुम्हें कुर्बानी देनी है; अपने सब कुछ की, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी कुर्बानी, अंग्रेजों के इस अत्याचार को समाप्त करना है···" और रक्त से सनी उस मिट्टी को भगतसिंह ने अपनी मुट्ठी में भर लिया और कुर्बानी का प्रण किया। इस मिट्टी को उन्होंने एक बोतल में रख लिया। यह मिट्टी उन्हें सदा याद दिलाती रहती थी कि उन्हें अपने देश और देशवासियों के अपमान का बदला लेना है।

सन् 1920 में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन चलाया। इस आंदोलन से उन्होंने देशवासियों से माँग की कि विद्यार्थी सरकारी स्कूलों को छोड़ दें, लोग सरकारी न्यायालयों, पदों, पदवियों, नौकरियों आदि का त्याग कर दें। फलतः भगतसिंह ने भी सन् 1921 में स्कूल छोड़ दिया। तब वह डी० ए० वी० स्कूल लाहौर की नौवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर देश में अनेक स्कूल तथा कालेज देश के प्रमुख शहरों में खोले गये। इसी समय देश में अनेक विश्वविद्यालयों तथा विद्यापीठों की स्थापना भी हुई। गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, पंजाब, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पंजाब झाँसी विद्यापीठ, राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ आदि इसी काल में स्थापित विश्वविद्यालयों में से हैं। लाला लाजपत राय ने लाहौर में नेशनल कालेज की स्थापना की थी। यह कालेज काशी विद्यापीठ से सम्बद्ध था। असहयोग आंदोलन में भाग लेनेवाले अनेक विद्यार्थियों ने इसी कालेज में प्रवेश लिया था। भगतसिंह ने भी इसी कालेज में प्रवेश लिया।

अनेक पुस्तकों में लिखा गया है कि डी० ए० वी० स्कूल से मैट्रिक

पास करने पर भगतसिंह ने नेशनल कालेज में प्रवेश लिया। यह कथन सत्य नहीं है। सच तो यह है कि जब उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर डी० ए० वी० स्कूल छोड़ा था, तो वह नौवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। नेशनल स्कूल में प्रवेश पाने के लिए उन्हें दो महीने का समय दिया गया और फिर उनकी परीक्षा ली गयी। इस परीक्षा में सफल होने पर ही उन्हें नेशनल कालेज में प्रवेश मिल पाया।

क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में :

पंजाब नेशनल कालेज में उनकी देशभक्ति की भावना को फूलने-फलने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इस कालेज की स्थापना ही स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए कर्मठ कार्यकर्ताओं को तैयार करना था। जबकि सरकारी या अन्य कालेजों में विद्यार्थियों का उद्देश्य परीक्षा उत्तीर्ण करके सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करना रहता था। हाँ, इसमें गांधी आश्रम के जैसे सख्त नियम नहीं थे। सभी विद्यार्थी लगभग सादे वस्त्रों में रहते थे। खादी की ओर झुकाव था, किन्तु मशीन के कपड़े पहनने वाले विद्यार्थी भी थे। कम से कम कपड़ों में काम चला लेना, सभी कामों को अपने हाथों से करना और भोजन में बिना पकी सब्जियों को खाना अच्छा समझा जाता था। गांधी आश्रम की तरह प्रार्थना और संध्या का नियम नहीं था। अतः इस कालेज का वातावरण भगतसिंह को सुन्दर लगा।

इसी कालेज में उनका परिचय यशपाल, भगवती चरण, सुखदेव, रामकिशन, तीर्थराम, झण्डासिंह आदि क्रान्तिकारियों के साथ हुआ। भगवती चरण और सुखदेव से उनका जीवन में लम्बे समय तक साथ रहा। कालेज की पढ़ाई के अलावा इस कालेज में भाई परमानन्द, लाला लाजपत राय आदि के भाषण भी होते रहते थे। इन भाषणों से सभी विद्यार्थियों को देशभक्ति, राष्ट्रवाद आदि की शिक्षा मिलती रहती थी। प्रो० जयचन्द विद्यालंकार इस कालेज में इतिहास के अध्यापक थे। सभी विद्यार्थी उनसे अत्यधिक प्रभावित थे। भगतसिंह पर प्रो० जयचन्द विद्यालंकार का विशेष स्नेह था। वे भगतसिंह को क्रान्तियों के बारे में बताते रहते थे। उनका कई क्रान्तिकारियों से सम्पर्क था। उनके विचारों [illegible] यह

पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। वस्तुत: वे ही भगतसिंह के राजनीतिक गुरु थे।

हँसमुख और शरारती विद्यार्थी के रूप में

पढ़ाई में भगतसिंह अत्यधिक परिश्रम करते थे। इतिहास और राजनीति में उनकी विशेष रुचि थी। इन विषयों को लेकर वह अपने साथियों तथा अध्यापकों से खुलकर बहस किया करते थे। इसके साथ ही वह एक हँसमुख और शरारती विद्यार्थी भी थे। जब वह नेशनल कालेज लाहौर के छात्र थे, तो प्रोफेसर सौंधी उन्हें भारतीय इतिहास पढ़ाते थे। प्रोफेसर सौंधी की एक विशेषता थी—वह लेक्चर देते समय भी ऊँघते रहते थे। कक्षा के शरारती विद्यार्थियों को प्रोफेसर साहब के इस गुण से विशेष लगाव था। इन शरारती विद्यार्थियों में भगतसिंह भी एक थे। इन प्रोफेसर साहब से ऊटपटांग बातें करके उन्हें परेशान करने में *विद्यार्थियों को विशेष आनन्द मिलता था।*

एक बार प्रोफेसर सौंधी सम्राट् अशोक के विषय में पढ़ा रहे थे। किन्तु अपनी आदत के अनुसार वह बीच में ऊँघने लगे। भगतसिंह, सुखदेव तथा यशपाल का मन उनका भाषण सुनने में नहीं लगा। वे कक्षा से खिसकना चाहते थे, किन्तु प्रोफेसर के सामने होते ऐसा करना सम्भव नहीं था। इसी बीच खड़े होकर भगतसिंह ने पूछा, "सर! अंग्रेज भारत में भिखारी बनकर आये थे, और बाद में यहाँ के राजा बन बैठे। क्या यह सच है?"

प्रोफेसर साहब अब अशोक की न्यायप्रियता के विषय में बता रहे थे। इस प्रकार के अटपटे प्रश्न से उन्हें गुस्सा आ गया और बोले—'तुमसे कितनी बार कहा है कि मेरे विचार-क्रम को भंग न करो, किन्तु तुम हो कि सुनते ही नहीं..."

प्रोफेसर साहब की बात पूरी होने से पहले ही सुखदेव उठ खड़े हुए और बोले, 'सर! यह भगतसिंह भी बिल्कुल मूर्ख है। अभी आप शाहजहाँ के शासन काल के विषय में पढ़ा रहे थे यहाँ यह अशोक को बीच में ले आया।"

"क्या मतलब तुम्हारा··· शाहजहाँ से। कब लिया मैंने शाहजहाँ का नाम भी!" प्रो० सोंधी चिल्लाये।

अब यशपाल की बारी थी। वह अपनी सीट पर उठ खड़े हुए और कहने लगे, "सर! मैं इन दोनों से कह रहा था कि आप मोहम्मद तुगलक के पागलपन के विषय में पढ़ा रहे थे, पर इन्हें मेरी बात पर यकीन ही नहीं आया।"

प्रोफेसर साहब एकदम चीखे, "तुम सब एकदम नालायक हो। मैं तुम्हें नहीं पढ़ा सकता। इतना कहकर वह कक्षा से बाहर चले गये और लड़के खिलखिलाकर हँस पड़े तथा कक्षाओं से भाग खड़े हुए।

ऐसा प्रायः होता रहता था। जब भी छात्र प्रोफेसर सोंधी की कक्षा में ऊबने लगते, तो इसी तरह भगतसिंह आदि उन्हें परेशान कर देते। प्रोफेसर साहब क्लास छोड़ देते और लड़कों को मनचाही मुराद मिल जाती। इसी तरह एक अन्य प्रोफेसर मेहता भी इन विद्यार्थियों के मनोरंजन के साधन बनते थे। प्रोफेसर मेहता पढ़ाते तो लगन से थे, किन्तु उन्हें हिन्दी का ज्ञान बहुत कम था। वह हिन्दी शब्दों का उच्चारण भी बड़े अजीब ढंग से करते थे। किसी अंग्रेजी शब्द के लिए जब वह हिन्दी शब्द पूछते, तो विद्यार्थी उन्हें ठेठ पंजाबी भाषा का शब्द बता देते। इस पर दूसरे विद्यार्थियों के ठहाके गूँजने लगते और प्रोफेसर मेहता हैरान और परेशान हो जाते, तब वह सबसे पहले भगतसिंह के साथी झंडासिंह की ओर संकेत करते हुए कहते, "गेट आऊट ऑफ दि क्लास।" इसके बाद ऐसी ही आज्ञा एक-एक कर यशपाल, सुखदेव, भगतसिंह तथा एक दो अन्य साथियों को भी मिलती।

विद्यार्थी जीवन के अन्य कार्यकलाप :

अध्ययन के साथ ही साथ उनकी रुचि राष्ट्रीय समस्याओं की ओर भी बढ़ती गई। उस समय की सभी नयी-नयी घटनाओं के प्रति वह सदा सचेत रहते थे तथा इनमें उनका सक्रिय सहयोग भी रहता था। इसका परिचय 14-11-1921 को अपने दादाजी को लिखे उनके एक पत्र से मिलता है। इस पत्र में उन्होंने अपने दादाजी को लिखा था—"इन दनों

रेलवे कर्मचारी हड़ताल की योजना बना रहे हैं। आशा है यह अगले सप्ताह के बाद प्रारम्भ होगी।"

देशभक्ति के गीत गाने में, जोशीले नाटकों में भाग लेने में तथा इसी प्रकार के अन्य राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्यों में उनकी गहरी रुचि थी। वह नेशनल नाइट क्लब के एक सक्रिय सदस्य थे। इस क्लब ने एक बार सम्राट् चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित एक नाटक का आयोजन किया था। भगतसिंह ने इस नाटक में शशिगुप्त का अभिनय किया था। उनके इस अभिनय की सभी ने प्रशंसा की थी। इस उत्तम अभिनय की सफलता पर भाई परमानन्द ने बधाई देते हुए कहा था, "मेरा भगतसिंह निश्चय ही भविष्य में शशिगुप्त सिद्ध होगा।" इस क्लब ने 'राणा प्रताप', 'महाभारत' आदि नाटकों का भी मंचन किया। इन सब में भगतसिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का अभिनय किया। इन नाटकों को खेलने का मुख्य उद्देश्य भारतीय जनता में देशप्रेम राष्ट्रीय भावना को फैलाना तथा अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाना था। अतः सरकार ने इस क्लब पर रोक लगा दी थी।

भगतसिंह पर विवाह के लिए दबाव

नेशनल कालेज में एफ० ए० करने के बाद वह बी० ए० के छात्र बने। तभी उनके माता-पिता उन पर विवाह के लिए दबाव डालने लगे। भगतसिंह की दादी उन्हें सबसे अधिक प्यार करती थीं। उनकी इच्छा थी कि भगतसिंह का विवाह हो जाए और वह पौत्रवधू (पतोहू) का मुँह देख लें। इधर उनके पिता भी देख रहे थे कि भगतसिंह का मन घर में बिलकुल नहीं लगता था। एक दिन कहीं कांग्रेस कार्यकर्ताओं की मीटिंग थी। भगतसिंह उसमें भाग लेने गये थे। देर रात गये, वह घर लौटे। परीक्षाएँ निकट थीं, पर भगतसिंह इस ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। पिता सरदार किशनसिंह क्रोध में थे। ग्यारह बजे घर लौटने पर वह भगतसिंह पर बरस पड़े, "इस समय आने का क्या मतलब है। अगर पढ़ना नहीं है, तो घर में बैठो। इस तरह समय और पैसा बर्बाद करने से आखिर क्या फायदा!"

देशप्रेम के रंग मे रँगे भगतसिंह ने उत्तर दिया, "पढ़ाई तो सदा चलती रहेगी, देश के लिये भी तो कुछ फर्ज हैं।"

"मैं तुम्हारा भाषण नही सुनना चाहता, या तो ठीक तरह से पढो या फिर पढ़ाई ही छोड़ दो। मैं इस प्रकार की बातें बिल्कुल बर्दाश्त नही कर सकता।"

बिना कोई उत्तर दिए भगतसिंह अपनी पढाई मे लग गये। पिता जी के साथ उनकी कहा-सुनी अक्सर होने लगी। अतः अपनी माँ के दबाव और भगतसिंह को सही रास्ते पर लाने के लिये उनके पिता ने उनकी शादी कर देने का फैसला कर लिया। जाटो मे एक कहावत है कि यदि लड़का बिगड़ जाए, तो उसके पैरो में विवाह की बेड़ी डाल देनी चाहिए। इसलिए भगत सिंह की सगाई जिला सरगोधा ग्राम मानवाला निवासी सरदार तेजासिंह की बहिन के साथ तय कर दी गयी। जब भगतसिंह को अपनी सगाई का समाचार मिला तो उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार है—

पूजनीय पिता जी,

यह विवाह का समय नही है। देश मुझे बुला रहा है। मैंने राष्ट्र की तन-मन-धन से सेवा करने की सौगन्ध ली है। और फिर यह हमारे लिए कोई नई बात भी नही है। हमारा पूरा परिवार देशभक्ति की भावनाओं से पूरित है। 1910 में मेरे जन्म के दो या तीन वर्ष पश्चात् चाचा स्वर्ण सिंह जेल मे स्वर्गवास हो गये। चाचा अजीतसिंह निर्वासित व्यक्ति की तरह विदेशों में जीवन व्यतीत कर रहे है। आपने भी जेल में बहुत कष्ट भोगे हैं। मैं केवल आपके पदचिह्नों पर ही चल रहा हूँ। और इस प्रकार ऐसा करने का दुस्साहस कर रहा हूँ। कृपया मुझे बन्धन में न बाँधे, बल्कि मुझे आशीर्वाद दें कि मैं अपने आदर्श में सफल होऊँ।"

भगतसिंह के इस पत्र ने पूरे परिवार में एक सनसनी मचा दी। एक ओर परिवार की सबसे बड़ी सदस्य दादी थी, जो चाहती थी कि किसी भी प्रकार पोते का विवाह हो जाए लेकिन पोते के विचार एकदम अलग ही थे। दादी एवं पोते के इन विरोधी विचारों ने सरदार किशनसिंह को एक अजीब-सी दुविधा में डाल दिया था। अन्ततः काफी सोच-विचार के बाद

उन्होंने अपने पुत्र को पत्र लिखा।

प्यारे भगतसिंह,

हमने तुम्हारा विवाह निश्चित कर दिया है। हमने लड़की देखी है और उसका परिवार हमें पसन्द है। मुझे और तुम्हें बूढ़ी माँ-दादी की इच्छा का सम्मान करना चाहिए। अतः मेरी आज्ञा है कि तुम्हें विवाह में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए और प्रसन्नता से इसके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

इस पत्र से भगतसिंह को बड़ी निराशा हुई। इस विषय में बड़ी गम्भीरता से विचार करने के बाद कालेज छोड़ने का निश्चय करते हुए अपने पिताजी को लिखा—

पूज्यनीय पिता जी,

मैं आपके पत्र को पढ़कर आश्चर्यचकित रह गया। जब आप जैसे देशभक्त और साहसी व्यक्ति ऐसी साधारण समस्याओं से हताश हो जाएँगे, तो साधारण व्यक्ति का क्या होगा। आप केवल दादी की चिन्ता कर रहे हैं। परन्तु करोड़ों व्यक्तियों की भारतमाता कितने और कैसे दुःखों में है। हमें उसके दुःख-दर्द को दूर करने के लिये सभी कुछ स्वीकार करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि यदि मैं यहाँ रहा, तो मुझे विवाह करने के लिये विवश किया जायेगा। इसलिए मैं किसी अन्य स्थान पर जा रहा हूँ।"

इस पत्र-व्यवहार से पूर्व जब भगतसिंह अपने घर पर ही थे, तो लड़की वाले उन्हें देखने आये थे। मेहमानों के साथ उनका व्यवहार बड़ा ही मधुर एवं शिष्ट था। वे उन्हें विदा करने लाहौर तक गये थे। लौटने पर उन्होंने अपने पिताजी से साफ-साफ कह दिया था कि वह शादी नहीं करेंगे। "आखिर क्यों नहीं करोगे?" पिता जी ने पूछा।

भगतसिंह बोले "जब तक अपने पैरों पर खड़ा न हो जाऊँ, शादी करना ठीक नहीं।"

पिता किशनसिंह बिगड़ पड़े, "हमें ही [illegible] है, विवाह कर लो और अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करो, हम मना करते हैं? विवाह हो जाने पर तुम्हें [illegible] ही [illegible]। कोई अन्य [illegible] न देखकर भगतसिंह बोले, 'अभी तो मेरी उम्र भी कम है।'"

"और बातो के लिये तो बुजुर्ग बनता है, बस केवल शादी के लिये ही कमसिन बन जाता है। शादी कर लो, बहू तो तभी घर बुलाना, जब उसकी आवश्यकता जान पड़े।"

और कोई रास्ता न देखकर भगतसिंह ने एक बार फिर कहा, "शादी करेंगे तो पढ़ी-लिखी लड़की से।" वह जानते थे कि जिस लड़की से रिश्ता तय हो रहा है, वह पढ़ी-लिखी नही है, किन्तु अपने घर वालो का फैसला बदलने में वह सफल न हो सके। अन्त में विवश होकर उन्हें बी० ए० की पढाई अधूरी छोड़कर कालेज से भागना पड़ा। यह घटना सन् 1924 ई० की है।

भगतसिंह पर प्रभाव :

पहले ही लिखा जा चुका है कि भगतसिंह का परिवार एक राष्ट्रभक्त और स्वतन्त्रता प्रेमी परिवार था। व्यक्ति का अपना परिवार उसकी सबसे पहली पाठशाला होता है। अतः भगतसिंह के चरित्र-निर्माण मे सबसे पहला प्रभाव उनके परिवार का ही पड़ा था। अपने परिवार मे वह सबसे अधिक प्रभावित अपने चाचा सरदार अजीतसिंह से हुए थे। चाचा अजीतसिंह के बाद वह शहीद करतारसिंह सराभा से सबसे अधिक प्रभावित थे। सन् 1914-15 ई० मे कैनेडा तथा सयुक्त राज्य अमेरिका से लौटे पजाबी किसानो द्वारा गदर आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन के समय वह आन्दोलन के नेता कर्तारसिंह सराभा, रासबिहारी बोस आदि नेताओ के सम्पर्क में आये। ये लोग चन्दा अथवा सलाह-मशवरे के लिये बगा मे सरदार किशनसिंह से मिलने आते रहते थे। कर्तारसिंह सराभा को सन् 1915 में लाहौर षड्यन्त्र केस मे बन्दी बनाया गया। उनके लिये अदालत ने कहा था, "वह एक नौजवान है, इसमें कोई सन्देह नही। परन्तु वह निश्चित रूप से इन विद्रोहियो मे सबसे अधिक खतरनाक है, जिसके प्रति न तो कोई दया दिखाई जा सकती है और न दिखाई जानी चाहिए।" सन् 1916 मे केवल 20 वर्ष की आयु मे सराभा को फाँसी मिली थी। उन्होंने हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे को चूमकर अपना बलिदान कर दिया था। यद्यपि इस समय भगतसिंह एक बालक ही थे, फिर भी वह उनसे प्रभावित

हुए बिना नही रह सके। नौ वर्ष के बालक भगतसिंह पर इस वीर के बलिदान का गहरा प्रभाव पडा था। इस बात का अनुमान इससे सहज ही लगाया जा सकता है कि जब वह (भगतसिंह) गिरफ्तार हुए थे, तो उनके पास सराभा का फोटो प्राप्त हुआ था, जिसे वह सदा अपने पास रखते थे। अपने घर मे भी वह सराभा के फोटो को अपनी माँ को दिखाते हुए जब तब कहते रहते थे—प्यारी माँ, यह है मेरा गुरु, मेरा भाई तथा मेरा साथी।" घर मे काम करते समय अथवा कही इधर-उधर घूमते समय वे सराभा के अति प्रिय निम्नलिखित बैंत को गाया करते थे।

सेवा देश दी जिंदडीये बडी औखी
गल्ला करनीया फेर सुखलिया ने
जिना देश सेवा विच पैर पाइया
उनालख मुसीबता झेलिया ने ॥

(अरी मेरी तुच्छ आत्मा ! देश सेवा की बातें करना नि.सन्देह अत्यन्त आसान कार्य है, किन्तु वास्तव मे देश सेवा करना बडा कठिन है। जो इस भार को अपने कन्धो पर उठाने का साहस करते हैं, उन्हे अपने जीवन मे कष्टो का सामना तो करना ही पडता है।)

अपने बचपन मे ही भगतसिंह का परिचय श्री नन्दकिशोर मेहता, लाला पिण्डीदास, सूफी अम्बा प्रसाद, पजाब केसरी लाला लाजपतराय आदि राजनीतिक नेताओ से हो गया था। इन सब का प्रभाव भी उन पर पड़े बिना नही रहा।

विद्यार्थी जीवन और रहन-सहन :

अपने *विद्यार्थी जीवन से ही भगतसिंह* सादा वस्त्र के प्रतीक बन गये थे। उनके कपड़े अस्त-व्यस्त, बेढगे होते थे। फटे-पुराने कपड़ो से भी उन्हें कोई परहेज न था। कभी-कभी तो वह लुगी मे ही कालेज चले जाते थे। उनकी इस आदत के विषय मे उनके साथी शिव वर्मा ने लिखा है, "मुझे कोई ऐसा अवसर याद नही, जब मैंने उसे पुस्तकें उठाए न देखा हो। मैंने उसे फटे पुराने, यहाँ तक कि चिथड़ो मे भी देखा है। लेकिन उस वक्त भी उसकी जेबो मे पुस्तक होती थी।"

द्वितीय अध्याय

राजनीति में पदार्पण

कानपुर में :

अपने विवाह को टालने के लिये भगतसिंह को लाहौर छोड़ देना पड़ा। वे कानपुर पहुँच गये। प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार ने उन्हें एक पत्र भी गणेश शंकर विद्यार्थी के नाम दिया था। विद्यार्थीजी प्रताप प्रेस चलाते थे। भगतसिंह उनसे मिले। विद्यार्थीजी उनसे प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी टोली में सम्मिलित करने से पहले भगतसिंह से कहा, "देखो नवयुवक! स्वतन्त्रता के प्रेमी बनना वैसा ही है, जैसे कोई परवाना शमा से प्यार करता है। परवाने ने कभी जल रही शमा देखकर पीछे मुड़कर यह नहीं बताया कि शमा जल रही है, आओ अपने-आपको होम कर दें।"

"देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रतिज्ञा करके ही मैं यहाँ आया हूँ।" भगतसिंह ने उत्तर दिया। विद्यार्थीजी ने पुनः कहा, "देश के सिपाही के लिये यह आवश्यक है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त रहे।"

विद्यार्थीजी के चरण छूते हुए भगतसिंह ने कहा, "मैं पूरा प्रयत्न करूँगा कि आपकी शिक्षाओं पर चलूँ। देश का सैनिक देश के लिये आपसे ज्योति प्राप्त करेगा। किसी भी प्रकार की यातना को सहते हुए मैं कभी नहीं झिझकूँगा, अपितु हँसते-हँसते आग और पानी से खेलता रहूँगा।"

कानपुर में सबसे पहले उनका रहने का प्रबन्ध मुन्नीलाल अवस्थी के मकान में किया गया। विद्यार्थी जी ने प्रताप में ही उन्हें काम पर लगा दिया और उनका नाम भी बदल दिया। अब वह भगतसिंह के स्थान पर बलवन्तसिंह कहे जाने लगे। कानपुर क्षेत्र में उन दिनों क्रान्तिकारियों का काम योगेशचन्द्र चटर्जी देख रहे थे। यहीं उनका परिचय योगेशचन्द्र चटर्जी,

सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, बटुकेश्वर दत्त, अजय घोष, विजयकुमार सिन्हा जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों से हुआ। ये सब बंगाली थे। इनके बीच में एक सिख युवक का रहना सी० आई० डी० को सन्देह में डाल सकता था। अतः विद्यार्थीजी ने उन्हें प्रताप में कार्य देकर उनके रहने का प्रबन्ध भी दूसरी जगह कर दिया। प्रताप में काम मिलने से पहले कुछ दिनों तक उन्होंने अखबार बेचकर अपना खर्चा चलाया था।

इसी दौरान कानपुर में ही उन्होंने बटुकेश्वर दत्त से बंगला सीखी और यहीं उन्होंने कार्ल मार्क्स का भी अध्ययन किया। फिर वह 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' में सम्मिलित हुए। इस एसोसियेशन का उद्देश्य सशस्त्र क्रान्ति से देश में प्रजातन्त्र की स्थापना करना था। भगतसिंह ने उत्तर प्रदेश और पंजाब के क्रान्तिकारी विचारों वाले युवकों से सम्पर्क बढ़ाया तथा उन्हें 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' में शामिल होने की प्रेरणा दी। अब वह पूर्णरूप से इस दल के आदमी थे तथा दल का काम ही उनका अपना काम था। दल सशस्त्र क्रान्ति के लिये तैयार था, किन्तु उसके सामने एक विकट समस्या थी; उसके पास पैसा नहीं था। डकैती डालने पर भी विचार किया गया। डकैती में मुख्य बात यह थी कि डकैती भी किसी व्यक्ति के घर ही डाली जाती थी, सरकारी खजाने को लूटने के लिये पर्याप्त साधन नहीं थे। किसी व्यक्ति के घर डकैती डालने से जनता की हमदर्दी से हाथ ही धोने पड़ते, अतः इस विचार को भी स्थगित कर देना पड़ा।

क्रान्ति का प्रचार चलता रहता था। एक बार दशहरे के मेले में प्रताप प्रेस से निशानों के रूप में क्रान्तिकारी साहित्य छापा गया। भगतसिंह अपने पाँच अन्य साथियों को लेकर इसे बाँटने निकल पड़े। वे दशहरे के मेले में पहुँचे। मेले में सुन्दर कपड़ों में सजे-धजे लोग अनेक प्रकार के खेल देख रहे थे। एक जगह बहुत अधिक भीड़ थी। भगतसिंह और उनके साथियों ने एक विज्ञापन बाँटना शुरू कर दिया; जिसमें "पुकारो मेरे देश के लोगो लिखा था।" पुलिस के आदमी सादा कपड़ों में लोगों के बीच खड़े थे। जैसे ही उन्होंने यह विज्ञापन देखा, भगतसिंह के साथियों पर आक्रमण कर दिया और दो को पकड़कर गिरफ्तार कर लिया। इस बार

देखकर भगतसिंह ने सारे कागज फेंक दिये और भीड़ के लोगों से बोले, "खुफिया उधर इश्तहार बाँट रहे हैं।" इतना सुनते ही गिरफ्तार युवकों के पास दो पुलिस वाले खड़े रहे और बाकी सभी पुलिस के सिपाही उधर ही दौड़ पड़े, जिधर भगतसिंह ने इशारा किया था। ज्यों ही शेष पुलिस वाले आँखों से ओझल हुए, भगतसिंह और उनके साथी उन दो पुलिस वालों पर टूट पड़े, जो उनके गिरफ्तार साथियों की देखभाल कर रहे थे। उनसे अपने साथियों को छुड़ाकर वे तुरन्त भाग खड़े हुए। पुलिस तथा कुछ अन्य लोगों ने उनका पीछा करना चाहा, अतः भगतसिंह ने हवा में तीन फायर किये, जिससे डरकर पीछा करने वाले लौट पड़े।

उनके कानपुर निवास के दौरान ही एक बार दिल्ली में दंगे हुए थे। तब भगतसिंह को प्रताप के संवाददाता के रूप में दिल्ली भेजा गया। भगतसिंह ने इस कार्य को कुशलता और ईमानदारी के साथ पूरा किया था। इश्तहार बाँटने की उपर्युक्त घटना के बाद उनका कानपुर में रहना खतरे से खाली नहीं था। फलस्वरूप लगभग दो महीने तक कानपुर में रहने के बाद विद्यार्थीजी ने उन्हें ग्राम शादीपुर, जिला अलीगढ़ के नेशनल स्कूल में प्रधान अध्यापक बनाकर भेज दिया। भगतसिंह की योग्यता से स्कूल थोड़े ही दिनों में चमक उठा। सभी अध्यापक तथा विद्यार्थी उनके परिश्रम एवं योग्यता से अत्यधिक प्रभावित हुए। इसी वर्ष 1924 में भयंकर बाढ़ आ जाने से उन्होंने कानपुर में सहायता कार्यों में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया।

अन्य क्रान्तिकारियों के साथ ही यहाँ उनकी मुलाकात महान् क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद के साथ भी हुई थी। इन दो विभूतियों की मुलाकात भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। दोनों एक-दूसरे से मिलकर अत्यधिक प्रभावित हुए थे। क्रान्तिकारी संगठन को मजबूत बनाने के लिए मानो इन दोनों को एक-दूसरे की तलाश थी। भारत के क्रान्तिकारियों के इतिहास में ये दोनों गंगा यमुना की धाराओं के समान

मिलकर आगे बढ़े

[ड्ग के सफाये,

विचार-विमर्श किया।

कानपुर से घर की ओर .

इधर भगतसिंह कानपुर में भारत की स्वाधीनता के इतिहास की रचना कर रहे थे, उधर उनके घर में सभी लोग उनके लिए अत्यधिक चिन्तित थे। उनकी दादी उनके गम से बीमार पड गईं। वह भगतसिंह को देखने के लिए तडप रही थी। उन्हें बार-बार यह बात कचोटती रहती थी कि आखिर उन्होंने भगतसिंह से शादी कर लेने की जिद क्यों की, जिसके कारण उन्हें घर छोडना पडा था। सब विवश थे, कौन क्या करता ?

इधर भगतसिंह ने अपने एक मित्र जवड़का निवासी रामचन्द्र को एक पत्र लिखा। पत्र में अपना पता भी लिखा था, किन्तु सख्त हिदायत दी गई थी कि उनका पता किसी को न बताया जाये। परिवार की परेशानी भी रामचन्द्र के सामने थी। उन्होंने जयदेव गुप्त को पत्र के बारे में तो बताया, परन्तु पता नहीं बताया। बहुत अधिक अनुरोध करने पर भी रामचन्द्र पता बताने को तैयार नहीं हुआ। हाँ, वह इस बात के लिए राजी हो गया कि वह उनके (जयदेव गुप्त के) साथ उस पते पर जा सकता है। पिता सरदार किशनसिंह ने 'वन्दे मातरम्' पत्र में एक विज्ञापन भी निकलवाया—"भगतसिंह जहाँ भी हों लौट आएँ, उनकी दादी सख्त बीमार हैं।" किन्तु भगतसिंह नहीं लौटे। रामचन्द्र तथा जयदेव गुप्त उन्हें लेने कानपुर पहुँचे। पत्र में विद्यार्थीजी का पता था। दोनों विद्यार्थीजी से मिले। विद्यार्थीजी ने उन्हें शादीपुर भेज दिया, किन्तु भगतसिंह ने दोनों को दूर से ही आते हुए देख लिया था। अतः वह वहाँ से खिसक लिए। फलस्वरूप दोनों को निराश होकर फिर विद्यार्थीजी के पास आना पडा। विद्यार्थीजी ने उन्हें भगतसिंह को घर भेजने का आश्वासन दिया। तब वे दोनों वापस लौट गये। सरदार किशनसिंह उर्दू के प्रसिद्ध शायर मौलाना हसरत अली से मिले। मौलाना अली विद्यार्थीजी के परिचित थे। उन्होंने विद्यार्थीजी को एक पत्र लिखा, जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया था कि भगतसिंह के घर लौट आने पर, कोई भी उन पर शादी करने का दबाव नहीं डालेगा। ऐसा ही एक पत्र भगतसिंह के लिए भी लिखा गया। तब वह अपने घर लौट आये। दादी वास्तव में बीमार थी। उनके घर आ

जाने का भार वह ले भागे मुक्ति मिल गई और आगे। वह दर्शनार्थ होकर दादी की सेवा में लग गये। दादी की देखभाल आदि की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली। कुछ ही दिनों में वह पूर्णतया स्वस्थ हो गयी। दादी के स्वस्थ हो जाने पर भी उनके पिता के कारण भगतसिंह लौटकर कानपुर न लौट सके। अब वह कभी दादी के पास रहते तथा कभी लाहौर चले जाते। कभी कई-कई दिनों तक वह लाहौर ही रहते थे। भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनके साथी भारत में क्रान्तिकारी जो योजनाएँ बना रहे थे, उनमें उनका परामर्श बना हुआ था। इसके साथ ही वह पंजाब के गाँवों में भी घूमने लगे। इससे उन्हें अपने समाज की कई प्रकार की समस्याओं से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

अकाली आन्दोलन और भगतसिंह :

दादी के मामले में भगतसिंह पूर्णरूप से मुक्त हो चुके थे। इधर सन् 1925 में एक ऐसी घटना घटी, जिसने उनके जीवन को ही बदलकर रख दिया। यह घटना थी—अकाली आन्दोलन का सूत्रपात। गुरुद्वारों में करोड़ों रुपयों की वार्षिक आय होती थी, किन्तु उस धन का उपयोग गुरुद्वारों के महन्त अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए करते थे। धार्मिक स्थलों के चढ़ावे के इस दुरुपयोग से समाज चिन्तित था। वे इस धन का उपयोग देश एवं समाज के हित में करना चाहते थे। इस भ्रष्टाचार के विरुद्ध सिखों ने एक आन्दोलन प्रारम्भ किया। वे जत्थे बनाकर गुरु नानक महाराज के जन्म-स्थान ननकाना साहिब पहुँचने लगे। इस संघर्ष में नाभा रियासत के शासक महाराजा रिपुदमन सिंह भी कूद पड़े। यद्यपि यह आन्दोलन एक सामाजिक आन्दोलन था, इसका राजनीति से दूर का भी वास्ता नहीं था। किन्तु इससे सरकार चिन्तित और क्रोधित हो उठी। महाराज रिपुदमन सिंह को अपदस्थ करके देहरादून में नजरबन्द कर लिया गया। यह आन्दोलन दिन पर दिन तेज होता जा रहा था। साथ ही सरकार भी इसे सख्ती से कुचल देने के लिए कमर कसकर बैठी थी। अब इन जत्थों का रुख ननकाना साहब से जैतों की ओर हो गया। अकालियों के ये जत्थे जहाँ भी जाते, जनता इनका स्वागत करती थी।

इसी प्रकार के एक जत्थे को बंगा गाँव से होकर गुजरना था। सरदार किशनसिंह से इस जत्थे का स्वागत करने के लिए कहा गया, किन्तु संयोग से उन्हें उसी दिन अपने बीमा से सम्बन्धित कार्य के लिए बम्बई जाना था। इसलिए उन्होंने इस कार्य की जिम्मेदारी भगतसिंह को सौंप दी। अंग्रेजों के भक्त सिख तथा सरकारी कर्मचारी इस आन्दोलन का विरोध कर रहे थे। सरदार किशनसिंह का चचेरा भाई दिलबागसिंह अंग्रेजों का पिट्ठू था। वह नहीं चाहता था कि इस जत्थे का गाँव में स्वागत हो। उसने भगतसिंह का प्रबल विरोध किया। यही नहीं, उसने गाँव के कुएँ की सारी रस्सियाँ और बाल्टियाँ भी नष्ट करवा दी, ताकि जत्थे को पानी भी न मिल सके। गाँव के सारे पशुओं को बाहर भेज दिया गया, ताकि गाँव में दूध का अभाव हो जाये, और जत्थे को दूध न मिल सके। दिलबागसिंह के आदमियों ने पुलिस के समान हर स्थान पर अड्डा जमा लिया। जत्था गाँव में पहुँचा। इसके सामने पहली बार भगतसिंह ने अपना राजनीतिक भाषण दिया। जिसमें उन्होंने आयरलैण्ड के इतिहास तथा बंगाल के क्रान्तिकारियों का हवाला देते हुए भारत की वर्तमान दशा का भी वर्णन किया। जत्थे के स्वयंसेवकों ने भगतसिंह की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की तथा वे एक रात के बजाय तीन दिन तक वहाँ जमे रहे। अंग्रेजों के भक्तों के साथ गाँव का एक भी आदमी नहीं गया। दिलबागसिंह को अपमान का घूँट पीकर रह जाना पड़ा। सब कुछ शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न हो गया। सरकार भगतसिंह के विरुद्ध कुछ भी न कर सकी। उनके विरुद्ध कोई मामला न होने पर भी पुलिस ने एक झूठा केस तैयार किया और उनके नाम वारण्ट जारी कर दिया। भगतसिंह लाहौर पहुँचे। वहाँ वह प्रोफेसर चन्द्र से मिले। प्रोफेसर चन्द्र ने उन्हें एक परिचय पत्र दिया। वह दिल्ली चले गये और 'वीर अर्जुन' के सम्वाददाता के रूप में काम करने लगे। इस पत्र में भी वह नकली नाम (बलवन्त सिंह) से कार्य करने लगे। अकाली आन्दोलन शान्त हो जाने पर वह पुन: लाहौर लौट आये।

अन्य राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यकलाप :

लाहौर लौटने पर भी उत्तर प्रदेश के क्रान्तिकारियों से इनका सम्पर्क

व्यक्ति को एक सौगन्ध लेनी पड़ती थी कि वह देश के हितों को अपनी जाति तथा अपने धर्म के हितों से बढ़कर मानेगा। लाहौर, अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, मोंटगुमरी, मोरिण्डा, मुल्तान, अटक, सरगोधा और स्यालकोट, पंजाब के विभिन्न जिलों में इस संगठन की शाखाएँ थी। रामकिशन, शार्दूलसिंह कवीश्वर, भगवतीचरण वोहरा, केदारनाथ सहगल, मीर अब्दुल मजीद, डॉ० सत्यपाल, सैफुद्दीन किचलू, पिण्डी दास और शायर लालचन्द फलक इस संगठन के महत्वपूर्ण सदस्य थे। इसके उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(क) सम्पूर्ण भारत में श्रमिकों तथा किसानों के एक पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य की स्थापना।

(ख) एक संयुक्त भारतीय गणराज्य के लिए देश के युवकों में देश भक्ति की भावनाओं को जगाना।

(ग) साम्प्रदायिकता रहित सभी सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक आंदोलनों के साथ सहानुभूति रखना और एक आदर्श किसानों एवं मजदूरों के सम्पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य प्राप्ति के नजदीक ले जाने वाले आंदोलनों को समर्थन देना।

(घ) श्रमिकों तथा कृषकों को संगठित करना।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह संगठन कार्लमार्क्स के समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। शायद इसकी प्रेरणा रूस की 1917 की महान् क्रान्ति से मिली थी। इस संगठन के योग्यतम सदस्यों में से 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन के सदस्य चुने जाते थे। 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' ही बाद में 'हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन एसोसियेशन' के नाम से जानी गयी।

लाहौर विद्यार्थी यूनियन :

जून 1928 में भगतसिंह ने लाहौर विद्यार्थी यूनियन बनायी। यह यूनियन नौजवान भारतीय सभा की ही विद्यार्थियों की एक शाखा थी। इसका संगठन क्रान्तिकारी सदस्यों के भर्ती केन्द्र के रूप में किया गया था। सभा में भी अधिकतर विद्यार्थी ही भर्ती किये जाते थे। सभा ने

वारदातों के एकदम विरुद्ध थे। वास्तव में बम चन्नणदीन नामक एक व्यक्ति ने फेंका था, जो पुलिस का ही आदमी था। उसकी मृत्यु बाद में साँप के काटने से हुई थी। यह सारा काण्ड पुलिस के इशारे पर हुआ था। पुलिस काकोरी काण्ड के क्रान्तिकारियों के विषय में जानने के लिए भगत सिंह को गिरफ्तार करना चाहती थी।

एक महीने तक बिना मुकदमा चलाए उन्हें लाहौर जेल में रखा गया तथा बाद में वास्टल जेल भेज दिया गया। उनके विरुद्ध झूठा केस बनाने तथा साक्ष्य एकत्रित करने के लिए पुलिस ने भरसक प्रयत्न किये, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्हें साठ हजार रुपयों की जमानत पर रिहा कर दिया गया। इसके बाद न तो उन पर मुकदमा चलाया गया और न उनकी जमानत ही रद्द की गयी। तब भगतसिंह ने अपने जमानत कर्ताओं से कहा कि वे सरकार से कहें कि या तो मुकदमा चलाया जाये अथवा जमानत रद्द की जाये। अत. 1928 में उनकी जमानत रद्द कर दी गयी।

जमानत के दिनों भी भगतसिंह अपनी राजनीतिक गतिविधियों को चोरी-छिपे चलाए हुए थे। जमानत हो जाने पर उन्हें आजादी से घूमने का अवसर मिल गया। इन्हीं दिनों कुछ अंग्रेज सरदार किशनसिंह के फार्म पर शिकार खेलने आये। उनसे ज्ञात हुआ कि एक देशभक्त परिवार का पुत्र होने तथा लाहौर में अपनी राजनैतिक गतिविधियों के कारण भगत सिंह सरकार की नजरों में आ गये हैं। सरकार का ध्यान हटाने के लिए सरदार किशनसिंह ने उनके लिए एक डेरी फार्म खोल दिया। डेरी फार्म में भगतसिंह का एक नया ही रूप देखने को मिलता है। वे सुबह चार बजे उठ जाते, भैंसों का दूध दुहते, दिन निकलते ही दूध तांगे में रखकर लाहौर के लिए चल पड़ते तथा सारा लेन-देन एक कुशल व्यापारी की तरह सम्पन्न करते। किसी दिन नौकर के न होने पर स्वयं ही गोबर भी उठाते। जमानत होते ही उनका ध्यान डेरी से हट गया। ग्राहकों के पास समय से दूध न पहुँचने पर अन्तत. डेरी को बन्द कर देना पड़ा। भला कहाँ भारत माँ का एक सच्चा सपूत क्रान्तिकारी और कहाँ डेरी का व्यवसाय। जमानत के दिनों में भी डेरी रात में इसी प्रकार की राजनीतिक गति-

कर्तारसिंह सराभा के फाँसी दिवस की स्मृति में, 9 अगस्त, 1925 को हुए काकोरी काण्ड के शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खाँ, रोशन सिंह, लाहिड़ी तथा अन्य शहीदों की स्मृति में लाहौर के ब्रैडलॉक हॉल में शहीद दिवस मनाया था, जिसमें भगतसिंह ने रामप्रसाद बिस्मिल की मर्मस्पर्शी कथा सुनाई थी। सभा हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अछूतों के छुआछूत, जात-पात, खान-पान आदि संकीर्ण विचारों को मिटाने के लिए संयुक्त भोजों का भी आयोजन करती थी। फजल, मसूर इलाही आदि मुसलमान सदस्यों ने मुस्लिम समाज की कुप्रथाओं के विरोध में अनेक लेख लिखे। प्रिंसिपिल छबील दास ने हिन्दू समाज के जातिवाद का जमकर विरोध किया। सभा के खुले अधिवेशनों के अलावा कुछ गुप्त सभाएँ भी होती थी। इसकी गुप्त गतिविधियाँ तथा इसके द्वारा बाँटे जाने वाले पर्चे शीघ्र ही सरकार की निगाहों में आ गये। मई 1930 में इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। काकोरी काण्ड के दो क्रान्तिकारी जोगेश-चन्द्र चटर्जी तथा एस० एन० सान्याल कानपुर जेल में थे। इन्हें जेल से मुक्त कराने का भगतसिंह ने भरसक प्रयत्न किया, किन्तु इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। इस असफलता से वह दुःखी अवश्य हुए, परन्तु उन्होंने हार नहीं मानी। पुनः पहले की तरह क्रियाशील बने रहे।

गिरफ्तारी :

सरकार भगतसिंह की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखे हुए थी, किन्तु उसे कोई बहाना ही नहीं मिल रहा था कि उन्हें गिरफ्तार कर सके। उसे यह बहाना 1927 के दशहरे के दिन मिल गया। भगतसिंह उस समय तितली बाग से लौट रहे थे। इस बाग में अनेकों प्रकार की तितलियाँ होती थी। भगतसिंह को लाल परों वाली एक तितली विशेष रूप से पसन्द थी। यह तितली नीबू एवं सन्तरे के पेड़ो पर इधर-उधर मँडराती हुई उन्हें मन्त्र-मुग्ध-सा कर देती थी। जब वह बाग से लौट ही रहे थे कि किसी ने दशहरे की भीड़ पर बम फेंक दिया। इस दुर्घटना में 12 व्यक्तियों की मृत्यु हुई तथा 56 घायल हुए। इस पर पुलिस ने दंगा कराने के अपराध में भगतसिंह को गिरफ्तार कर लिया। जबकि क्रान्तिकारी इस प्रकार की

वारदातों के एकदम विरुद्ध थे। वास्तव में बम चन्नणदीन नामक एक व्यक्ति ने फेंका था, जो पुलिस का ही आदमी था। उसकी मृत्यु बाद में साँप के काटने से हुई थी। यह सारा काण्ड पुलिस के इशारे पर हुआ था। पुलिस काकोरी काण्ड के क्रान्तिकारियों के विषय में जानने के लिए भगतसिंह को गिरफ्तार करना चाहती थी।

एक महीने तक बिना मुकदमा चलाए उन्हें लाहौर जेल में रखा गया तथा बाद में बोर्स्टल जेल भेज दिया गया। उनके विरुद्ध झूठा केस बनाने तथा साक्ष्य एकत्रित करने के लिए पुलिस ने भरसक प्रयत्न किये, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। अन्त में उन्हें साठ हजार रुपयों की जमानत पर रिहा कर दिया गया। इसके बाद न तो उन पर मुकदमा चलाया गया और न उनकी जमानत ही रद्द की गयी। तब भगतसिंह ने अपने जमानत कर्ताओं से कहा कि वे सरकार से कहें कि या तो मुकदमा चलाया जाये अथवा जमानत रद्द की जाये। अतः 1928 में उनकी जमानत रद्द कर दी गयी।

जमानत के दिनों भी भगतसिंह अपनी राजनीतिक गतिविधियों को चोरी-छिपे चलाए हुए थे। जमानत हो जाने पर उन्हें आजादी से घूमने का अवसर मिल गया। इन्हीं दिनों कुछ अंग्रेज सरदार किशनसिंह के फार्म पर शिकार खेलने आये। उनसे ज्ञात हुआ कि एक देशभक्त परिवार का पुत्र होने तथा लाहौर में अपनी राजनैतिक गतिविधियों के कारण भगतसिंह सरकार की नजरों में आ गये हैं। सरकार का ध्यान हटाने के लिए सरदार किशनसिंह ने उनके लिए एक डेरी फार्म खोल दिया। डेरी फार्म में भगतसिंह का एक नया ही रूप देखने को मिलता है। वे सुबह चार बजे उठ जाते, भैंसों का दूध दुहते, दिन निकलते ही दूध लाने में तत्पर लाहौर के लिए चल पड़ते तथा सारा लेन-देन एक कुशल व्यापारी की तरह सम्पन्न करते। किसी दिन नौकर के न होने पर स्वयं ही गोबर भी उठाते। जमानत रद्द होते ही उनका ध्यान डेरी से हट गया। ग्राहकों के पास समय से दूध न पहुँचने पर अन्ततः डेरी को बन्द कर देना पड़ा। कहाँ वह भारत माँ का एक सच्चा सपूत कर्मयोगी और कहाँ डेरी का व्यवस्थापक। जमानत के दिनों में भी डेरी फार्म में इसी प्रकार की राजनीतिक गति-

विधियों का केन्द्र बन जाती थी।

क्रान्तिकारियों का दिल्ली सम्मेलन :

देशभर के क्रान्तिकारियो ने जुलाई 1928 मे दल को पुनः संगठित करने के लिए एक सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। अतः सम्मेलन इसी वर्ष अगस्त या सितम्बर में फिरोजशाह किले के खण्डहर मे हुआ। (यह सम्मेलन वास्तव मे किस दिन हुआ, इस विषय मे विभिन्न पुस्तकों मे अलग-अलग वर्णन है। कुछ पुस्तको मे केवल इतना ही लिखा मिलता है कि यह सम्मेलन सितम्बर 1928 मे हुआ, कुछ मे 8-9 सितम्बर की तिथि लिखी है तथा कुछ अन्य पुस्तको के अनुसार यह 8 अगस्त को हुआ। पुलिस के रिकार्ड के अनुसार यह मीटिंग कोटला फिरोजशाह मे 8 अगस्त 1928 को रखी गयी थी।)

इस सम्मेलन मे उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, बिहार इन चार राज्यो के क्रान्तिकारियों ने भाग लिया था। भगतसिंह, सुखदेव, यशपाल, राजगुरु, महावीर सिंह, विजयकुमार सिन्हा, सुरेन्द्र पाण्डे, भगवतीचरण, ब्रह्मदत्त, जतीन्द्रनाथ दास, शार्दूल सिंह, तथा मोहनसिंह जोश जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी इसमे उपस्थित थे। कुल साठ क्रान्तिकारियो ने इसमे भाग लिया, जिनमे पाँच महिलाएँ भी थी। भगतसिंह इस सम्मेलन के मन्त्री थे। बैठक रात मे हुई। चन्द्रशेखर आजाद इस मीटिंग मे नहीं आ पाये थे। भगतसिंह और शिव वर्मा उनसे पहले ही मिल चुके थे। उन्होंने आश्वासन दे दिया था कि इस बैठक मे बहुमत से जो भी निर्णय होगा, वह उन्हें मान्य होगा। बंगाल के क्रान्तिकारियों को भी इसमें बुलाने के लिए शिववर्मा गये थे, किन्तु उनका रुख सहयोग देने का न रहा। उन्होंने सशर्त इसमें आना चाहा। उनकी पहली शर्त यह थी कि सभी प्रान्तों के क्रान्तिकारी अनुशीलन दल के नेता के अनुशासन मे रहेंगे। दूसरी शर्त के अनुसार अभी केवल सदस्यों की भर्ती तथा रुपया एवं हथियार ही जमा करने का काम करना था, किन्तु क्रान्तिकारियो का यह नया संगठन इस में व्यक्तिगत तानाशाही के सर्वथा विरुद्ध था। अतः इस प्रकार के तानाशाही नेताओं को इस सम्मेलन में दूर ही रखा गया। इस बैठक मे क्रान्ति

के पश्चात देश के लिए समाजवादी सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया। भगतसिंह के परामर्श पर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का नाम बदलकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन रख दिया गया। इसी के अधीन एक नये सेल की स्थापना की गयी, जिसका नाम 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन आर्मी' रखा गया। चन्द्रशेखर आजाद इसके कमाण्डर-इन-चीफ चुने गये। एक अखिल भारतीय केन्द्रीय कार्यकारिणी बनायी गयी। भगतसिंह, सुखदेव, विजय कुमार सिन्हा, फणीन्द्र नाथ, चन्द्रशेखर तथा कुन्दनलाल इसमें शामिल किये गये। कोई भी कार्य पर केन्द्रीय कार्यकारिणी ही सर्वप्रथम विचार करेगी, ऐसा निर्णय लिया गया। सभी प्रान्तों के क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए एक अन्त प्रान्तीय समिति भी बनायी गयी। इसका उत्तरदायित्व भगतसिंह तथा विजय कुमार सिन्हा को सौंपा गया। सुखदेव को पंजाब का, शिव वर्मा को संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) का, कुन्दनलाल को राजस्थान का तथा फणीन्द्रनाथ को बिहार का संगठनकर्ता बनाया गया। हथियारों एवं कोष को केन्द्रीय कार्यकारिणी के अधिकार में रखा गया। तय किया गया कि जिस प्रान्त में आवश्यकता पड़ने पर हथियार भेजे जाएँ, कार्य हो जाने पर हथियारों को पुनः केन्द्रीय समिति को ही लौटा दिया जाये। इसके साथ ही निम्नलिखित निर्णय लिए गये—

(क) साइमन कमीशन के बहिष्कार में बढ़-चढ़कर भाग लिया जायेगा तथा उसे ले जानेवाली गाड़ी में बम डाला जायेगा।

(ख) कलकत्ता, सहारनपुर, आगरा तथा लाहौर में बम बनाने के कारखाने खोले जाएँगे।

(ग) एक बम बनाने में निपुण व्यक्ति की खोज की जाये, जो दल के सदस्यों को बम बनाने का प्रशिक्षण दे सके।

(घ) काकोरी काण्ड का भेद खोलनेवालों की हत्या की जायेगी तथा योगेशचन्द्र चटर्जी को जेल से छुड़ाया जायेगा।

(ङ) धन एकत्रित करने के लिए डाके डाले जायें। जहाँ तक सम्भव हो सरकारी खजाने ही लूटे जायें।

इस मीटिंग के बाद दल का मुख्य कार्यालय आगरा से झाँसी ले

तृतीय अध्याय

साईमन कमीशन का बहिष्कार
ला० लाजपत राय की मृत्यु

सन् 1919 से लागू शासन सुधार अधिनियमों की जाँच के लिए इंग्लैंड से एक कमीशन भारत आ रहा था। अत: 8 नवम्बर, 1927 को वाइसराॅय ने घोषणा की कि एक सात सदस्यों वाला कमीशन साईं साईमन के नेतृत्व में भारत आयेगा, जो इंग्लैंड की सरकार को यहाँ के शासन की प्रगति की रिपोर्ट देगा। भारत 1924 से ही साम्प्रदायिक दंगों में जल रहा था। अपने कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस पहले ही इसके बहिष्कार का फैसला कर चुकी थी। फरवरी, 1928 में यह कमीशन बम्बई पहुँचा। उस दिन सारे देश में हड़ताल की गयी और 'साईमन वापस जाओ' के नारे लगाये गये। इस प्रकार के प्रदर्शनों से अंग्रेज सरकार हैरान रह गई। इस प्रकार के प्रदर्शनों और नारों के काले झण्डे दिखाकर दिल्ली और मद्रास में भी साईमन कमीशन का विरोध किया गया। मद्रास में पुलिस की गोली से तीन प्रदर्शनकारियों की मृत्यु हुई। कलकत्ता में भी विशाल प्रदर्शन हुए। इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। अत: लगभग सभी राजनीतिक दलों ने इसमें भाग लिया। एक प्रकार से सारा देश ही इस कमीशन के विरोध में उठ खड़ा हुआ था।

कमीशन का लाहौर में बहिष्कार :

क्रान्तिकारियों की [illegible] [illegible] हिन्दी की सभा में ही बम फेंकने की योजना बना ली थी, किन्तु दल के पास पैसे का अभाव था। इसी बीच दल का एक सदस्य [illegible], जो ...पुर के हलवाई का सम्बन्धी था, हलवाई से एक हजार आठ सौ रुपये उधार प्राप्त हो गए,

उसने यह पैसा दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी को दे दिया, इस छोटी-सी पूँजी से ही काम चलाया जा रहा था। अतः बम फेंकने की योजना सफल न हो सकी। दल की लाहौर शाखा को निर्देश मिला कि साईमन कमीशन के विरोध में विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ मिलकर विशाल प्रदर्शन किया जाए।

साईमन कमीशन 30 अक्टूबर, 1928 को लाहौर पहुँचा। सभी दलों के जुलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। भगतसिंह स्वयं लालाजी के पास गये और उनसे अपने दल के युवकों की टोली को आगे रखने की आज्ञा प्राप्त कर ली। क्रान्तिकारियों ने उनके चारों ओर एक घेरा जैसा बना लिया। एक युवक ने उनके ऊपर छाता तान लिया। सब के हाथों में काले झण्डे थे और वे 'साईमन वापस जाओ' तथा 'इन्कलाब जिन्दाबाद' आदि नारे लगाते हुए आगे बढ़ रहे थे।

समुद्र के समान अथाह भीड़ आगे बढ़ती जा रही थी और उधर सरकार ने भी इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। कोई भी हार मानने को तैयार नहीं था।

लालाजी पर लाठी का प्रहार और उनकी मृत्यु :

इतने में लाहौर का पुलिस अधीक्षक मिस्टर स्कॉट अपने सहायकों के साथ वहाँ पर आया। उसने विशाल भीड़ को देखकर अनुमान लगा लिया कि कमीशन को अपमानपूर्ण व्यवहार से बचाने के लिए प्रदर्शनकारियों को वहाँ से हटाना आवश्यक है। इसलिए उसने अपने एक विश्वासपात्र सहायक अधीक्षक मिस्टर सान्डर्स को यह कार्य सौंपा। पहले भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने हल्का लाठी चार्ज किया, परन्तु नवयुवकों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके बाद सान्डर्स भीड़ पर भूखे भेड़िये के समान टूट पड़ा। उसने पहला वार लाला लाजपत राय की छाती पर किया। दूसरा उनके कन्धे पर और तीसरा सिर पर। फिर स्कॉट ने स्वयं लाठी लेकर निर्दयता से लालाजी को पीटना प्रारम्भ कर दिया। उनके सिर पर गहरी चोटें आयीं, वे लहूलुहान हो गये, अन्य अनेक लोग भी घायल हुए। भगतसिंह सब कुछ अपनी आँखों से देख रहे थे। उनके क्रोध की कोई सीमा

न थी, किन्तु लालाजी के संकेत पर वह चुप ही रहे। युवक अभी भी घेरा नहीं उठाना चाहते थे। पर लालाजी ने आज्ञा दे दी कि पुलिस के इस अमानवीय बर्बर व्यवहार के विरोध में प्रदर्शन को स्थगित कर दिया जाए। अन युवकों को उनकी आज्ञा पर ऐसा करना पड़ा।

उसी शाम कमीशन के विरोध में लाहौर मोरी दरवाजे के मैदान में एक सभा हुई। सभा में पुलिस उप अधीक्षक नील भी खड़ा था। घायल लालाजी ने पुलिस के इस व्यवहार की निन्दा करते हुए अपना भाषण किया—"जो सरकार निहत्थी जनता पर इस तरह के क्रूर हमले करती है, उसे सभ्य सरकार नहीं कहा जा सकता और ऐसी सरकार कायम नहीं रह सकती। मैं आज घोषणा करता हूँ कि इस सरकार की पुलिस ने मुझ पर जो वार किया है वह एक दिन इस सरकार को ले डूबेगा, मुझ पर जो लाठियाँ बरसाई गई, वे भारत में ब्रिटिश शासन के कफन में आखिरी कील साबित होंगी।"

इसके बाद तुरन्त लालाजी को अस्पताल ले जाया गया। इसके 18 दिन बाद *17 नवम्बर, 1928* को उनका देहान्त हो गया। भगतसिंह की दृष्टि में लालाजी की मृत्यु समूचे राष्ट्र का अपमान थी, उनके मत में इसका बदला केवल 'खून के बदले खून' से ही लिया जा सकता था। इंग्लैंड की संसद के निचले सदन में भी यह मामला उठा। सदन के एक सदस्य कर्नल वेजवुड ने सरकार से इस विषय में अपना स्पष्टीकरण देने को कहा, किन्तु सरकार ने इस हत्या के लिए स्काट को जिम्मेदार नहीं माना, सरकार ने अपना थोथा तर्क दिया—"इस प्रकार का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है, जिससे यह सिद्ध हो कि लाला लाजपतराय की मृत्यु उस अवसर पर चोट लगने से हुई।" इस विषय में न्यायिक जाँच की माँग तथा लाला लाजपतराय के सम्बन्धियों द्वारा आम माफी की माँग भी ठुकरा दी गयी। इस सबसे अंग्रेज सरकार का नंगा चेहरा सबके सामने आ गया।

साण्डर्स का वध :

लाला लाजपतराय की हत्या का बदला लेने के लिए 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की एक बैठक 10 दिसम्बर, 1928 की रात

लाहौर में हुई। इसमें भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, महावीर सिंह, सुखदेव, राजगुरु, जयगोपाल, किशोरीलाल तथा दुर्गादेवी भी उपस्थित थे, भगतसिंह ने देश की दयनीय दशा का वर्णन किया और कहा, "पूरे देश में तनाव की स्थिति है, बंगाल के दल ने काफी काम किया है। उन्होंने कुछ अधिकारी खत्म कर दिये है। अंग्रेज भयभीत हो गये हैं। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने परिवारों को ब्रिटेन भेजना प्रारम्भ कर दिया है। कुछ दिनों बाद वे महसूस करेंगे कि भारत उनके अधिकार में नहीं रहेगा। लालाजी की शहादत ने कांग्रेसियों के मनों को कँपा दिया है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू आने वाले कांग्रेस अधिवेशन में अपनाए जाने के लिए कुछ ठोस योजनाएँ बना रहे है, किन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह कुछ कर पायेंगे। दूसरी ओर नौजवानों का खून खौल रहा है।

इस सभा की अध्यक्षता चन्द्रशेखर आजाद कर रहे थे। उन्होंने सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा "साथियो! हम ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतन्त्रता का युद्ध लड़ रहे है। शत्रु की सेना, उनके अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध की अन्य सामग्री असीमित है। परन्तु इसके विपरीत हमारे पास केवल बलिदान की भावना तथा लोकमत है। यही हमारे शस्त्र हैं और यही हमारी शक्ति है।"

इसके आगे भगतसिंह फिर बोले, "केवल अकेले स्कॉट को ही नहीं, हमें अन्य कई अंग्रेजों को मौत के घाट उतारना होगा। राज्यपाल को जिन्दा नहीं रहने दिया जाएगा। एक हिन्दुस्तानी की हत्या का बदला दस अंग्रेजों की मौत के घाट उतारकर लिया जाएगा। तभी दुश्मन को सबक मिलेगा।"

दुर्गादेवी ने स्कॉट को मारने का सुझाव दिया। इस पर सबसे पहले भगतसिंह ने कहा, "उसे मेरे हाथों मरना चाहिए," इसके बाद राजगुरु सुखदेव, जयगोपाल और दुर्गादेवी ने इस काम को करने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया। दुर्गादेवी से चन्द्रशेखर आजाद ने कहा, "स्त्रियों को इस कार्य में भाग नहीं लेना चाहिए और न ही उन्हें ऐसा कार्य सौंपा जाएगा। उनकी सहायता बाद में क्रान्तिकारियों को बाहर निकालने में ली जाएगी।"

अन्त भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, आजाद और जयगोपाल को ही यह

कार्य सौंपा गया। जयगोपाल को एक सप्ताह तक स्कॉट पर नजर रखने का काम सौंपा गया, जिससे यह पता लग सके कि वह कहाँ-कहाँ जाता है, क्या काम करता है तथा कौन-कौन से रास्ते से जाता है। इसके बाद 15 दिसम्बर, 1928 के दिन दूसरी मीटिंग हुई। इसमें जयगोपाल ने मिस्टर स्कॉट की सभी गतिविधियों की जानकारी दी। फिर स्कॉट की हत्या की योजना बनी। प्रत्येक को अलग-अलग कार्य सौंपा गया। जयगोपाल को स्कॉट के कार्यालय के बाहर खड़ा रहना था और उसके कार्यालय से बाहर आने पर रूमाल से संकेत देना था। राजगुरु और भगतसिंह को इस संकेत पर स्कॉट के ऊपर गोली चलानी थी। आज़ाद और सुखदेव का काम था कि जब राजगुरु एवं भगतसिंह स्कॉट को गोली मारकर भागें तो उन्हें कोई देखने न पाये। आज़ाद एवं सुखदेव इस कला में माहिर थे। इसमें दुश्मन को गोलियाँ चलाकर अपना सिर जमीन की ओर झुकाए रखने के लिए विवश कर दिया जाता है।

17 दिसम्बर, 1928 को दोपहर जयगोपाल को पुलिस कार्यालय पर स्कॉट की निगरानी के लिए भेज दिया गया। जयगोपाल स्कॉट के हर काम पर नजर रख रहा था। अन्य साथी भी अपने-अपने कार्य को पूरा करने के लिए चल पड़े। स्कॉट का कार्यालय पंजाब सिविल मन्त्रालय में था। जयगोपाल ने शायद स्कॉट को देखा ही नहीं था। वह साण्डर्स को ही स्कॉट समझ बैठा था। सभी साथी अपने-अपने स्थानों पर तैयार थे। जयगोपाल पुलिस कार्यालय के अहाते के पास ही एक साईकिल लेकर ऐसे खड़ा था मानो साईकिल खराब हो गई हो। साईकिल रखने का एक कारण यह भी था कि यदि पहली बार गोली चूक जाये, तो साईकिल पर बैठकर उसका पीछा किया जाये तथा फिर गोली मार दी जाये। भगतसिंह और राजगुरु कार्यालय के गेट से कुछ हटकर खड़े थे। आज़ाद कार्यालय के ठीक सामने डी० ए० वी० कालेज के अहाते के अन्दर खड़े थे। गोली मारकर भगतसिंह और राजगुरु को भी वहीं से होते हुए कालेज के हॉस्टिल में जाना था। आज़ाद के पास माउजर पिस्तौल थी, जिससे राइफिल की तरह सीने पर टिकाकर साधारण पिस्तौल से अधिक दूरी तक निशाना लगाया जा सकता है। आज़ाद की जेब में दो भरी हुई

मेजीनें थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि जयगोपाल ने भूल से साण्डर्स को ही स्कॉट समझ लिया था। साण्डर्स ज्यों ही कार्यालय से बाहर निकला जयगोपाल ने इशारा किया। वह धीरे-धीरे फाटक पर पहुँचा ही था कि राजगुरु ने बड़ी ही फुर्ती से उसकी गर्दन में गोली मार दी। उसी गोली से एक हल्की सी चीख के साथ साण्डर्स अपनी मोटर साईकिल सहित गिर पड़ा। तुरन्त ही भगतसिंह ने भी चार-पाँच गोलियाँ उसके भेजे में उतार दी। और दोनों कालेज के अहाते की ओर दौड़ पड़े।

एक पुलिस हेड कान्स्टेबल सारी घटना को देख रहा था, किन्तु उसे आगे बढ़ने या कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। जब भगतसिंह और राजगुरु भागने लगे, तब वह शोर मचाने लगा। उसका शोर सुनकर एक ट्रैफिक इन्सपेक्टर दो दूसरे सिपाही भगतसिंह तथा राजगुरु की ओर भागे। भगतसिंह ने मुड़कर गोली चला दी। फर्न बचने के लिए झुका और गिर पड़ा, उसे गोली न लगी। अन्य दो सिपाही सहम पड़ें। आज़ाद बोले, चलो। भगतसिंह एवं राजगुरु चल पड़े। आज़ाद रास्ता रोके वहीं पर खड़े रहे। एक हेडकान्स्टेबल भगतसिंह के पीछे भागा। आज़ाद ने उसे चेतावनी दी "खबरदार पीछे हटो।" दो सिपाही तो रुक गये, किन्तु चन्दन सिंह नहीं रुका। आज़ाद की एक ही गोली ने उसका काम तमाम कर दिया। फिर किसी ने पीछा नहीं किया। तीनों साथी कालेज के हॉस्टिल में चले गये। फिर थोड़ी देर वहाँ रुकने के बाद वे पिछले दरवाजे से निकल गये। पंजाब सरकार ने गृह मन्त्रालय भारत सरकार को तार द्वारा सूचना दी—

"खेद सहित सूचित करना पड़ रहा है कि आज दोपहर बाद दो बजे दो नौजवानों ने पुलिस के सहायक अधीक्षक साण्डर्स पर गोली चलाई और उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। दोनों नवयुवक डी० ए० वी० कालेज के रास्ते से बचकर भाग निकले। खोज उसी समय से आरम्भ कर दी गयी, किन्तु अभी तक किसी को गिरफ्तार नहीं किया जा सका। पीछा करने वाला एक मुंशी भी मारा गया।

इस सूचना के बाद एक विस्तृत रिपोर्ट कुछ दिनों बाद भेजी गयी। इस घटना के दूसरे दिन हर जगह दीवारों पर गुलाबी रंग के पोस्टर चिपके

थे, जिनमें लाल स्याही से लिखा हुआ था—

हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना

नोटिस

नौकरशाही सावधान

जे॰ पी॰ साण्डर्स की हत्या से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया।

यह विचार करने पर कितना दुःख होता है कि—एक साधारण अफसर के दुष्ट हाथों से देश की तीस करोड़ जनता के सम्मानित एक नेता पर हमला कर उनकी हत्या कर दी गयी। यह राष्ट्र का अपमान और हिन्दुस्तानी नवयुवकों और पुरुषों के लिए एक चुनौती थी। आज दुनिया ने देख लिया कि भारत की जनता प्राणहीन नहीं है। भारतीयों का खून जमा नहीं है। वे देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा सकते हैं। यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है, देश के नेता जिनकी निन्दा करते हैं।"

साण्डर्स की हत्या ने भगतसिंह को पूरे देश का एक प्रिय नेता या चहेता बना दिया। भगतसिंह के इस महान् कार्य की प्रशंसा करते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

"भगतसिंह एक प्रतीक बन गया। साण्डर्स के कत्ल का कार्य तो भुला दिया गया, लेकिन चिह्न शेष बना रहा और कुछ ही महीनों में पंजाब का प्रत्येक गाँव और नगर तथा बहुत कुछ उत्तरी भारत उसके नाम से गूँज उठा। उसके बारे में बहुत से गीतों की रचना हुई है और इस प्रकार उसे जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, वह आश्चर्यचकित कर देने वाली थी।"

लाहौर से बच निकलना :

डी॰ ए॰ वी॰ कालेज के छात्रावास से निकलने से पहले ही भगतसिंह ने अपने केश और दाढ़ी कटवा ली तथा कपड़े भी बदल लिए। एक कोट और सिर पर हैट अपने दोस्त से ओढ़ लिए। दोस्त ने पूछा—"अब तुम कहाँ जाओगे?"

भगतसिंह ने कहा, "दुर्गा भाभी के घर।"

"उसके बाद ?"

"मैं उनसे लाहौर छोड़ने के बारे में बात करूँगा।"

"फिर ?"

"जहाँ भी जा पाऊँगा।"

"फिर भी कोई विचार तो होगा, कहाँ ?"

"कुछ कह नहीं सकता। हो सकता है किसी जंगल या पहाड़ों में रहना पड़े।"

"खर्च के लिए पैसे ?"

"मेरे पास दो सौ रुपये हैं।"

"मुझसे सौ रुपये और ले लो, मैं घर से मँगा लूँगा। तुम्हें बाहर रुपयों की जरूरत पड़ेगी।"

"ठीक है, दे दो।"

इसके बाद भगतसिंह वहाँ से निकल पड़े। यद्यपि उन्होंने अपना वेष बदल लिया था, फिर भी फर्न पर गोली चलाते समय कुछ सिपाहियों ने उन्हें देखा था। क्या पता कब कोई पहचान ले। अन्ततः एक नयी योजना बनाकर सुखदेव और भगतसिंह दुर्गा भाभी (प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवती चरण वोहरा की पत्नी श्रीमती दुर्गादेवी) के घर पहुँचे। दुर्गा भाभी पड़ोस की एक महिला के साथ किसी अध्यापक से संस्कृत पढ़ रही थी। सुखदेव ने उन्हें एक ओर बुलाकर कहा, "कहीं बाहर जा सकती हो ?"

"कहाँ ?···क्या काम है ?" भाभी ने पूछा।

"इस घटना के एक आदमी को बचाकर लाहौर से निकालना है। उसकी मेम साहब बनकर साथ जाना होगा···खतरा है। सोच लो, गोली चल सकती है।" भाभी के चेहरे को गौर से देखते हुए सुखदेव ने कहा।

"कौन आदमी है ?"

"कोई भी हो।"

"चली जाऊँगी।"

"वह रात को यहीं रहेगा···इस पढाई को समाप्त कर दो।"

"अच्छा।"

थोड़ी देरी के पश्चात् ओवर कोट हैट पहने एक लम्बा व्यक्ति एक

नौकर के साथ वहाँ आया। उसे बिठाकर दुर्गा भाभी सुखदेव की ओर देखने लगी, जैसे पूछना चाहती हों कि आखिर यह व्यक्ति है कौन। सुखदेव ने ही पूछा—"इसे पहचानती हो।"

अब भाभी ने ध्यान से देखा, "भगत···?"

भगतसिंह और सुखदेव दोनों हँसने लगे।

प्रातः पाँच बजे कलकत्ता मेल से जाना तय हुआ। भगतसिंह साहब थे, जो गोद में भाभी के तीन वर्ष के बच्चे शची (श्री शचीन्द्रकुमार वोहरा) को लिए थे। उन्होंने अपना चेहरा आधा हैट से ढक लिया, शची को अपने चेहरे की आड़ में लिए थे। तथा ओवरकोट का कालर उठा हुआ था। जेब में भरा पिस्तौल रखा हुआ था। साथ में राजगुरु नौकर के वेश में थे। उनकी कमर में भी पिस्तौल बँधा था। भाभी भी मेम साहब के मेकअप में थीं। सभी ताँगे से लाहौर रेलवे स्टेशन पहुँचे। प्लेटफार्म पर सब जगह पुलिस घूम रही थी। भगतसिंह ने प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा और गाड़ी में बैठ गये। किसी को भी उन पर शक नहीं हुआ। गाड़ी चल पड़ी। इस प्रकार अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंककर वह कलकत्ता पहुँच गये।

सारे देश की पुलिस साण्डर्स हत्याकाण्ड के क्रान्तिकारियों की खोज कर रही थी। इन दिनों कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन चल रहा था। अदम्य साहसी भगतसिंह गुप्त रूप में इस अधिवेशन में भी हो आये। पुलिस उन्हें पकड़ नहीं पायी। परन्तु गुप्तचरों द्वारा गृह विभाग को इसकी सूचना दे दी गयी थी कि कांग्रेस सप्ताह के दौरान भगतसिंह कलकत्ता में दिखायी दिया था।

यहाँ यह बताना अनुचित न होगा कि जिस ट्रेन से भगतसिंह कलकत्ता के लिए रवाना हुए थे, उसी ट्रेन से आज़ाद भी लाहौर से निकल पड़े थे। इसलिए उन्होंने अपने साथियों को मथुरा के पंडे बना दिया था तथा स्वयं रामनामी चादर और हाथ में गीता लेकर उनके गुरु बने थे।

"उसके बाद ?"

"मैं उनसे लाहौर छोड़ने के बारे में बात करूँगा।"

"फिर ?"

"जहाँ भी जा पाऊँगा।"

"फिर भी कोई विचार तो होगा, कहाँ ?"

"कुछ कह नही सकता। हो सकता है किसी जगल या पहाड़ी मे रहना पड़े।"

"खर्च के लिए पैसे ?"

"मेरे पास दो सौ रुपये है।"

"मुझसे सौ रुपये और ले लो, मैं घर से मँगा लूँगा। तुम्हें बाहर रुपयों की जरूरत पड़ेगी।"

"ठीक है, दे दो।"

इसके बाद भगतसिंह वहाँ से निकल पड़े। यद्यपि उन्होंने अपना वेष बदल लिया था, फिर भी फर्न पर गोली चलाते समय कुछ सिपाहियों ने उन्हें देखा था। क्या पता कब कोई पहचान ले। अन्तत. एक नयी योजना बनाकर सुखदेव और भगतसिंह दुर्गा भाभी (प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवती चरण वोहरा की पत्नी श्रीमती दुर्गादेवी) के घर पहुँचे। दुर्गा भाभी पड़ोस की एक महिला के साथ किसी अध्यापक से सस्कृत पढ रही थी। सुखदेव ने उन्हें एक ओर बुलाकर कहा, "कही बाहर जा सकती हो ?"

"कहाँ ?···क्या काम है ?" भाभी ने पूछा।

"इस एक आदमी को बचाकर लाहौर से निकालना है। ···खतरा है। सोच लो, गोली

गौर से देखते हुए सुखदेव ने कहा।

रहेगा···इस पढ़ाई को समाप्त कर दो।"

ओवर कोट हैट पहने एक लम्बा व्यक्ति एक

न्याय के लिए कोई जगह नहीं है। ये गुलामों को बिना साँस लिए उन्हें कुचलना तथा लूटना और मारना चाहते हैं। यही नहीं इसमे भी कठोर दमनकारी अधिनियम बनाये जायेंगे और मुँह से आवाज निकलते ही गोली का निशाना बना दिये जायेंगे। देखें अब आगे क्या होता है।"

ताराचन्द्र ने इस समस्या के हल के विषय में पूछा। भगतसिंह आगे बोले—"बलिदान? तभी असेम्बली के ब्रिटिश तथा भारतीय सदस्यों की आँखें खुलेंगी।"

चन्द्रशेखर आज़ाद द्वारा "यह सब कैसे होगा?" यह पूछे जाने पर भगतसिंह ने केन्द्रीय असेम्बली मे बम डालने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार-विमर्श किया गया। अन्त मे इसे स्वीकार कर लिया गया। इसके लिए इस प्रकार की कार्य योजना बनायी गयी—

असेम्बली में प्रवेश पाने के लिए पासों का प्रबन्ध किया जाये। और अन्दर जाकर बम विस्फोट करने के बाद दमनकारी कानूनों तथा बिलों के विरोध मे तीव्र आक्रोश प्रकट किया जाये तथा इनके प्रति अपनी अस्वीकृति व्यक्त की जाये। बम फेंकते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि किसी व्यक्ति के जीवन की कोई हानि न हो। 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये जायें और सदस्यों को अपनी बात समझाने के लिए पर्चे फेंके जायें। इसके बाद निर्धारित क्रान्तिकारी स्वयं को गिरफ्तार करा दें। बाद मे न्यायालय को अपने विचारों से अवगत कराया जाये।

बम फेंककर भागने का भगत सिंह ने विरोध किया था। भगतसिंह समझते थे कि इसके बाद उन पर जो मुकदमा चलेगा, उससे भारत के युवकों को क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों का पता लगेगा। जब यह योजना बनी, तो भगतसिंह अड़ गये कि यह काम उन्हीं को सौंपा जाये। चन्द्रशेखर आज़ाद इसके विरुद्ध थे, क्योंकि भगतसिंह साण्डर्स वध मे भाग ले चुके थे। पकड़े जाने पर उनके लिए फाँसी निश्चित थी। विस्तार से विचार करने पर दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी इसी निर्णय पर पहुँची कि इस कार्य के लिए भगतसिंह ही सबसे योग्य व्यक्ति थे। अतः विवश होकर आज़ाद को भी यह निर्णय मानना पड़ा। भगतसिंह के सहायक के रूप में बटुकेश्वर दत्त को चुना गया। योजना बनने के बाद मार्च और अप्रैल

चतुर्थ अध्याय

असेम्बली बम-काण्ड

कलकत्ता में भगतसिंह का परिचय अतुल गांगुली, प्रोफेसर ज्योतिष घोष, फणीन्द्र नाथ घोष और जे० एन० दास जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों से हुआ, यहाँ उन्होंने अपने दल का एक कार्यालय भी खोला। ये सभी कार्य रात में ही किये जाते थे; दिन भर वह सोते रहते थे। यहीं पर उन्होंने दिल्ली, आगरा और कानपुर केन्द्रों के लिए बम बनाने के लिए जतीन्द्रनाथ दास को सहमत कर लिया। इस काम का प्रारम्भ सर्वप्रथम कलकत्ता में कैवलनाथ तिवारी के घर पर बारूद बनाने से किया गया। कुछ दिन कलकत्ता में रहने के बाद वह गुप्त रूप से बंगाल तथा संयुक्त प्रान्त के क्रान्तिकारियों के क्षेत्रों में घूमते रहे। इसके बाद उन्होंने अपने कलकत्ता के साथियों की मदद से आगरा में बम बनाने की फैक्ट्री बनाई। अलग-अलग राज्यों के क्रान्तिकारियों ने यहाँ पहुँचकर बम एवं बारूद बनाना सीखा। एक महीने की ट्रेनिंग के बाद वे अपने-अपने राज्यों में चले गये। वहाँ उन्होंने इसी प्रकार के कारखाने स्थापित किये और बम बनाना शुरू किया। सुखदेव ने लाहौर में तथा शिव वर्मा ने सहारनपुर में बम बनाने का कारखाना खोला। बमों के परीक्षण के लिए झाँसी के पास एक जंगल को चुना गया। जहाँ भगतसिंह भी उपस्थित थे।

आगरा में भगतसिंह ने हींग मण्डी और नमक मण्डी में किराए पर दो मकान लिए। इन्हीं में बम बनाने के कारखाने लगाये गये तथा इन्हीं में उनके दल की बैठकें भी होती थीं। 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र संघ' की केन्द्रीय कार्यकारिणी की एक मीटिंग हींग मण्डी वाले मकान में हुई, यहाँ 'पब्लिक सेफ्टी बिल' तथा 'डिस्प्यूट्स बिल' पर चर्चा की गयी। यहाँ अपने विचारों को रखते हुए भगतसिंह बोले—"ब्रिटिश साम्राज्यवाद में

न्याय के लिए कोई जगह नहीं है। ये गुलामों को बिना मौत लिए उन्हें कुचलना तथा लूटना और मारना चाहते हैं। यही नहीं इसमें भी कठोर दमनकारी अधिनियम बनाये जायेंगे और मुंह से आवाज निकलते ही गोली का निशाना बना दिये जायेंगे। देखें अब आगे क्या होता है।"

ताराचन्द्र ने इस समस्या के हल के विषय में पूछा। भगतसिंह आगे बोले—"बलिदान ? तभी असेम्बली के ब्रिटिश तथा भारतीय सदस्यों की आँखें खुलेंगी।"

चन्द्रशेखर आज़ाद द्वारा "यह सब कैसे होगा ?" यह पूछे जाने पर भगतसिंह ने केन्द्रीय असेम्बली में बम डालने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार-विमर्श किया गया। अन्त में इसे स्वीकार कर लिया गया। इसके लिए इस प्रकार की कार्य योजना बनायी गयी—

असेम्बली में प्रवेश पाने के लिए पासों का प्रबन्ध किया जाये। और अन्दर जाकर बम विस्फोट करने के बाद दमनकारी कानूनों तथा बिलों के विरोध में तीव्र आक्रोश प्रकट किया जाये तथा इनके प्रति अपनी अस्वीकृति व्यक्त की जाये। बम फेंकते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि किसी व्यक्ति के जीवन को कोई हानि न हो। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाये जायें और सदस्यों को अपनी बात समझाने के लिए पर्चे फेंके जायें। इसके बाद निर्धारित क्रान्तिकारी स्वयं को गिरफ्तार करा दें। बाद में न्यायालय को अपने विचारों से अवगत कराया जाये।

बम फेंककर भागने का भगत सिंह ने विरोध किया था। भगतसिंह समझते थे कि इसके बाद उन पर जो मुकदमा चलेगा, उससे भारत के युवकों को क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों का पता लगेगा। जब यह योजना बनी, तो भगतसिंह अड़ गये कि यह काम उन्हीं को सौंपा जाये। चन्द्रशेखर आज़ाद इसके विरुद्ध थे, क्योंकि भगतसिंह साण्डर्स वध में भाग ले चुके थे। पकड़े जाने पर उनके लिए फाँसी निश्चित थी। विस्तार से विचार करने पर दल की केन्द्रीय कार्यकारिणी इसी निर्णय पर पहुँची कि इस कार्य के लिए भगतसिंह ही सबसे योग्य व्यक्ति थे। अतः विवश होकर आज़ाद को भी यह निर्णय मानना पड़ा। भगतसिंह के सहायक के रूप में बटुकेश्वर दत्त को चुना गया। योजना बनने के बाद मार्च और अप्रैल

1929 में भगतसिंह कई बार दिल्ली-आगरा आते-जाते रहे। दिल्ली में वह 151 रोशनआरा मैदान, बाजार सीताराम तथा बन्ता आश्रम कूँचा घासीराम में रुके थे। अप्रैल तारीख आठ की सुबह बटुकेश्वर दत्त तथा भगतसिंह ने कश्मीरी गेट दिल्ली के रामनाथ फोटोग्राफर से फोटो भी खिचवाया था। यही फोटो 12 अप्रैल को लाहौर के 'वन्दे मातरम्' में, 18 अप्रैल को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे तथा 20 अप्रैल को 'द पायनियर' में छपा था। बम काण्ड के दो दिन पहले भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त घटना की रूपरेखा बनाने के लिए तथा कौन कहाँ पर बैठता है, यह देखने के लिए असेम्बली में गये थे। दिल्ली पुलिस अधीक्षक ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि वे दोनों ही घटना से पूर्व 6 अप्रैल को आरम्भिक देखभाल के लिए असेम्बली मे गये थे।

घटना के दिन 8 अप्रैल, 1929 को निश्चित समय पर दोनों ही असेम्बली के एक नामजद सदस्य की सिफारिश पर बने पासों की सहायता से असेम्बली में प्रवेश कर गये। नामजद सदस्य की सिफारिश होने के कारण उन पर किसी ने शक भी नही किया। यद्यपि असेम्बली के अधिकतर सदस्य प्रस्तुत बिलों के विरोध मे थे तथा उन्हें पहले ही अस्वीकार कर चुके थे, इतना होने पर भी सरकार इन्हें लागू करने पर तुली हुई थी। इस दिन वायसराय के विशेष अधिकार पर इन्हें लागू करने की घोषणा होनी थी। अतः उस दिन असेम्बली में दर्शकों की बहुत अधिक भीड़ थी। बिल के विरोध मे सदस्यों की प्रतिक्रिया जानने के लिए अनेक समाचार पत्रों के संवाददाता भी पहुँचे हुए थे। भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त भी पंक्ति में खड़े हो गये तथा बारी आने पर अन्दर चले गये। उन्हें गिरफ्तार करने वाले सार्जेण्ट टैरी के अनुसार दोनो ने खाकी रंग की नेकरें पहनी थी। भगतसिंह ने नीला तथा बटुकेश्वर दत्त ने हल्का नीला कोट पहना था। अन्य गवाहों के अनुसार भगतसिंह फेल्ट हैट पहने हुए थे। दोनों ही सरलता से दर्शक दीर्घा में पहुँचे और बैठ गये। गैलरी जल्दी ही दर्शकों से भर गयी। सरकार के समर्थक कुछ सदस्यों ने कहना शुरू किया कि इसका पारित होना आवश्यक है। भारत के अशिक्षित नौजवान रूस द्वारा गुमराह किये जाने पर कम्युनिस्ट बन रहे हैं तथा अंग्रेजों के विरोध

में विद्रोह करने पर तुले हुए हैं। इन सरकार के चमचों की बातों को सुनकर भगतसिंह और दत्त ने एक दूसरे की ओर देखा, दोनों मुस्कराये। इसके बाद बिल की घोषणा की गयी। जैसे ही अध्यक्ष अपना निर्णय देने के लिए उठा, भगतसिंह अपने स्थान से उठे। उन्होंने एक बम असेम्बली के अध्यक्ष की बेंच के पीछे फेंका। श्री विट्ठल भाई पटेल तथा मोतीलाल नेहरू उसके पास ही बैठे थे। इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि किसी को चोट न आये। सभी सदस्य भयभीत और हक्के-बक्के रह गये। इतने में ही दूसरा बम भी फेंका गया। अध्यक्ष शुस्टर इतना अधिक भयभीत हो गया कि वह घबराकर अपनी मेज के पीछे जा छिपा। उसे और अधिक भयभीत करने के लिए भगतसिंह ने दो हवाई फायर किये।

पण्डित मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भाई पटेल, मदनमोहन मालवीय तथा मुहम्मद अली जिन्ना शान्त भाव से अपने स्थानों पर बैठे रहे, किन्तु अन्य सदस्य भाग खड़े हुए। कुछ गैलरी में चले गये; कुछ बाथरूम में जा छिपे। दर्शक दीर्घा भी खाली हो गयी। दोनों ने नारा लगाया 'इन्कलाब जिन्दाबाद'''साम्राज्यवाद का नाश हो'। पूरा हाल धुएँ से भर गया था। उसी के साथ ही पार्टी के पर्चे बटुकेश्वर दत्त ने हाल में फेंके थे। वे इन पर्चों को आम जनता में हाथों में नहीं जाने देना चाहते थे, किन्तु फिर भी एक संवाददाता ने धमाके के तुरन्त बाद किसी तरह एक पर्चा प्राप्त कर लिया। उसी शाम उसके समाचारपत्र में यह पर्चा प्रकाशित भी हो गया, जिसमें लिखा था—

"हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना"

"बहरों को सुनाने के लिए ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है। फ्रांस के अराजकतावादी शहीद वैलां के ऐसे ही अवसर पर कहे गये इन अमर शब्दों से क्या हम अपना औचित्य सिद्ध कर सकते हैं?

शासन सुधारों के नाम पर ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पिछले दस वर्षों में हमारा जो अपमान किया गया है, हम उस निन्दनीय कहानी को दोहराना नहीं चाहते। हम भारतीय राष्ट्र के नेताओं के साथ किये गये अपमानों का उल्लेख नहीं करना चाहते, जो इस असेम्बली द्वारा किये गए हैं, जिसे पार्लियामेन्ट कहा जाता है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कुछ लोग साईमन कमीशन के द्वारा सुधारों के नाम पर जो जूठे टुकड़े मिलने की सम्भावना है, उनकी आशा लगाये हुए हैं और मिलने वाली ताजी हड्डियों के बटवारे के लिए झगड़ा तक कर रहे हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है। जैसे कि 'पब्लिक सेफ्टी बिल', ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल'। इसी के साथ उसने 'प्रेस सिडीशन बिल' को असेम्बली के अगले अधिवेशन के लिए सुरक्षित रख लिया है। मजदूर नेता जो खुले रूप में अपना कार्य कर रहे थे, उनकी अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का रुख क्या है।

इन बेहद उत्तेजक परिस्थितियों में 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र संघ' ने पूर्ण गम्भीरता से अपना दायित्व अनुभव करते हुए अपनी सेना को यह कार्य करने का आदेश दिया है, जिससे कानून का यह अपमानजनक मजाक बन्द हो। विदेशी सरकार की शोषक नौकरशाही चाहे जो करे, परन्तु उसका नग्न रूप जनता के सामने लाना अत्यन्त आवश्यक है।

जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने क्षेत्रों में लौट जायें और जनता को आने वाली क्रान्ति के लिए तैयार करें। सरकार को यह जान लेना चाहिए कि 'सेफ्टी बिल' और 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' तथा लालाजी की नृशंस हत्या का अहसास भारतीय जनता की ओर से विरोध करते हुए हम इस पाठ पर जोर देना चाहते है, जिसे कि इतिहास ने अनेक बार दोहराया है कि व्यक्तियों की हत्या कर डालना आसान है, परन्तु तुम विचारों की हत्या नहीं कर सकते। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, जबकि विचार जीवित रहे। फ्रांस के बूर्बो और रूस के जार समाप्त हो गये। जबकि क्रान्तिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का उपयोग करेगा। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुःखी हैं, परन्तु क्रान्ति द्वारा मनुष्यों का बलिदान आवश्यक है।"

इन्कलाब जिन्दाबाद

ह० बलराज
कमाण्डर-इन-चीफ

अधिकांश पुस्तकों में यही लिखा मिलता है कि दूसरा बम बटुकेश्वर दत्त ने फेंका, किन्तु गुरदेव सिंह देओल ने अपनी पुस्तक 'शहीद भगतसिंह' में लिखा है कि यह सामान्य तौर पर कहा जाता है कि दूसरा बम फेंकने वाला बी० के० दत्त था, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। इस संदर्भ में डि० आसफ अली जो इस घटना के समय असेम्बली में उपस्थित थे तथा भगतसिंह एवं बी० के० दत्त के असेम्बली केस के वकील भी थे, कहते हैं "बहुत कम लोग इस बात से परिचित हैं कि बी० के० दत्त ने कोई बम नहीं फेंका," परन्तु जब बयान देने का समय आया, तो दत्त ने यह कहने पर जिद प्रकट की कि दोनों बमों में से एक उसने फेंका। दत्त ने ऐसा क्यों कहा, इसका पता उसके द्वारा अपने वकील आसफ अली से कहे गये इन शब्दों से मिलता है—

"मैं और भगतसिंह अब बहुत देर से इकट्ठे रह रहे हैं तथा मुझे पूरा विश्वास है कि वह आपके बचाव के बावजूद भी उमर कैद की सजा पा जायेगा। मान लो वह मुझे छोड़ भी दे, तो मैं उसके बिना क्या करूँगा। मुझे अनिवार्य तौर पर उसका साथ देना चाहिए।"

भगतसिंह और दत्त चाहते तो उस समय वहाँ से आसानी से भाग सकते थे। लेकिन भगतसिंह की ही इच्छा के अनुसार यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि उन्हें भागकर बचना नहीं है। इसलिए दोनों अपने स्थान पर खड़े होकर नारे लगाते रहे। धुआँ कम होने पर मदन की पुलिस अन्दर आयी। सार्जेण्ट टैरी ने आकर उनसे प्रश्न किया—"क्या यह तुम्हीं लोगों ने किया?"

दोनों ने हामी भर ली। दोनों ने अपने को गिरफ्तार करा लिया। गिरफ्तारी के समय भगतसिंह के पास एक आटोमेटिक पिस्तौल भी मिला। कुछ पुलिस अधिकारियों के बयानों के अनुसार भगतसिंह ने दो-तीन फायर भी किये थे और पिस्तौल उनके हाथ में थी, जिसका रुख आगे की ओर था। जाँच-अदालत में सरकारी गवाह ने बताया था कि भगतसिंह ने एक स्वचालित पिस्तौल निकालकर दो-तीन गोलियाँ चलाईं और फिर पिस्तौल जाम हो गया, किन्तु ये सारे बयान एकदम झूठ थे। उन्हें गिरफ्तार करने वाले सार्जेण्ट टैरी ने जो बयान दिया, उससे सचाई अच्छी तरह सामने आ

जाती है—"जब मैंने भगतसिंह से पिस्तौल बरामद किया तो उसकी पिस्तौल का मुँह मेरी ओर नहीं था, बल्कि वह उसके हाथ में था, जिससे वह खेल रहा था और उसका हाथ नीचे की ओर था।" दिल्ली पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने भी इस बात को माना था कि पिस्तौल से वास्तव में फायर किया गया, इनके बारे में कोई भी विस्तार से और प्रामाणिक गवाही नहीं है।

जब इन दोनों क्रान्तिकारियों को पुलिस की गाड़ी में बैठाकर चाँदनी चौक पुलिस चौकी ले जाया जा रहा था, उसी समय श्री भगवतीचरण वोहरा, उनकी पत्नी दुर्गादेवी (दुर्गा भाभी) तथा नन्हा पुत्र शची पास ही से एक ताँगे में बैठकर गुजरे। बच्चे ने भगतसिंह को पहचान लिया और झट से बोल पड़ा 'लम्बे चाचा', किन्तु माँ ने बच्चे को चुप करा दिया।

इस घटना से असेम्बली का अधिवेशन रोक दिया गया। यह समाचार समूचे देश में फैल गया। सभी समाचारपत्रों ने इसे अपने मुखपृष्ठ पर बड़े-बड़े शीर्षकों में छापा।

कोतवाली में जब उनसे बयान देने के लिए कहा गया, तो उन्होंने पुलिस के सामने कोई भी बयान देना अस्वीकार कर दिया और कहा कि वे जो कुछ भी कहेंगे, अदालत के सामने ही कहेंगे। 16 को पुलिस ने उन दोनों को कोतवाली पुराना सचिवालय भेज दिया।

सरकार द्वारा इस घटना की सूचना तार द्वारा शीघ्र ही लन्दन को भेजी गयी।

सदन ने आज प्रातः ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पर विचार-विमर्श प्रारम्भ किया था। विश्वास था कि बिल की समाप्ति पर अध्यक्ष अपना निर्णय सुना देगा। प्रधान के बिल पर विभाजन के परिणाम की घोषणा करने के तुरन्त बाद जबकि वह अपने निर्णय की घोषणा करनेवाला था, दर्शक दीर्घा में से एक व्यक्ति ने जानबूझकर सरकारी बेंचों में दो बम फेंके। किसी को गम्भीर चोट नहीं आयी लगती, सिवाय मिस्टर बी० जी० दलाल के, जो कि बम के धमाके से कुछ घबरा गये थे। सदन घबराहट की स्थिति में उठ गया और फिर अध्यक्ष ने इसे बृहस्पतिवार तक स्थगित कर दिया। दो व्यक्ति गैलरी में पकड़े गये।"

इसी दिन फिर एक दूसरा तार भी भेजा गया जो इस प्रकार है—

गिरफ्तार किये गए दो व्यक्ति—लाहौर का भगतसिंह, जो कि फरार था और पुलिस को उसकी खोज थी तथा एक बंगाली बटुकेश्वर दत्त। कहा जाता है कि दोनों बम भगतसिंह ने फेंके। पहला आगे के सरकारी बेंचों के पास गिरा तथा दूसरा पीछे की सरकारी बेंचों में। बम फेंकने के बाद भगतसिंह ने आटोमेटिक पिस्तौल से दो गोलियाँ चलायीं, जो बाद में जाम हो गया। तब दोनों व्यक्तियों ने क्रान्तिकारी पर्चे सदन में फेंके, यह दावा करते हुए कि यह कार्यवाही सरकार ने उन पर 'पब्लिक सेफ्टी' तथा 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' जैसे दमनकारी कानून लागू करने और मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों के कारण थी। दोनों व्यक्तियों ने न तो बच निकलने की कोशिश की और न ही अपनी गिरफ्तारी में कोई बाधा पहुँचायी। सर बी॰जी॰ दलाल की जाँघ में घाव हुआ है और वह अस्पताल में हैं। सर जार्ज शुस्टर तथा दो अन्य अधिकारियों को मामूली चोटें आयी हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि बमों से कोई गम्भीर हानि नहीं हुई, भले ही सीटों को भारी नुकसान पहुँचा है। पास की दीवारों और यहाँ तक कि सदन की छत को भी नुकसान पहुँचा है।

दिल्ली के कमिश्नर ने इसी दिन गृह विभाग को जो रिपोर्ट भेजी थी, उसके अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति घायल हुए थे—

1. माननीय सर [illegible] शुस्टर।

[illegible]

रेलवे बिलायुक्त।

[illegible] बिखरे पड़े ईंट तथा

[illegible] के बाद पुलिस ने

[illegible] ने 'हिन्दुस्तान समाज-

[illegible] कर दिया। मुल-

जाती है—"जब मैंने भगतसिंह से पिस्तौल बरामद किया तो उसकी पिस्तौल का मुँह मेरी ओर नहीं था, बल्कि वह उसके हाथ में था, जिससे वह खेल रहा था और उसका हाथ नीचे की ओर था।" दिल्ली पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने भी इस बात को माना था कि पिस्तौल से वास्तव में फायर किया गया, इसके बारे में कोई भी विस्तार से और प्रामाणिक गवाही नहीं है।

जब इन दोनों क्रान्तिकारियों को पुलिस की गाड़ी में बैठाकर चाँदनी चौक पुलिस चौकी ले जाया जा रहा था, उसी समय श्री भगवतीचरण बोहरा, उनकी पत्नी दुर्गादेवी (दुर्गा भाभी) तथा नन्हा पुत्र शची पास ही से एक ताँगे में बैठकर गुजरे। बच्चे ने भगतसिंह को पहचान लिया और झट से बोल पड़ा 'लम्बे चाचा', किन्तु माँ ने बच्चे को चुप करा दिया।

इस घटना से असेम्बली का अधिवेशन रोक दिया गया। यह समाचार समूचे देश में फैल गया। सभी समाचारपत्रों ने इसे अपने मुखपृष्ठ पर बड़े-बड़े शीर्षकों में छापा।

कोतवाली में जब उनसे बयान देने के लिए कहा गया, तो उन्होंने पुलिस के सामने कोई भी बयान देना अस्वीकार कर दिया और कहा कि वे जो कुछ भी कहेंगे, अदालत के सामने ही कहेंगे। 16 को पुलिस ने उन दोनों को कोतवाली पुराना सचिवालय भेज दिया।

सरकार द्वारा इस घटना की सूचना तार द्वारा शीघ्र ही लन्दन को भेजी गयी।

सदन ने आज प्रातः ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पर विचार-विमर्श प्रारम्भ किया था। विश्वास था कि बिल की समाप्ति पर अध्यक्ष अपना निर्णय सुना देगा। प्रधान के बिल पर विभाजन के परिणाम की घोषणा करने के तुरन्त बाद जबकि वह अपने निर्णय की घोषणा करनेवाला था, दर्शक दीर्घा में से एक व्यक्ति ने जानबूझकर सरकारी बेंचों में दो बम फेंके। किसी को गम्भीर चोट नहीं आयी लगती, सिवाय मिस्टर बी० जी० दलाल के, जो कि बम के धमाके से कुछ घबरा गये थे। सदन घबराहट की स्थिति में उठ गया और फिर अध्यक्ष ने इसे बृहस्पतिवार तक स्थगित कर दिया। दो व्यक्ति गैलरी में पकड़े गये।"

इसी दिन फिर एक दूसरा तार भी भेजा गया जो इस प्रकार है—

गिरफ्तार किये गए दो व्यक्ति—लाहौर का भगतसिंह, जो कि फरार था और पुलिस को उसकी खोज थी तथा एक बंगाली बटुकेश्वर दत्त। कहा जाता है कि दोनों बम भगतसिंह ने फेंके। पहला आगे के सरकारी बेंचों के पास गिरा तथा दूसरा पीछे की सरकारी बेंचों में। बम फेंकने के बाद भगतसिंह ने आटोमेटिक पिस्तौल से दो गोलियाँ चलायीं, जो बाद में जाम हो गया। तब दोनों व्यक्तियों ने क्रान्तिकारी पर्चे सदन में फेंके, यह दावा करते हुए कि यह कार्यवाही सरकार ने उन पर 'पब्लिक सेफ्टी' तथा 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' जैसे दमनकारी कानून लागू करने और मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों के कारण थी। दोनों व्यक्तियों ने न तो बच निकलने की कोशिश की और न ही अपनी गिरफ्तारी में कोई बाधा पहुँचायी। सर बी०जी० दलाल की जाँघ में घाव हुआ है और वह अस्पताल में हैं। सर जार्ज शुस्टर तथा दो अन्य अधिकारियों को मामूली चोटें आयी हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि बमों से कोई गम्भीर हानि नहीं हुई, भले ही सीटों को भारी नुकसान पहुँचा है। पास की दीवारों और यहाँ तक कि सदन की छत को भी नुकसान पहुँचा है।

दिल्ली के कमिश्नर ने इसी दिन गृह विभाग को जो रिपोर्ट भेजी थी, उसके अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति घायल हुए थे—

1. माननीय सर जॉर्ज शुस्टर।
2. सर बोमनजी दलाल।
3. मिस्टर एस० एन० राय।
4. मिस्टर पी० आर० राव, रेलवे वित्तायुक्त।

इन लोगों को जो चोटें आयीं, वे फर्श पर टूटकर बिखरे पड़े ईंट तथा फर्नीचर के टुकड़ों से आयीं; न कि बमों के टुकड़ों से।

क्रान्तिकारियों की धरपकड़ :

असेम्बली बम काण्ड में इन दो वीरों की गिरफ्तारी के बाद पुलिस ने क्रान्तिकारियों की धरपकड़ शुरू कर दी। पुलिस ने 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना' के अधिकतर सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। सुख-

देव ने लाहौर में कुछ लोहारों को बम के कुछ भाग बनाने को दिये थे। यद्यपि उनसे यह कहा गया था कि इनकी आवश्यकता गैस-मशीन बनाने में पड़ती है, फिर भी पुलिस को इसका पता लग गया। परिणामस्वरूप सुखदेव पुलिस की नजरों में आ गये। उनपर कड़ी नजर रखी जाने लगी। भगवती चरण ने मैकलाउण्ड रोड, लाहौर में एक मकान किराये पर लिया था, जिसमें बम बनाने का कारखाना लगाया गया था। पुलिस को इसका भी पता लग गया। अत: उसने यहाँ छापा मारकर 16 मार्च की सुबह सुखदेव, जयगोपाल तथा किशोरी लाल को मौके पर ही पकड़ लिया। इसके साथ ही पुलिस को यहाँ एक जीवित बम, आठ बमों के खोल, कुछ बम बनाने का सामान, बम बनाने का नुस्खा, एक वेबली स्कॉट पिस्तौल, छोटे हथियारों की एक नियमावली, बटुकेश्वर दत्त का एक फोटो तथा एक पत्र जो भगतसिंह अथवा बटुकेश्वर दत्त द्वारा लिखा गया था, प्राप्त हुए। इसके साथ ही दिल्ली के बड़े-बड़े अधिकारियों को चेतावनी देने तथा जनता से उनकी किसी प्रकार की सहायता न करने की अपील के पत्र-पोस्टर आदि भी मिले। इनमें एक पत्र हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक को लिखा था तथा इसे प्रकाशित करने की प्रार्थना की गयी थी। यह पत्र इस प्रकार था—

"वास्तविक हिन्दुस्तान गणतन्त्र सेना, परमात्मा तथा सोवियत संघ हमारा मार्गदर्शन करें।"

इस पत्र में 'हिन्दुस्तान गणतन्त्र सेना' के युद्ध-सचिव के स्थान पर गुलाम कादर के हस्ताक्षर थे।

15 अप्रैल, 1929 को लाहौरी गेट, लाहौर पर निम्नलिखित पोस्टर चिपकाया मिला—

"ऊँचे स्वर बहरों के लिए"

"दिनांक 7 अप्रैल को पुलिस की अवैध कार्यवाही ने हमें मजबूर कर दिया है कि इस सम्बन्ध में हम आगे कदम उठाएँ। इसलिए 'गणतन्त्र सेना' के कमाण्डर-इन-चीफ द्वारा यह फैसला किया गया है कि लाहौर पुलिस के आफीसर इन्चार्ज को साण्डर्स की तरह मार डाला जाए। सिपाही

नम्बर 203 तथा 182 को आदेश दिया जाता है कि वे तुरन्त कार्यवाही करें।"

आज्ञा से
व्यक्तिगत सहायक
कमाण्डर-इन-चीफ
हिन्दुस्तान गणतन्त्र सेना

इसी प्रकार का एक पत्र सूरत से दिल्ली पुलिस अधीक्षक को भी भेजा गया था—

"परमात्मा सोवियत हमारा मार्गदर्शन करे"

"आपने हमारे भाइयों को गिरफ्तार किया है, परन्तु हम फिर दुहराते हैं कि आप मनुष्यों का नाश कर सकते हैं विचारों का नहीं।

"हमारे आन्दोलन की पीठ पर कुछ लोगों की शक्ति नहीं—हम बहुत-से हैं। मैं चेतावनी देता हूँ कि आप एसोसिएशन के किसी सदस्य को ढूंढ निकाल सकें। हमारी एसोसिएशन की 29 शाखाएँ हैं। लाहौर, दिल्ली और कलकत्ता हमारे प्रमुख केन्द्र हैं। इनके अलावा पूना, बेलगाम तथा पटना आदि में भी हमारी शाखाएँ हैं। इतनी सूचना देने पर भी मैं आपको चेतावनी देता हूँ कि अगर आप हमारे आन्दोलन का भेद पा सकें।

"हमारी एसोसिएशन की सभा इसी महीने की 27 तारीख को दिल्ली में ही होने जा रही है, जिसमें हम सभी सरकारी स्थानों तथा कार्यालयों को नष्ट कर देने की योजना बना रहे हैं। अतः तैयार रहें।

"यदि सरकार को अपने ऊपर गर्व है तो उसे हमारी चेतावनी स्वीकार करनी चाहिए। सावधान ! सावधान !"

"परमात्मा सोवियत हमारा मार्गदर्शन करे।"

सचिव
हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र संघ
सूरत शाखा।

इसी प्रकार के पत्र अनेक सरकारी अधिकारियों तथा अंग्रेज भक्त बड़े-बड़े लोगों को भी प्राप्त हुए। अपनी पूरी शक्ति लगा देने पर भी पुलिस पत्र भेजनेवालों का कोई पता न लगा सकी। अन्ततः पुलिस ने इस मामले

सकें। खैर देख लीजिएगा। वाल्दा साहिब, भाभी साहिब, मानाजी (दादी) और चाची साहिब के चरणों में नमस्कार। रणवीरसिंह और कुलतारसिंह को नमस्ते। बापूजी (दादाजी) के चरणों में नमस्कार अर्ज कर दीजिएगा। इस वक्त पुलिस-हवालात और जेल में हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा। मुझे आपका एड्रेस मालूम नहीं है, इसलिए इस पते (कांग्रेस कार्यालय) पर लिख रहा हूँ।

आपका ताबेदार
भगतसिंह

जेल में पिता से भेंट :

सरदार किशनसिंह ने जेल में भगतसिंह से मिलने के लिए एक प्रार्थनापत्र दिया, किन्तु फिर भी मिलने की आज्ञा न मिली। फिर उन्होंने अपने वकील आसफ अली के माध्यम से प्रार्थनापत्र दिया और आज्ञा मिल गयी। तब 3 मई, 1929 को पिता-पुत्र की भेंट हो सकी। इस अवसर पर उन दोनों में निम्नलिखित वार्तालाप हुआ—

पिता—1 मई को मेरे लाहौर चले जाने के बाद मुझे अखबारों से पता चला कि पुलिस ने तुम्हारे छोटे भाई कुलतारसिंह को गिरफ्तार कर लिया है, जिसकी उम्र केवल दस-ग्यारह वर्ष है, जो पाँचवीं में पढ़ता है।

भगतसिंह—लड़का क्यों पकड़ा गया है ?

पिता—दुर्भाग्य से वह मेरा बेटा और तुम्हारा भाई है। हो सकता है कि मैं भी पकड़ लिया जाऊँ। जयदेव स्वस्थ नहीं है और सुखदेव…"

भगतसिंह—पुलिसवाले बदमाश हैं। उन्होंने काकोरी केस में निर्दोष व्यक्तियों को फाँसी दी है। वह मुझे साण्डर्स की हत्या के केस में लाहौर खींच ले जाएँगे। उन्होंने मुझे और दत्त को यह कहकर धोखा देने की कोशिश की है कि प्रत्येक सरकारी गवाह बन गया है। पिताजी आप मेरे बचाव के लिए पैसा बर्बाद न करें।

पिता—घर की औरतें तुमसे मिलना चाहती हैं, पर तुम्हारे कहे अनुसार मैं उन्हें साथ नहीं लाया।

भगतसिंह—आप शीघ्र लाहौर लौटकर पता लगायें कि कुलतार को

क्यों गिरफ्तार किया गया है।

इसी बीच मुलाकात का समय समाप्त हो गया था। अतः जेलर ने बात करने से उन्हें रोक दिया और सरदार किशनसिंह लौट गये।

सरदार किशनसिंह को पुत्र से मुलाकात की आज्ञा देने के पीछे भी यह चाल थी कि शायद इससे पुलिस के हाथ कोई सूत्र लग जाये। पुलिस अधिकारी ने स्वयं इस बात को अपनी 4 मई की रिपोर्ट में स्वीकार किया था। इस मुलाकात के समय जेलर तथा श्री आसफ अली वहीं पर थे।

सरदार किशनसिंह इस मुकदमे को पूरी ताकत से लड़ना चाहते थे, किन्तु भगतसिंह अपने बचाव के लिए मुकदमा नहीं लड़ना चाहते थे। उन्होंने स्वयं श्री आसफ अली से वहीं पर थोड़ी बहुत कानूनी सहायता ली थी।

पंचम अध्याय

मुकदमे की सुनवाई

असेम्बली बम काण्ड में भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त के विरुद्ध न्याय का नाटक शुरू हो गया। 7 मई, 1929 को अतिरिक्त मजिस्ट्रेट मिस्टर पूल की अदालत में जेल में ही सुनवाई आरम्भ हुई। कुछ विशेष पत्रकारों, अभियुक्तों के नजदीकी रिश्तेदारों और वकीलों के अलावा अन्य किसी को भी अदालत में नहीं आने दिया गया। दिल्ली गेट थाना, सब इन्स्पेक्टर शेख अब्दुल रहमान इन पत्रकारों, अभियुक्तों के रिश्तेदारों आदि की भी सावधानी से तलाशी ले रहा था। सुरक्षा के बड़े प्रबन्ध किये गए थे। इन सुरक्षा प्रबन्धों के बारे में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विशेष प्रतिनिधि ने लिखा था—

"लाठीधारी पुलिस को राजपुर रोड पर मजिस्ट्रेट के आवास से जेल तक तमाम दूसरी सड़कों पर जो जेल की ओर निकलती हैं, एक पंक्ति में खड़ा कर दिया गया था। सी० आई० डी० के लोगों को सादे कपड़ों में साइकिलों पर सड़क और मुख्य स्थलों पर देखा गया। जेल का अहाता भी पूरी तरह सुरक्षित था। ट्रैफिक इन्स्पेक्टर श्री जानसन को अपने मोटर सार्जेन्टों के साथ जेल के दरवाजे पर नियुक्त किया गया। जबकि आर० बी० मलिक महाशय पुलिस अधीक्षक, मि० अली, डिप्टी पुलिस उप अधीक्षक, एडिशनल दास साहब तथा जेलर अदालत के अन्दर की व्यवस्था करने वाले थे।"

पिता एवं चाची भी वहाँ उपस्थित थीं। इनके अलावा दो प्रशिक्षण लेने वाले मजिस्ट्रेट भी वहाँ थे।

दस बजकर आठ मिनट पर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को अदालत में लाया गया। अदालत में पहुँचते ही जोरदार आवाज में भगतसिंह ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा बटुकेश्वर दत्त ने 'नौकरशाही मुर्दाबाद' का नारा लगाया। अदालत में सनसनी फैल गयी तथा अदालत की आज्ञा से उन्हें हथकड़ी पहना दी गयी। उन्हें लोहे के जंगले के पीछे एक बेंच पर बैठा दिया गया। उनके पीछे कुछ जेल अधिकारी और सी० आई० डी० के आदमी बैठे थे। यहाँ पर भी दोनों क्रान्तिकारियों के चेहरों पर किसी प्रकार की मायूसी नहीं देखी गयी; वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

इसके बाद सरकार की ओर से ग्यारह गवाह पेश किये गये। इसी दिन लंच से कुछ पहले एक पुलिस अधिकारी के सामने भगतसिंह को अपने माता-पिता तथा चाची से मुलाकात करने की आज्ञा दी गयी। इस मुलाकात में भगतसिंह को अपने पिताजी से बार-बार कहते सुना गया—"सरकार मुझे मौत की सजा देने पर तुली हुई है, इसलिए आप इस पर बिल्कुल चिन्ता न करें।"

दोपहर बाद लंच के समय अदालत के उठने पर भगतसिंह ने अदालत से समाचार पत्र की माँग की, किन्तु उनकी यह माँग अस्वीकार कर दी गयी। यद्यपि राजनीतिक कैदियों को यह सुविधा दी जाती थी। उस दिन शाम चार बजकर दस मिनट पर अदालत उठ गयी।

दूसरे दिन 8 मई, 1929 भी उसी प्रकार की कठोर सुरक्षा व्यवस्था में अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सुबह दस बजकर बीस मिनट पर पुनः भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को लाया गया। अदालत में आते ही दोनों ने पहले दिन की तरह 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'नौकरशाही मुर्दाबाद' के नारे लगाये। इसके बाद फिर कुछ दूसरे गवाहों के बयान लिये गए और तब भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त से बयान देने के लिए कहा गया, पर दोनों ने इसे अस्वीकार कर दिया। बहुत अधिक जोर देने पर ही भगतसिंह ने अदालत के प्रश्नों का [illegible] देना स्वीकार किया। अदालत एवं भगतसिंह के बीच निम्नलि[illegible] हुए—

अदालत—व्यवसाय ?

भगतसिंह—कुछ नहीं।

अदालत—निवास स्थान ?

भगतसिंह—लाहौर।

अदालत—मोहल्ला ?

भगतसिंह—हम हमेशा एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहते हैं।

अदालत—क्या तुम आठ अप्रैल को असेम्बली में उपस्थित थे ?

भगतसिंह—जहाँ तक इस मुकदमे का सम्बन्ध है, मैं इस मौके पर किसी प्रकार का कोई भी बयान देने की जरूरत नहीं महसूस करता।

अदालत—जब तुम कल अदालत में आये, तो तुमने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा बुलन्द किया—इससे तुम्हारा क्या मतलब है ?

इस प्रश्न पर सफाई पक्ष के वकील श्री आसफ अली ने आपत्ति उठाई। अदालत को इस आपत्ति को स्वीकार करना पड़ा। इसी प्रकार बटुकेश्वर दत्त ने भी केवल अदालत के प्रश्नों के ही उत्तर दिये और बयान देना अस्वीकार कर दिया। अब सफाई पक्ष के वकील आसफ अली ने लगभग चालीस मिनट तक अपनी सर्वांगपूर्ण बहस की।

इस बहस को सुनने के बाद अदालत ने हत्या करने के प्रयास के आरोप में दोनों पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अन्तर्गत आरोप लगाया कि उन्होंने असेम्बली में कई लोगों को जान से मार डालने के लिए बम फेंके थे। अदालत ने दोनों से फिर पूछा कि "क्या वे दोनों इस विषय में कोई बयान देना चाहते हैं ?" इस पर दोनों ने कहा, "इस पर फिर फैसला किया जायेगा।" इसके बाद अदालत ने इस मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया।

सेशन न्यायालय में भगतसिंह का ऐतिहासिक भाषण :

सेशन न्यायालय (सेशन कोर्ट) के अधीन इस मुकदमे की सुनवाई 4 जून, 1929 से प्रारम्भ हुई। सेशन जज [illegible] के [illegible] इसकी सुनवाई की। सरकारी वकील [illegible] के बयान हो जाने पर भगतसिंह ने महसूस किया कि अब बयान देने का समय आ गया है। इस-

पिता एवं चाची भी वहाँ उपस्थित थीं। इनके अलावा दो प्रशिक्षण लेने वाले मजिस्ट्रेट भी वहाँ थे।

दस बजकर आठ मिनट पर भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को अदालत में लाया गया। अदालत में पहुँचते ही जोरदार आवाज़ में भगतसिंह ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा बटुकेश्वर दत्त ने 'नौकरशाही मुर्दाबाद' का नारा लगाया। अदालत में सनसनी फैल गयी तथा अदालत की आज्ञा से उन्हें हथकड़ी पहना दी गयी। उन्हें लोहे के जंगले के पीछे एक बेंच पर बैठा दिया गया। उनके पीछे कुछ जेल अधिकारी और सी० आई० डी० के आदमी बैठे थे। यहाँ पर भी दोनों क्रान्तिकारियों के चेहरों पर किसी प्रकार की मायूसी नहीं देखी गयी; वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

इसके बाद सरकार की ओर से ग्यारह गवाह पेश किये गये। इसी दिन लंच से कुछ पहले एक पुलिस अधिकारी के सामने भगतसिंह को अपने माता-पिता तथा चाची से मुलाकात करने की आज्ञा दी गयी। इस मुलाकात में भगतसिंह को अपने पिताजी से बार-बार कहते सुना गया— "सरकार मुझे मौत की सजा देने पर तुली हुई है, इसलिए आप इस पर बिल्कुल चिन्ता न करें।"

दोपहर बाद लंच के समय अदालत के उठने पर भगतसिंह ने अदालत से समाचार पत्र की माँग की, किन्तु उनकी यह माँग अस्वीकार कर दी गयी। यद्यपि राजनीतिक कैदियों को यह सुविधा दी जाती थी। उस दिन शाम चार बजकर दस मिनट पर अदालत उठ गयी।

दूसरे दिन 8 मई, 1929 को उसी प्रकार की कठोर सुरक्षा व्यवस्था में अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सुबह दस बजकर बीस मिनट पर पुनः भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को लाया गया। अदालत में आते ही दोनों ने पहले दिन की तरह

मुर्दाबाद'

कहा

उनमें से कुछ ने अब हमें यह बताया कि विचाराधीन घटना के पश्चात् दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा कि हम लोगों ने बम फेंककर किसी व्यक्ति पर नहीं, वरन् स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है। उस समय तुरन्त हमें यह आभास हुआ कि उस घटना के वास्तविक महत्त्व का सही मूल्यांकन नहीं किया गया है।

मानव मात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है। अतः किसी व्यक्ति के लिए दुश्मनी रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव जीवन इतना पवित्र है कि इस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। छिपे हुए समाजवादी दीवान चमन लाल ने *हमें जघन्य आक्रमणकारी और देश के लिए अपमानजनक बताया है,* साथ ही लाहौर के समाचार पत्र 'ट्रिब्यून' तथा कुछ अन्य लोगों की यह धारणा भी असत्य है कि हम उन्मुक्त है।

हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हमने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है *तथा पाखण्ड से घृणा करते हैं।*

हमारा ध्येय उस संस्था के प्रति अपना व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना है, जिसने अपने आरम्भ से केवल अपनी निरुपयोगिता का ही नहीं, वरन् हानि पहुँचाने वाली दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हमने जितना अधिक चिन्तन किया है, हम उतने ही अधिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि *इस संस्था (विधान मण्डल) के अस्तित्व का प्रयोजन* संसार के सामने भारतीय दीनता और असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक गैर जिम्मेवार एवं स्वेच्छाचारी शासन की दमनकारी सत्ता का प्रतीक बन गयी है।

जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय मांग को बार-बार रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जा रहा है। सदन द्वारा पारित पवित्र *प्रस्तावों को तथा-*कथित भारतीय संसद के फर्श पर निरादरपूर्वक पाँवों तले कुचला जा रहा है। दमनकारी एवं स्वेच्छाचारी कानूनों के निवारण से सम्बन्धित प्रस्तावों की सबसे अधिक अपमानपूर्ण उपेक्षा की गयी है तथा प्रतिनिधियों

ने जिन सरकारी कानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया है, उन्हें भी सरकार द्वारा मनमर्जी से स्वीकृति दी जा रही है।

…परिणामत. हमने गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् के भूतपूर्व विधि सदस्य स्वर्गीय श्री सी० आर० दास के उन शब्दों से प्रेरणा ग्रहण की, जो उन्होंने अपने पुत्र के नाम एक पत्र में लिखे थे और जिनका तात्पर्य यह था कि इंग्लैंड को उसके दुःस्वप्न से जगाने के लिए बम आवश्यक है और हमने उन लोगों की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिए असेम्बली के फर्श पर बम फेंका, जिनके पास अपनी हृदयविदारक कथा को बताने का दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। हमारा एकमात्र उद्देश्य यह था कि हम बहरों को अपनी आवाज सुनाएँ और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुँचाएँ, जो उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी तरह ही सोच रहे हैं तथा भारतीय जाति यद्यपि ऊपर से एक शान्त समुद्र की तरह दिखाई दे रही है, फिर भी भीतर ही भीतर एक भयंकर तूफान उमड़ रहा है। हमने उन लोगों को खतरे की चेतावनी दी है, जो सामने आने वाली गम्भीर परिस्थितियों की चिन्ता किये बिना सरपट दौड़े जा रहे हैं। हमने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है, जिसकी निरर्थकता के बारे में नई पीढ़ी के मन में कोई सन्देह नहीं बचा है। हमने ईमानदारीपूर्ण सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति उन भयंकर खतरों के प्रति चेतावनी देने के लिए यह मार्ग चुना है, जिनका पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ों लोगों की तरह स्पष्ट हुआ है।

हमने पिछले पैरों में काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। हम उसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि में बलप्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है, जब वह आक्रमण रीति से किया जाये और यह हमारी दृष्टि में हिंसा है, परन्तु जब शक्ति का प्रयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाये, तो वह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत हो जाता है। बलप्रयोग का पूर्ण बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्रान्ति है। इस देश में एक नया आंदोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आंदोलन गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी, कमाल पाशा और रिज़ा खाँ, वाशिंगटन और गैरीबाल्डी तथा लफायेत और लेनिन के कार्यों से प्रेरणा

ग्रहण करता है।

हमें ऐसा लगता है कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं ने इस आंदोलन की ओर से आँखें मूँद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज़ नहीं पड़ी है। अतः हमें यह कर्तव्य प्रतीत हुआ कि हम ऐसे स्थानों पर चेतावनी दें, जहाँ हमारी आवाज़ अनसुनी न रह सके।

हमने अभी तक विचाराधीन घटना के पीछे निहित आयोजनों की चर्चा की है। अब हम अपने प्रयोजनों की मर्यादा के बारे में भी कुछ कहना चाहते हैं।

हमारे मन में उन लोगों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा वैर नहीं था, जिनको इस घटना के दौरान मामूली चोटें आयी हैं। इतना ही नहीं, असेम्बली में उपस्थित किसी भी व्यक्ति के प्रति हमारा व्यक्तिगत द्वेष नहीं था। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि हम मनुष्य-जीवन को इतना पवित्र मानते हैं कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता तथा किसी को चोट पहुँचाने के बजाय मानव जाति की सेवा के लिए अपने प्राण देने को तत्पर हैं। हम साम्राज्यवादी सेनाओं के उन भाड़े के सैनिकों की तरह नहीं हैं, जो हत्या करने में रस लेते हैं, इसके विपरीत हम मानव-जीवन की रक्षा का प्रयत्न करते हैं। इसके बावजूद हम स्वीकार करते हैं कि हमने जान-बूझकर असेम्बली भवन में बम फेंका यह तथ्य स्वयं मुखर है तथा हमारा अनुरोध है कि हमारे प्रयोजनों को हमारे कार्य के परिणाम से ही आँका जाना चाहिए न कि काल्पनिक परिस्थितियों और पूर्व मान्यताओं के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा दिये गए प्रमाणों के बावजूद सत्य है कि हमने असेम्बली भवन पर जो बम फेंके उनसे एक खाली बेंच को मामूली क्षति पहुँची और एक दर्जन से भी कम लोगों को मामूली-सी खरोंचें आयीं। सरकार के वैज्ञानिकों ने इसे एक चमत्कार कहा है, परन्तु हमारी दृष्टि में यह एक पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पहली बात तो यह कि दो बम बेंचों और डेस्कों के बीच की खाली जगह में फटे, दूसरी यह कि जो लोग विस्फोट से केवल दो फुट की दूरी पर थे—जैसे श्री राऊ, श्री शंकर राव तथा श्री जार्ज शुस्टर, उन लोगों को या तो बिल्कुल चोट नहीं आयी या केवल कुछ खरोंचें आयीं। यदि बमों में पोटेशियम क्लोरेट और पिक-

केट के प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो उन्होंने अवरोधों को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट-स्थल से कई गज की दूरी पर बैठे लोग आहत हो गये होते और उससे भी अधिक विस्फोटक और प्रभावशाली तत्त्व भरे होते वे विधानसभा के अधिकांश सदस्यों की जीवन-लीला समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हें सरकारी बाक्स में फेंकते जहाँ महत्त्वपूर्ण लोग बैठे थे, और आखिरकार हम यह भी कर सकते थे। उस समय अध्यक्ष दीर्घा में बैठे हुए सर जान साइमन पर चोट करते जिसके दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन से देश के सभी विवेकशील लोग घृणा करते हैं परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नहीं था और बमों का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया गया था, उसने उससे अधिक काम नहीं किया। इसमें कोई चमत्कार नहीं था। हमने जान-बूझकर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगों का जीवन सुरक्षित रहे।

इसके पश्चात् हमने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने-आपको प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषकों को यह बता दिया कि वे व्यक्तियों को कुचल सकते हैं, विचारों की हत्या नहीं कर सकते। दो महत्त्वहीन इकाइयों को कुचल देने से राष्ट्र नहीं कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते हैं कि फ्रांस में लैटर्स डेकेण्टयेट तथा बैसटाइल्स घटनाओं से क्रान्तिकारी आन्दोलन को नहीं कुचला जा सका। और फाँसी की रस्सी साइबेरिया में विदाई गई मॉडर्न क्रान्ति की ज्वाला को बुझा नहीं सकी। इसी प्रकार यह भी असम्भव है कि ये अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटों को बुझा सकें, षड्यन्त्रों का भेद खोलने, उनकी जोरदार शब्दों में निन्दा करने तथा उच्चतर आदर्शों का स्वप्न देखनेवाले सभी नवयुवकों को फाँसी के तख्ते पर चढ़ा देने से क्रान्ति की गति अवरुद्ध नहीं की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी की उपेक्षा नहीं की गयी, तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीड़न को रोकने में सहायक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हमने स्वयं अपने कन्धों पर लिया और कर्तव्य का पालन

रूप से प्रतिशोध लेने की गुंजाइश है। क्रान्ति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान सर्वव्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहिए। उत्पादक और श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं, तथापि शोषक लोग उन्हें श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर सबके लिए अन्न उगाने वाले कृषक परिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाजारों में कपड़ों की पूर्ति करनेवाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीरों को ढांपने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन निर्माण, लोहारी और बढ़ईगीरी के काम में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते हैं और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूंजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह जीनेवाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। यह भयंकर विषमताएँ और विकास की कृत्रिम समानताएँ समाज को अराजकता की ओर ले जा रही है। यह परिस्थिति हमेशा नहीं रह सकती तथा यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी हुई आनन्दमग्न हो रही है और शोषकों के अबोध बच्चों की भाँति हम एक खतरनाक दरार के कगार पर खड़े हैं। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते न बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी, अतः क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें। जब तक यह नहीं होगा, और एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उससे उत्पन्न होनेवाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति के सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जानेवाली समस्त चर्चाएँ कोरा पाखण्ड है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था करना है, जिसे इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व-संघ मानव जाति को पूंजीवाद के बन्धन तथा युद्ध से उत्पन्न होनेवाली बर्बादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।

हमारा आदर्श यह है और इस आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक समुचित और काफी जोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरुद्ध करने का क्रम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है, जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधक तत्वों को उखाड़ फेंक दिया जाएगा तथा सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य होगा, जिससे क्रान्ति के लक्ष्य की उपलब्धि की जा सके। क्रान्ति मानव-जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। लोकप्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अन्तिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे, जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जायेंगे। इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की तरह जलाने को सन्नद्ध हुए हैं। इतने महान ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रान्ति के उत्कर्ष की सन्तोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।...इन्कलाब जिन्दाबाद!

सेशन जज मिडल्टन के मन में इस वक्तव्य के प्रति आशंकाएं थीं, इसलिए उसने दूसरे दिन बचावपक्ष के वकील श्री आसफ अली तथा पब्लिक प्रॉसीक्यूटर—दोनों को बुलाया तथा इसमें उन आपत्तिजनक अंशों को निकाल देने की इच्छा व्यक्त की। श्री आसफ अली भी इससे सहमत हो गये और उन्होंने भगतसिंह को भी इसके लिए मना लिया। इस प्रकार उनके भाषण में सुधार करके ही उसकी कॉपी रिकार्ड में रखी गयी। दिल्ली के कमिश्नर ने शीघ्र आज्ञा जारी कर दी कि किसी भी समाचारपत्र में भगतसिंह का यह भाषण प्रकाशित न किया जाए, किन्तु इस आज्ञा के जारी होने से पहले ही 'पाइनियर' इसे इसके पूर्ण रूप में प्रकाशित कर चुका था। बाद में संशोधित भाषण को एक-एक करके सभी समाचारपत्रों को भेज दिया गया जिसे उन्होंने प्रकाशित किया। यही नहीं, विदेशी समाचार-पत्रों ने भी इसे प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया। इस प्रकार क्रान्तिकारियों के विचार सारी दुनिया के सामने आये। वास्तव में भगतसिंह भी यही चाहते थे कि उनके विचारों से दुनिया परिचित हो।

[illegible] भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दोनों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 तथा विस्फोटक पदार्थ कानून की धारा 3 के अन्तर्गत उम्रकैद की सजा दी गयी। इसके तुरन्त बाद भगतसिंह को पंजाब की मियांवाली जेल में तथा बटुकेश्वर दत्त को लाहौर सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया।

हाईकोर्ट में अपील

इतना तो साफ है कि ये दोनों वीर निचली अदालत से ही अपना बचाव करने के विरुद्ध थे, किन्तु वे अपने विचारों को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना चाहते थे। इसीलिए इन्होंने सेशन जज के फैसले की लाहौर हाईकोर्ट में अपील की। इस अपील को जस्टिस फोर्ड तथा जस्टिस एडीसन ने सुना। यहाँ भगतसिंह ने अपना दूसरा महत्त्वपूर्ण बयान दिया, जो इस प्रकार है—

"माई लार्ड ! हम न वकील हैं, न अंग्रेजी के विशेषज्ञ हैं और न हमारे पास डिग्रियाँ ही हैं, इसलिए हमसे शानदार भाषणों की आशा न की जाए। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी गलतियों पर ध्यान न देते हुए उसके वास्तविक अर्थ को समझने की कोशिश की जाए। दूसरे तमाम मुद्दों को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं एक मुद्दे पर विचार प्रकट करूँगा। यह मुद्दा इस मुकदमे में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह मामला बड़ा पेचीदा है, इसलिए कोई भी व्यक्ति आपकी सेवा में विचारों की वह ऊँचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव से हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि

जाएँ सारे ! इन परिस्थितियों में विद्वान जज के लिए उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू पर फैसला करते। परन्तु उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

पहली बात यह है कि असेम्बली में हमने जो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टि से जो सजा हमें दी गयी, वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरी दृष्टि से देखा जाए, तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं लगाया जा सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए, तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय हो ही नहीं सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आएँगे। सरकारी कर वसूल करनेवाले अधिकतर चोर-जालसाज दिखायी देंगे और न्यायाधीश पर भी कत्ल का अभियोग लगेगा। इस तरह तो सामाजिक व्यवस्था और सभ्यता, खून-खराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जाएगी।

यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो हर धर्म का प्रचार झूठ का प्रचार दिखायी देगा और हरएक

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए, उन्होंने गोली चलाई और सैकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उन्हें गोलों का निशाना बनाने के हुक्म की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिये—श्री खड्गबहादुर सिंह ने जो एक नौजवान गोरखा है, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाये तो खड्गबहादुर सिंह को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी लेकिन उसे कुछ वर्ष कैद की सजा दी गई और अवधि से बहुत पहिले मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रहती थी, जो उसे मौत की सजा न दी गई उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध नहीं हुआ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था लेकिन उसका जीवन बच गया और वह स्वतन्त्र है। मैं पूछता हूँ, उसे फाँसी की सजा क्यों न दी गई? उसका कार्य नपा-तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य हमारे (एक्शन) की दृष्टि से ज्यादा खतरनाक और संगीन था। उसे

इसलिए बहुत कम सजा मिली, क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को एक ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खड़गबहादुर सिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षों की सजा दी गई। यह सिद्धान्तों का विरोध है जो कि यह है—'कानून आदमियों के लिए है आदमी कानून के लिए नहीं है!' इन दशाओं में क्या कारण है कि हमें वे रियायतें न दी जायें, जो श्री खड़गबहादुर सिंह को मिली थी। क्योंकि उसे नर्म सजा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति जो दूसरे को कत्ल करता है, फाँसी की सजा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें आम कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या कि इसलिए कि इस कार्य का राजनीतिक महत्त्व है?

मार्ड लार्ड! इन दशाओं में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। अगर वह कायम है, तो अराजी तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून उसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शांति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया मिलाना जुर्म नहीं, बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना हो, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये, तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति पर आधारित नहीं और न्याय विरोधी कानूनों के प्रति बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादा है। 8 अप्रैल, 1929 को हमने सेन्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाकों से चन्द लोगों को खरोंचें आईं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल आये। कुछ देर बाद खामोशी छा गई। मैं और साथी बी० के० दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हमने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाये। हमें गिरफ्तार कर लिया गया।

अभियोग लगाये और हत्या के अपराध में सजा दी गई, लेकिन बमों से चार-पाँच आदमियों को मामूली सा नुकसान पहुँचा और जिन्होंने यह अपराध किया, उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने-आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिये। हमें सजा का भय नहीं है। लेकिन हम नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाये। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये है। यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप से हमारे वक्तव्य के अध्याय से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है, इस देश में काफी ऊँची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचार के अनुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि हमें विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जायें।

'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी है, उसे उड़ा दिया गया है। हालाँकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' से हमारा वह उद्देश्य नहीं था, जो आमतौर से गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी, जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूँजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को समझे बिना किसी सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज-रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम नहीं कर सकेगी। अब हमने इस तूफान

का रुख बदलने के लिए यह कार्यवाही की है। हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियाँ ठीक समय पर सही कार्यवाही करतीं तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रांति न बरस पड़ती। दुनिया की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून-खराबे के वातावरण में डूब गईं, सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रभाव को बदल सकते हैं। हम पहले चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते।

माई लार्ड! नीयत और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्यवाही की और इस कार्यवाही के बयान हमारा समर्थन करते हैं। एक नुक्ता स्पष्ट करना आवश्यक है, यदि हमें बमों की ताकत के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं होता तो हम पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर, श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते? हम नेताओं के जीवन को किस तरह खतरे में डाल सकते थे? हम पागल तो नहीं हैं और अगर पागल होते, तो हमें जेल में बन्द करने के बजाये पागलखाने में बन्द किया जाता। बम के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फेंकने वाले सही दिमाग के न होते या वे परेशान (असंतुलित) होते तो बम खाली जगह की बजाये बेंचों पर गिरते। मैं तो कहूँगा, खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखाई, उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालातों में माई लार्ड! हम सोचते हैं, हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवाओं में हम सजाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने आये हैं। हम तो चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाये और न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाये। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।"

भगतसिंह भारतमाता के एक सच्चे सपूत थे। भारत की गुलामी के लिए उनके दिल में जो दर्द था, उसी के लिए वह क्रांतिकारी बने थे। यद्यपि उनके इस भाषण में कहीं भी, कोई भी बात ऐसी नहीं है, जो सही

न हो, फिर भी विदेशी अंग्रेजों से न्याय की आशा करना बालू से तेल निकालने के समान था। श्री आसफ अली ने इस पर दो दिन तक बहस की, सरकारी वकील ने तीसरे दिन आधे दिन तक उनके तर्कों का उत्तर दिया। इस बीच भगतसिंह स्वयं भी बहस करने लगते थे। अन्त में 13 जनवरी, 1930 को हाईकोर्ट ने सेशन जज के फैसले को मान्य ठहराते हुए अपील खारिज कर दी।

षष्ठ अध्याय

लाहौर जेल में भूख हड़ताल

असेम्बली बम काण्ड में भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त पर जो मुकदमा दिल्ली में चला, उसमें उन्हें यूरोपियन क्लास में रखा गया था और यहाँ उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था, किन्तु अन्य जेलों में कैदियों के साथ यह बात न थी। साथ ही इधर सरकार उन्हें साण्डर्स हत्या के मामले की चपेट में लेने की तैयारी भी कर रही थी। इसके लिए इकबाली गवाह भी मिल गये थे। वस्तुतः इसीलिए उन्हें मियाँवाली जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया था। इस जेल में उनका अनेक राजनीतिक कैदियों से परिचय हुआ, जो 1914-15 के 'गदर आन्दोलन', 'मार्शल लॉ एजिटेशन' तथा 'बब्बर अकाली आन्दोलनों' में भाग लेने के कारण उम्र कैद की सजा भुगत रहे थे। यहाँ भगतसिंह ने राजनीतिक कैदियों पर होने वाले अत्याचारों को देखा और सुना। अन्त में वह भूख हड़ताल करने के नतीजे पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने उन सभी कैदियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"साथियो! यदि हम जेल से बाहर होते तो अपनी आजादी की लड़ाई को जारी रखते हुए समाप्त हो गये होते, इस जेल को भी अंग्रेज सरकार ने बनाया है, जिसका मकसद देशभक्तों के मन तथा स्वास्थ्य को कमजोर करना है। यहाँ इन्सान को इन्सान नहीं समझा जाता और न ही उसके साथ वैसा बर्ताव ही किया जाता।"

फिर उन्होंने भूख हड़ताल करने का सुझाव दिया। सभी कैदी उनके सुझाव से सहमत हुए। इसलिए उन्होंने 15 जून, 1929 से भूख हड़ताल शुरू कर दी और 17 जून, 1929 को उन्होंने पंजाब राज्य के इन्सपेक्टर जनरल, जेल को निम्न पत्र लिखा—

सेवा में,

इंस्पेक्टर जनरल, जेल

पंजाब जेल्स, लाहौर

प्रिय महोदय,

इस सच्चाई के बावजूद साण्डर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नवयुवकों के साथ ही मुझ पर भी मुकदमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियाँवाली जेल में बदल दिया गया है। इस मामले की सुनवाई 26 जून, 1929 से आरम्भ होने वाली है। मैं यह समझने में असमर्थ रहा हूँ कि मुझे यहाँ स्थानान्तरित करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है?

जो भी हो, न्याय की माँग है कि हर एक अभियुक्त को वे सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ, जिससे वह अपने मुकदमे की तैयारी कर सके और मुकदमा लड़ सके। किन्तु यहाँ रहते हुए मैं अपना वकील कैसे रख सकता हूँ, क्योंकि यहाँ रहने पर मेरे लिए अपने पिताजी तथा अन्य रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना मुश्किल है। यह स्थान काफी अलग-थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं अनुरोध करता हूँ कि आप तुरन्त मुझे लाहौर जेल भेजने का आदेश दें, जिससे मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिल सके। आशा है शीघ्र ध्यान दिया जायेगा।

आपका

भगतसिंह

आजन्म कैदी मियाँवाली जेल

17-6-1929

इस प्रार्थनापत्र का अनुकूल प्रभाव रहा, अत: उन्हें लगभग एक सप्ताह के अन्दर ही लाहौर सेण्ट्रल जेल भेज दिया गया। यहीं बटुकेश्वर दत्त भी थे। वह भी भूख हड़ताल में शामिल हो गये। सुखदेव, जतीन्द्रनाथ दास, अजय घोष, शिव वर्मा, गया प्रसाद, जयदेव कपूर, राजगुरु तथा के० के० सिन्हा पर भी साण्डर्स काण्ड में मुकदमा चल रहा था। ये सभी लाहौर की बोर्स्टल जेल में थे। भगतसिंह की भूख हड़ताल का समाचार सुनकर दत्त ने भी 15 जून, 1929 से ही भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी;

केवल जतीन्द्र नाथ दास चार दिन बाद इस हड़ताल में शामिल हुए। इस भूख हड़ताल में भगतसिंह के वजन में तेजी से गिरावट आनी शुरू हो गयी। हड़ताल शुरू होने के दिन 15 जून, 1929 को उनका वजन 133 पौंड था, किन्तु 9 जुलाई, 1929 को इसमें 14 पौंड की कमी आ गयी। इसी तरह अन्य साथियों का भार भी घटने लगा। पर सभी ने हड़ताल जारी रखी। ये समाचार अखबारों में छपने लगे। सरकार के व्यवहार के विरोध में जगह-जगह सभाएँ होने लगीं। अमृतसर के जलियांवाला बाग में 30 जून, 1929 को नगर कांग्रेस तथा नौजवान भारत की एक संयुक्त सभा हुई। इस सभा के अध्यक्ष डॉ० किचलू थे। सभा में भगतसिंह के प्रिय नारे 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे लगाये गये। भगतसिंह और उनके कार्यों की प्रशंसा की गयी। देवकीनन्दन शरण एवं मास्टर मोतासिंह आदि ने उन्हें अपनी शुभकामनाएँ अर्पित कीं। अन्त में जनाब हसन उद्दीन का निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया—

"अमृतसर के नागरिकों की यह सभा भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त द्वारा चौदह दिनों से राजनीतिक कैदियों से दुर्व्यवहार के विरोध में शुरू हुई भूख हड़ताल की प्रशंसा करती है तथा उनके साथ हमदर्दी प्रकट करते हुए नौकरशाही को यह चेतावनी देती है कि यदि उनके जीवन को कहीं कोई खतरा हुआ, तो इसकी जिम्मेदारी उसी की होगी।"

नौजवान भारत सभा लाहौर की ओर से भी 21 जुलाई, 1929 को भगतसिंह दिवस मनाया गया। इसमें लगभग दस हजार व्यक्तियों ने भाग लिया था।

जनता द्वारा प्रबल विरोध किये जाने पर भी भूख हड़ताल करने वालों के लिए सरकार के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। उन्हें जबर्दस्ती भोजन देने की कोशिश की गयी, किन्तु उन्होंने इसका विरोध किया।

10 जुलाई को साण्डर्स हत्याकाण्ड के मामले की सुनवाई लाहौर के मजिस्ट्रेट श्रीकृष्ण की अदालत में शुरू हुई। अदालत इसी जेल में लगी। भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को अदालत की कोठरी तक स्ट्रेचर में लाया

गया। यहीं वे अपने अन्य साथियों, सुखदेव, शिव वर्मा आदि से मिले। इसके बाद 12 जुलाई को अदालत में ही मजिस्ट्रेट के सामने जयदेव ने बताया कि बोर्स्टल जेल के कैदियों का दूसरा दल भी भगतसिंह के समर्थन में भूख हड़ताल कर रहा है।

14 जुलाई, 1929 को भगतसिंह ने भारत सरकार के होम मेम्बर को एक पत्र लिखा। इस पत्र में जेल के कैदियों के लिए निम्नलिखित माँगें की गयी थीं—

1 राजनीतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए। इसलिए हमारे भोजन का स्तर यूरोपीय कैदियों के समान होना चाहिए। हम उसी खुराक की माँग नहीं करते, पर स्तर वही होना चाहिए।

2 हमें परिश्रम करने के नाम पर जेलों में अपमानजनक काम करने को मजबूर नहीं किया जाना चाहिए।

3. हमें बिना रोक-टोक पहले इजाजत मिल जाने पर किताबें और लिखने का सामान लेने की सुविधा मिलनी चाहिए।

4. कम से कम रोज का एक अखबार हरएक कैदी को मिलना चाहिए।

5. हरएक जेल में राजनीतिक कैदियों का एक विशेष वार्ड होना चाहिए। इसमें उन सभी जरूरतों की पूर्ति होनी चाहिए, जो यूरोपीय कैदियों को मिलती हैं। एक जेल में रहनेवाले सभी राजनीतिक कैदियों को उसी वार्ड में रखना चाहिए।

6 स्नान के लिए सुविधाएँ मिलनी चाहिए।

7. कपड़े अच्छे मिलने चाहिए।

8 यू० पी० जेल सुधार समिति श्री जगतनारायण तथा खान बहादुर हाफिज हिदायत हुसैन की यह सिफारिश कि राजनीतिक कैदियों के साथ अच्छी श्रेणी के कैदियों जैसा व्यवहार होना चाहिए, हम पर भी लागू होना चाहिए।

यह भूख हड़ताल भगतसिंह के जीवन में एक अनोखी परीक्षा थी। इतने ही वह शरीर से कमजोर हो गये थे, लेकिन फिर भी अदालत में उन्हें हथकड़ी लगाकर लाया जाता था। एक बार 17 जुलाई, 1929 को इन

केवल जतीन्द्र नाथ दास चार दिन बाद इस हड़ताल में शामिल
भूख हड़ताल से भगतसिंह के वजन में तेजी से गिरावट आने
गयी। हड़ताल शुरू होने के दिन 15 जून, 1929 को उनका व
पौंड था, किन्तु 9 जुलाई, 1929 को इसमें 14 पौंड की कमी आ
इसी तरह अन्य साथियों का भार भी घटने लगा। पर सभी ने ह
जारी रखी। ये समाचार अखबारों में छपने लगे। सरकार के ख़िलाफ़
विरोध में जगह-जगह सभाएँ होने लगीं। अमृतसर के जलियाँवाला
में 30 जून, 1929 को नगर काँग्रेस तथा नौजवान भारत की एक स
सभा हुई। इस सभा के अध्यक्ष डॉ० किचलू थे। सभा में भगतसिं
प्रेम भरे 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के
लगाये गये। भगतसिंह और उनके कार्यों की प्रशंसा की गयी। दे
ज्ञान चरण एवं मास्टर मोतासिंह आदि ने उन्हें अपनी शुभकाम
र्पित की। अन्त में जनाब हुसन उद्दीन का निम्नलिखित प्रस्ता
सम्मति से स्वीकार कर लिया गया—

"अमृतसर के नागरिकों की यह सभा भगतसिंह तथा बटुकेश्वर
द्वारा चौदह दिनों से राजनीतिक कैदियों से दुर्व्यवहार के विरोध में
ई भूख हड़ताल की प्रशंसा करती है तथा उनके साथ हमदर्दी प्रकट क
नौकरशाही को यह चेतावनी देती है कि यदि उनके जीवन को
ई खतरा हुआ, तो इसकी जिम्मेदारी उसी की होगी।"

नौजवान भारत सभा लाहौर की ओर से भी 21 जुलाई, 1929
भगतसिंह दिवस मनाया गया। इसमें लगभग दस हज़ार व्यक्तियों
ने हिस्सा लिया।

जनता द्वारा प्रबल विरोध किये जाने पर भी भूख हड़ताल की
... किन्तु सरकार के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। ...
... ...

निगल लेने, ताकि जब उन्हें जबर्दस्ती नाक से ट्यूब गुजारकर भोजन कराया जाए, तो इतनी खाँसी हो कि ट्यूब निकालनी पड़ जाए। ऐसा न करने पर दम घुटकर मरना निश्चित था। अजय घोष ने इसी तरह जबर-दस्ती भोजन कराये जाने के बाद तत्काल मक्खियाँ निगल लीं, ताकि सब खाया-पीया उल्टी में बाहर आ जाए। हड़ताल तोड़ने के हड़तालियों के कमरे में पानी की जगह दूध के घड़े रख दिये गए। यह सबसे कठिन परीक्षा थी। प्यास के मारे बुरा हाल होने पर हड़तालियों ने घड़े फोड़ना शुरू कर दिया। हारकर जेलर को पानी के घड़े फिर से रखवाने पड़े। दवाइयों के माध्यम से भोजन देने की कोशिश की गयी इसका भी विरोध किया गया। कैदियों की कोठरियों में खुशबूदार पकवान फेंक दिये जाते, ताकि वे ललचा जाएँ, पर कैदी उन्हें फेंक देते। जेल अधिकारियों की सारी चालें बेकार गयीं।

अत्यन्त कमजोर होने पर भी भगतसिंह अपने सभी साथियों से मिलते रहते थे और दूसरे साथियों से मिलने के लिए वे बोस्टल जेल भी जाते थे।

जतीन दास की शहादत :

जतीन दास न जाने किस मिट्टी का बना था; उसे किसी प्रकार से भी भोजन कराने की सारी कोशिशें बेकार रहीं। जेल में सभी कैदियों को पंजाबी खाना दिया जाता था, किन्तु जतीन दास को ललचाने के लिए बंगाल का प्रिय भोजन मछली और चावल दिया गया। इसका भी उस पर कुछ असर नहीं हुआ। भला शेर भी कहीं घास खा सकता है; चाहे वह पिंजड़े में बन्द ही क्यों न हो। 24 जुलाई को उसे अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में डाक्टर भी रबड़ की नली से उसे कुछ खिलाने में सफल न हुए। वह दवाइयाँ भी नहीं लेता था। डाक्टरों का भी मत था कि यदि उसे इस प्रकार बलात् भोजन दिया, तो वह मर जाएगा। इस प्रकार भोजन कराने के वह एकदम विरुद्ध थे। इस विषय में उनकी भगतसिंह के साथ हुई बातचीत निम्नलिखित है—

जतीन दास—तुम बलपूर्वक भोजन क्यों करते हो?

भगतसिंह—मैं जितना हो सकता है, विरोध करता हूँ, पर वे मुझे कर-

अभियुक्तों ने हथकड़ी पहनने से इन्कार किया। भगतसिंह को स्ट्रेचर में लाया गया। इतने कमजोर होने पर भी वह अदालत में उठ खड़े हुए। उन्होंने मजिस्ट्रेट को डांटते हुए कहा पुलिस से हथकडी पहनने में हम अपना अपमान समझते हैं तथा हमारे प्रति न्याय करनेवाले बनें। आपने हमारी किसी भी शिकायत को नहीं सुना, हमें आप पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। आप हर मामले में पुलिस के इशारों पर नाच रहे हैं। हथकड़ी लगी होने पर हम एक-दूसरे से मुकदमे के बारे में बातचीत भी कैसे कर सकते हैं? इस अदालत में हमें न्याय की आशा नहीं है। फिर यह ढोंग क्यों? क्या आप या के० बी० अब्दुल आजीज एक पुलिस अधिकारी अदालत की अध्यक्षता कर रहे हैं?

मजिस्ट्रेट ने भगतसिंह के इस व्यवहार पर आपत्ति की और इसे अपमानजनक व्यवहार तथा गुण्डागर्दी का नाम बताया। साथ ही जेल अधीक्षक को परामर्श दिया कि भगतसिंह के खिलाफ अनुशासन की कार्रवाही की जाय।

अधीक्षक सेण्ट्रल जेल लाहौर ने इन्सपेक्टर जनरल जेल पंजाब को 15 जुलाई, 1929 को एक रिपोर्ट भेजी जिसके अनुसार भगतसिंह तथा दत्त को एक विशेष प्रकार का भोजन दिया गया। किन्तु भगतसिंह ने इसे अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि सरकारी बजट में कैदियों के भोजन की मात्रा इतनी चाहिए और इसे सभी राजनीतिक कैदियों के लिए लागू करना चाहिए।

यह भूख हड़ताल सरकार के लिए एक चुनौती बन गयी थी। और जुलाई तक भगतसिंह का वजन 5 पौंड प्रति सप्ताह घटता गया और [illegible] में ठहर गया।

भूख हड़तालियों की बिगड़ती दशा :

निगल लेते, ताकि जब उन्हें जबर्दस्ती नाक से ट्यूब गुजारकर भोजन कराया जाए, तो इतनी खाँसी हो कि ट्यूब निकालनी पड जाए। ऐसा न करने पर दम घुटकर मरना निश्चित था। अजय घोष ने इसी तरह जबर-दस्ती भोजन कराये जाने के बाद तत्काल मक्खियाँ निगल ली, ताकि सब खाया-पीया उल्टी में बाहर आ जाए। हडताल तोडने के हडतालियों के कमरे में पानी की जगह दूध के घडे रख दिये गए। यह सबसे कठिन परीक्षा थी। प्यास के मारे बुरा हाल होने पर हडतालियो ने घडे फोडना शुरू कर दिया। हारकर जेलर को पानी के घडे फिर से रखवाने पडे। दवाइयों के माध्यम से भोजन देने की कोशिश की गयी इसका भी विरोध किया गया। बंदियों की कोठरियों में खुशबूदार पकवान फेंक दिये जाते, ताकि वे ललचा जाएँ, पर बंदी उन्हें फेंक देते। जेल अधिकारियो की सारी चालें बेकार गयीं।

अत्यन्त कमजोर होने पर भी भगतसिंह अपने सभी साथियों से मिलते रहते थे और दूसरे साथियों से मिलने के लिए वे बोस्टल जेल भी जाते थे।

जतीन दास की शहादत :

जतीन दास न जाने किस मिट्टी का बना था; उसे किसी प्रकार से भी भोजन कराने की सारी कोशिशें बेकार रहीं। जेल में सभी बंदियों को पंजाबी खाना दिया जाता था, किन्तु जतीन दास को ललचाने के लिए बंगाल का प्रिय भोजन मछली और चावल दिया गया। इसका भी उसपर कुछ असर नहीं हुआ। भला शेर भी कहीं घास खा सकता है; चाहे वह पिंजडे में बन्द ही क्यों न हो। 24 जुलाई को उसे अस्पताल ले जाया गया। अस्पताल में डाक्टर की रबड की नली से उसे कुछ खिलाने में सफल न हुए। वह दवाइयाँ भी नहीं लेता था। डाक्टरों का भी मत था कि यदि उन्हें इस प्रकार बलात् भोजन दिया, तो वह मर जाएगा। इस प्रकार भोजन करने के वह एकदम विरुद्ध थे। इस विषय में उनकी भगतसिंह के साथ हुई बातचीत निम्नलिखित है—

जतीन दास—तुम बलपूर्वक भोजन क्यों करते हो?

[illegible] विरोध करता हूँ, पर वे मुझे बल-

पूर्वक भोजन देने में सफल हो जाते हैं, यह दो साल तक भी चल सकता है। मेरी नाक बड़ी है, जिसमें ये आसानी से नली डालकर भोजन दे सकते हैं।

जतीन दास की नाक किसी चिड़िया की तरह छोटी-सी थी। उसके द्वारा दवा लेने से इन्कार कर दिये जाने पर अगस्त, 1929 में डा० गोपीचन्द भार्गव (जो बाद में पंजाब के मुख्यमन्त्री बने) जेल में हड़तालियों से मिलने आये। उन्होंने जब जतीन दास से यह पूछा कि तुम दवा तथा पानी आदि क्यों नहीं लेते, तो उसका उत्तर था—

"मैं मरना चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"अपने देश के लिए तथा राजनीतिक अभियुक्तों की अवस्था को सुधारने के लिए।"

6 तथा 9 अगस्त, 1929 को पंजाब सरकार ने राजनीतिक कैदियों को कुछ रियायतें देने की घोषणा की, इसके अनुसार उनके लिए कुछ विशेष प्रकार का भोजन देना स्वीकार कर लिया। बाहर से भोजन आदि मँगाने की सुविधा दे दी गयी तथा सामान्य नागरिकों की तरह के कपड़े पहनने की आज्ञा दे दी गयी। ये माँगें हड़तालियों की सभी माँगों को पूरा नहीं करती थी, अतः हड़ताल चलती रही।

जतीन दास की स्थिति को देखकर भगतसिंह ने कई बार उसे दूध पी लेने के लिए दबाव भी डाला, पर दास नहीं माननेवाला था; न माना। भगतसिंह ने फिर भी बार-बार जिद की, तब वह केवल इतने भर के लिए राजी हुआ कि भगतसिंह उसे दूध या ताकत की दवा लेने के लिए नहीं कहेंगे, केवल दवा ही लेगा; दवा भी केवल डा० गोपीचन्द भार्गव ही देंगे, तब डा० गोपीचन्द भार्गव ने जतीन दास से कहा, "मैं रोज तुम्हें दवा देने आऊँगा। मैं मेजर चोपड़ा (सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल) से मिलकर इसकी व्यवस्था कर दूँगा।" किन्तु दूसरे दिन जतीन दास ने अपना विचार फिर बदल दिया, दवा लेने से भी इन्कार कर दिया। डा० गोपीचन्द भार्गव के कहने पर पानी में अण्डे की जर्दी तथा ग्लूकोज मिलाकर उन्हें धोखे से पिलाया गया।

21 अगस्त, 1929 को डा० गोपीचन्द भार्गव, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ एक बार जतीन दास से मिलने आये थे। टण्डनजी ने जतीन दास से पूछा—"अच्छा आप जीवित रहने की, मेरा भाव है, अपने जीवन को और अधिक जीने की कोशिश करें।"

दास ने कहा—"मैं जी रहा हूँ।"

टण्डन—"आप दवाई तथा खुराक आदि के बिना कैसे जी सकते हैं?"

दास—"अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा।"

डा० भार्गव—मैं नहीं सोचता कि आप ऐसा कर सकते हैं। मैं आपको अपने आदर्शों से अलग होने की बात नहीं करता। आप भूख हड़ताल मत छोड़ें, परन्तु जीवन को दूर तक ले जाने के लिए कुछ दवाई वगैरह अवश्य ले लेवें। लगभग पन्द्रह दिन तक अपने दुःखों का परिणाम जानने के लिए अवश्य जीवें, तब यदि आप देखें कि आपकी मांगें पूरी नहीं हुई तो आप दवाई लेना बन्द भले कर दें।

दास—मुझे सरकार पर कोई विश्वास नहीं है। मैं अब पीछे लौट नहीं सकता। मैं अपनी इच्छा-शक्ति से बिलकुल जिन्दा रह सकता हूँ।

30 अगस्त को भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह जतीन दास से मिलने आये। उन्होंने भी जतीन दास को मनाने की हर सम्भव कोशिश की, किन्तु उन्हें भी कोई सफलता नहीं मिली।

जतीन दास की हड़ताल के बावनवें दिन पण्डित मोतीलाल ने उनकी करुणाजनक हालत पर जो भाषण दिया था, उससे उनकी इस दशा का अच्छा चित्रण होता है—

"आज अनशन का बावनवाँ दिन है और यह अनशन एक सार्वजनिक उद्देश्य से किया गया है, उनके अपने लाभ के लिए नहीं। मैंने विद्यार्थी ने स्वयं अनशनकारियों के शरीर पर उन चोटों के निशान देखे हैं, जो उन्हें बलपूर्वक भोजन देने समय लगी हैं।"

पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी इन अनशन करनेवालों से मिलने गये थे। वहाँ जतीन दास से मुलाकात करने के बाद, उनके विषय में उन्होंने यह वक्तव्य दिया—

"जतीन दास की हालत बहुत नाजुक है, वह बहुत धीरे बोल सका

है। वह निश्चय ही धीरे-धीरे मौत की तरफ बढ़ रहा है। उन बहादु
की तकलीफों को देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। वे इतना चाहते हैं
राजनीतिक बन्दियों के साथ राजनीतिक बन्दियों की तरह व्यवहार कि
जाए। मुझे पूरा विश्वास है कि उनका आत्मबलिदान सफल होगा।"

अनशन के कारण लाहौर-काण्ड के इस मुकदमे को कई बार बी
में रोकना पड़ा। डाक्टरी रिपोर्ट के अनुसार 26 अगस्त को जतीन दा
केवल बुदबुदा भर सकता था। शरीर के अंग सुन्न पड़ गये थे। वह शरी
के निचले भाग को नहीं उठा सकता था। दशा अत्यन्त गम्भीर हो गई
थी। इस अनशन की सहानुभूति में सारे देश में सांकेतिक भूख हड़ताल रख
गयी। तब सरकार ने हार स्वीकार कर ली तथा 2 सितम्बर, 1929 को
पंजाब कारावास जाँच समिति नियुक्त की गयी। इस समिति के चा
सदस्य जेल में जाकर अनशनकारियों से मिले; उनसे अनशन समाप्त करने
की अपील की। अतः 2 सितम्बर, 1929 को जतीन दास के अतिरिक्त सभी
ने अनशन बन्द कर दिया। इस दिन भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को 81
दिन तथा अन्यों को 51 दिन अनशन करते हुए हो गये थे। जतीन दास की
हालत बड़ी ही दयनीय हो गयी, अतः अन्य साथियों ने सरकार के झुक
जाने पर भी इसे अपनी हार ही समझा। अपने एक साथी को अनशन करते
हुए मौत के मुँह में जाता देखकर भी स्वयं भोजन करना उन्हें उचित नहीं
लगा; उनकी आत्मा उन्हें कचोटने लगी; इसलिए भगतसिंह, बटुकेश्वर
दत्त तथा तीन अन्य साथियों ने केवल दो दिन बाद 4 सितम्बर, 1929 को
जतीन दास की बिना शर्त रिहाई तथा जिनपर अभी तक कोई आरोप
नहीं हुआ था, उन कैदियों को आपस में मिलने देने की माँग को लेकर
अनशन प्रारम्भ कर दिया।

[illegible]तीन दास की बिना शर्त रिहाई की माँग को सरकार ने अस्वीकार
[illegible]। जमानत पर रिहा करने को सरकार तैयार थी, तो इसे जतीन
[illegible] माना। डाक्टरी रिपोर्ट के अनुसार जतीन दास के जीवन के
[illegible] दिनों में उनकी हालत निम्नलिखित थी—

[illegible], 1929—नब्ज कमजोर, धीमी और कम।

[illegible], 1929—नब्ज तेज तथा रुक-रुककर चल रही है।

12 सितम्बर, 1929—एक बार कम हुई नब्ज रुक-रुककर चल रही और दवा लेने से इन्कार करता है।

जेल की समिति ने स्वास्थ्य को देखते हुए जतीन दास को रिहा कर देने की सिफारिश की थी, परन्तु सरकार के कानों पर जूं भी नहीं रेंगी। गृह विभाग ने अनुमान लगा लिया था कि वह सितम्बर के पहले सप्ताह में ही चल बसेगा। उसने बंगाल सरकार से दास के अन्तिम क्रियाकर्म के बारे में विचार जानने के लिए पत्र भी पहले ही लिख डाला था। बंगाल सरकार चाहती थी कि उसका शव उसके घरवालों को भी न दिया जाए और उसे बंगाल भी न भेजा जाए, उसकी अन्त्येष्टि लाहौर में ही कर दी जाए, पर भारत सरकार ने बंगाल सरकार की यह बात नहीं मानी और रेल द्वारा शव को बंगाल भेजने का निश्चय कर लिया, किन्तु रेलवे विभाग ने अपने नियमों का हवाला देकर ऐसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी।

अन्त में अपनी हठ के धनी, अनोखे देशभक्त तथा मातृभूमि के इस विरले सपूत को 13 सितम्बर, 1929 को मौत ने अपने क्रूर आगोश में ले लिया। उसकी इस शहादत की खबर पूरे देश में जंगल में आग की तरह फैल गयी। डा० किचलू, सरदार किशनसिंह तथा अन्य कांग्रेसी नेता जेल की तरफ दौड़ पड़े। चारों दिशाएँ 'जतिन दास जिन्दाबाद', 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'नौकरशाही का नाश हो', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारों से गूंज उठीं। उनके शव का 'पोस्ट मार्टम' भी नहीं किया गया। सिविल सर्जन ने जेल का रिकार्ड देखकर ही प्रमाण-पत्र दे दिया कि मृत्यु भूखा रहने के कारण हुई, अतः 'पोस्ट मार्टम' की जरूरत नहीं है। इससे अधिक कानून का मजाक और क्या हो सकता है।

सारा देश शोक में डूब गया; आंसुओं में भीग उठा; हर भारतीय का दिल दर्द से कराह उठा; भगतसिंह तथा उनके साथी एक असहनीय पीड़ा से कराह उठे। अंग्रेज सरकार के विरोध में देश के सभी भागों में एक तूफान उमड़ने लगा। ब्रिटिश साम्राज्य का सिंहासन डांवाडोल हो उठा। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जतीन दास के मृत शरीर को लाहौर से कलकत्ता ले जाने के लिए उनके भाई श्री के० सी० दास के लिए छ: सौ रुपये भेजे। तब श्री के० सी०

12 सितम्बर, 1929—एक बार कम हुई नब्ज रुक-रुककर चल रही है और दवा लेने से इन्कार करता है।

जेल की समिति ने स्वास्थ्य को देखते हुए जतीन दास को रिहा कर देने की सिफारिश की थी, परन्तु सरकार के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी। गृह विभाग ने अनुमान लगा लिया था कि वह सितम्बर के पहले सप्ताह में ही चल बसेगा। उसने बंगाल सरकार से दास के अन्तिम क्रियाकर्म के बारे में विचार जानने के लिए पत्र भी पहले ही लिख डाला था। बंगाल सरकार चाहती थी कि उसका शव उसके घरवालों को भी न दिया जाए और उसे बंगाल भी न भेजा जाए, उसकी अन्त्येष्टि लाहौर में ही कर दी जाए, पर भारत सरकार ने बंगाल सरकार की यह बात नहीं मानी और रेल द्वारा शव को बंगाल भेजने का निश्चय कर लिया, किन्तु रेलवे विभाग ने अपने नियमों का हवाला देकर ऐसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी।

अन्त में अपनी हठ के धनी, अनोखे देशभक्त तथा मातृभूमि के इस निराले सपूत को 13 सितम्बर, 1929 को मौत ने अपने क्रूर आगोश में ले लिया। उसकी इस शहादत की खबर पूरे देश में जंगल में आग की तरह फैल गयी। डा० किचलू, सरदार किशनसिंह तथा अन्य कांग्रेसी नेता जेल की तरफ दौड़ पड़े। चारों दिशाएँ 'जतिन दास जिन्दाबाद', 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'नौकरशाही का नाश हो', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारों से गूंज उठीं। उनके शव का 'पोस्ट मार्टम' भी नहीं किया गया। सिविल सर्जन ने जेल का रिकार्ड देखकर ही प्रमाण-पत्र दे दिया कि मृत्यु भूखा रहने के कारण हुई, अतः 'पोस्ट मार्टम' की जरूरत नहीं है। इससे अधिक कानून का मजाक और क्या हो सकता है।

सारा देश शोक में डूब गया; आँसुओं में भीग उठा; हर भारतीय का दिल दर्द से कराह उठा; भगतसिंह तथा उनके साथी एवं असहनीय पीड़ा से कराह उठे। अंग्रेज सरकार के विरोध में देश के सभी भागों में एक तूफान उमड़ने लगा। ब्रिटिश साम्राज्य का सिंहासन डावाँडोल हो उठा। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जतीन दास के मृत शरीर को लाहौर से कलकत्ता ले जाने के लिए उनके भाई के० सी० दास के लिए छः सौ रुपये भेजे। रु० थी के० सी०

दास को सौंप दिया गया। बोस्टल जेल से शाम 4 बजे शव जुलूस के रूप में ले जाया गया, जिसमें हजारों लोगो ने भाग लिया। इसके आगे-आगे डॉ० गोपीचन्द भार्गव, डॉ० किचलू, सरदार किशनसिंह, शार्दूल सिंह आदि प्रसिद्ध व्यक्ति चल रहे थे। लिटन रोड, अनारकली, लाहौर गेट, पापड़मण्डी, माछीहाता, रगमहल, डब्बी बाजार तथा पुरानी कोतवाली होता हुआ शाम साढ़े आठ बजे दिल्ली दरवाजे पहुँचा। यहाँ एक शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री मुहम्मद आलम ने की। इसमे स्वर्गीय आत्मा को श्रद्धाजली दी गयी। इसके बाद शव को नौलखा पुलिस स्टेशन, शहीद गज लाया गया। यहाँ से कफन आदि में रखकर फिर इसे लाहौर रेलवे स्टेशन ले गये। यहाँ पर दिवंगत आत्मा को लाखो की संख्या में लोगों ने अपनी श्रद्धाजलियाँ दी। इसके बाद 14 सितम्बर, 1929 को सुबह 6 बजे लाहौर एक्सप्रेस से शव को कलकत्ता के
` दिन 15 सितम्बर को शाम सात बजकर पचास मिनट
३। कलकत्ता रेलवे स्टेशन पर अपने इस प्रिय क्रान्ति-
नः के लिए लाखो लोग स्टेशन के बाहर और अन्दर
। श्मशान घाट तक शव यात्रा में छ. लाख लोगों ने

मालवीय ने भगतसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारियों के कार्यों की प्रशंसा की। इसी प्रस्ताव के समर्थन में विधानसभा के एक अन्य सदस्य श्री अमरनाथ दत्त ने कहा था—

'अंग्रेजों का नाश होगा। इस बात को उनके द्वारा बहाये गये खून से शब्दों में लिख लो।—निराशा एवं घृणा मिट जाएगे। उतने अधिक नष्ट होंगे जितना कि अत्याचार करेंगे।"

अपने भाषण के अन्त में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ पढ़ी थीं—

"बोझा तोर भारी होले
डूब तारी खान।"

अर्थात् तेरे पाप का बोझ अधिक भारी होने पर, तेरा जहाज डूब जायेगा।

केन्द्रीय असेम्बली में जनाब मुहम्मद अली जिन्ना ने भी जतीन दास को अपनी श्रद्धांजली दी। इस अवसर पर विधि सदस्य सर बी० एल० मित्तल को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था—

"यह कोई मजाक नहीं है। मैं माननीय विधि सदस्य को यह समझाना चाहता हूँ कि भूख हड़ताल में मरना हर किसी के बूते की बात नहीं है। आप आजमाकर देखिये, आपको मालूम हो जायेगा। भूख हड़ताली की भी आत्मा है। वह उसी आत्मा से प्रेरित होता है और अपने उद्देश्य के औचित्य में एतबार करता है। मुझे अफसोस है कि गलत या सही, आज का युवा उत्तेजित है तथा जहाँ आपके पास तीन करोड़ लोग हों, आप इस तरह रोक नहीं सकते—बिल्कुल नहीं रोक सकते। आप उन्हें कितना ही लताड़ें और कितना ही कहें कि उन्हें गलत रास्ते पर चलाया गया है। आपकी कार्यवाही नीतियों के खिलाफ है, और याद रहे जेलों के दाहर भी हजारों नौजवान हैं।"

जतीन दास की मृत्यु पर श्री एम० आर० जयकर ने इस मृत्यु का मर्मस्पर्शी वर्णन करते हुए कहा था—

"वह धीरे-धीरे मरा, तिल-तिलकर। एक हाथ को खुराक की कमी से लकवा मार गया था, दूसरा हाथ पोषण की कमी से बेकार हो गया था।

शव को सौंप दिया गया। बोर्स्टल जेल से शाम 4 बजे एक जुलूस के रूप में ले जाया गया, जिसमें हजारों लोगों ने भाग लिया। इसमें आगे-आगे डॉ० गोपीचन्द भार्गव, डॉ० किचलू, सरदार किशनसिंह, लाभसिंह आदि प्रसिद्ध व्यक्ति चल रहे थे। मिंटो रोड, अनारकली, लाहौर की पापड़मण्डी, माछीहट्टा, रंगमहल, डब्बी बाजार तथा पुरानी कोतवाली होता हुआ शव साढ़े आठ बजे दिल्ली दरवाजे पहुँचा। यहाँ एक शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री मुहम्मद आलम ने की। इसमें शहीद आत्मा को श्रद्धांजली दी गयी। इसके बाद शव को कोतवाली पुलिस स्टेशन, शहीद गंज लाया गया। यहाँ से कफन आदि में लपेटकर फिर इसे लाहौर रेलवे स्टेशन ले गये। यहाँ पर दिवंगत आत्मा को लाखों की संख्या में लोगों ने अपनी श्रद्धांजलियाँ दीं। इसके बाद 14 सितम्बर, 1929 को सुबह 6 बजे लाहौर एक्सप्रेस से शव को कलकत्ता के लिए ले गये। दूसरे दिन 15 सितम्बर को शाम सात बजकर पचास मिनट पर शव हावड़ा पहुँचा। कलकत्ता रेलवे स्टेशन पर अपने इस प्रिय क्रान्तिकारी के अन्तिम दर्शनों के लिए लाखों लोग स्टेशन के बाहर और अन्दर इन्तजार कर रहे थे। श्मशान घाट तक शव यात्रा में छः लाख लोगों ने भाग लिया था।

जतीन दास की इस शहादत पर समूचे देश में असन्तोष की लहर दौड़ गई। अंग्रेजों के इस काले कारनामे के विरोध में जगह-जगह सभाएँ की गयीं; लोगों ने जतीन दास को श्रद्धांजलियाँ दीं। दास की मृत्यु पर सबसे अधिक दुःख भगतसिंह को हुआ था, क्योंकि वही उसे कलकत्ता से पंजाब लाये थे। उन्होंने जतीन दास की मृत्यु पर एक कविता भी लिखी थी, जिसे वह अपने अन्य साथियों को सुनाया करते थे।

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कैदियों के प्रति दुर्व्यवहार तथा जतीन दास की शहादत पर ध्यान आकृष्ट करने के लिए 14 सितम्बर, 1929 को विधान सभा में एक स्थगन प्रस्ताव रखा, जिसमें बोलते हुए उन्होंने कहा था कि सरकार में मानवीय तत्त्वों का पूरी तरह अभाव था। दास की मृत्यु के अन्त तक सरकार का चुप बैठा रहना रोम के जलने पर नीरो की बंशी बजाने के समान था। इसी विषय पर बोलते हुए पण्डित मदनमोहन

मालवीय ने भगतसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारियों के कार्यों की प्रशंसा की। इसी प्रस्ताव के समर्थन में विधानसभा के एक अन्य सदस्य श्री अमरनाथ दत्त ने कहा था—

'अंग्रेजों का नाश होगा। इस बात को उनके द्वारा बहाये गये खून से पत्थरों में लिख लो।—निराशा एवं घृणा मिट जाएगी। उतने अधिक नष्ट होंगे जितना कि अत्याचार करेंगे।"

अपने भाषण के अन्त में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता की निम्न-लिखित पंक्तियाँ पढ़ी थीं—

"बोझा तोर भारी होले
डूब तारी खान।"

अर्थात् तेरे पाप का बोझ अधिक भारी होने पर, तेरा जहाज डूब जायेगा।

पास किया—

यह सभा शहीद जतीन्द्र दास के आदर्श आत्मबलिदान के लिए श्रद्धा-जलि अर्पित करती है और उसका उत्तरदायित्व सरकार पर डालती है।"

आयरलैण्ड मे इसी प्रकार श्री टैरेंस मैक्स्वीनेह भी मातृभूमि के लिए शहीद हो गये थे। जतीन दास की मृत्यु पर श्री मैक्स्वीनेह की पत्नी श्रीमती मैरी ने भी जतीन दास के परिवार को अपने सवेदना सदेश का तार भेजा था। जो इस प्रकार था—

"टैरेंस मैक्स्वीनेह का परिवार जतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु पर देशभक्त भारतवासियो के दु खो और गर्व मे साथ देता है। स्वतन्त्रता आयेगी।"

एक ओर तो जतीन दास की मृत्यु से सारा देश शोक के सागर मे डूबा हुआ था, दूसरी ओर पजाब के गवर्नर ने अपने जालिमपने की हद कर दी। दास की मृत्यु 13 सितम्बर, 1929 को दोपहर बाद 1 बजकर 15 मिनट पर हुई थी। उसी दिन पंजाब का गवर्नर शिमला से लौटा और शाम को एक गार्डन पार्टी दी। अधिकतर भारतीय सदस्यो ने उसके निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। भला इस तरह के घटिया व्यवहार को क्या कहा जा सकता है; 'जब रोम जल रहा था, तो नीरो बाँसुरी बजा रहा था।'

अब सारा देश चाहता था कि भूख हडताल जल्द से जल्द समाप्त हो जाए। जनता और नेता दोनो अपने-अपने ढग से इसे समाप्त कराने की कोशिश कर रहे थे। तभी सरकार द्वारा बनाई गई जेल सुधार समिति ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेज दी। भगतसिंह समझ गये थे कि इनमे से अधिकतर माँगें मान ली जाएँगी। अतः उन्होंने अपने साथियो से कहा—'बस इस बार इतना ही बहुत है। अब हमे देखना है कि सरकार इन सिफारिशो पर क्या करती है।' अत. वे अपनी हडताल समाप्त करने को राजी हो गये। जेल के अधिकारियो को इससे बडी राहत मिली। सबके लिए फलो का रस तैयार किया गया, किन्तु भगतसिंह फुलका एव दाल से अनशन तोडना चाहते थे। यद्यपि डाक्टर ने समझाया कि इतने दिनो तक पेट खाली रहने पर दाल तथा फुलका लेना ठीक नही था, फिर भी क्रान्तिकारी अपनी जिद पर अडे रहे। इसलिए जेल के अधिकारियो को मजबूरी के साथ उनकी बात माननी पडी। अन्त मे 15 अक्तूबर, 1929 को यह

पास किया—

यह सभा शहीद जतीन्द्र दास के आदर्श आत्मबलिदान के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करती है और उसका उत्तरदायित्व सरकार पर डालती है।'

आयरलैण्ड में इसी प्रकार श्री टैरेंस मैक्स्वीनेह भी मातृभूमि के लिए शहीद हो गये थे। जतीन दास की मृत्यु पर श्री मैक्स्वीनेह की पत्नी श्रीमती मैरी ने भी जतीन दास के परिवार को अपने संवेदना संदेश का तार भेजा था। जो इस प्रकार था—

"टैरेंस मैक्स्वीनेह का परिवार जतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु पर देशभक्त भारतवासियों के दुःखों और गर्व में साथ देता है। स्वतन्त्रता आयेगी।"

एक ओर तो जतीन दास की मृत्यु से सारा देश शोक के सागर में डूबा हुआ था, दूसरी ओर पंजाब के गवर्नर ने अपने जालिमपने की हद कर दी। दास की मृत्यु 13 सितम्बर, 1929 को दोपहर बाद 1 बजकर 15 मिनट पर हुई थी। उसी दिन पंजाब का गवर्नर शिमला से लौटा और शाम को एक डांस पार्टी दी। अधिकतर भारतीय सदस्यों ने उनके निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। भला इस तरह के घटिया व्यवहार को क्या कहा जा सकता है; 'जब रोम जल रहा था, तो नीरो बाँसुरी बजा रहा था।'

अब सारा देश चाहता था कि भूख हड़ताल जल्द से जल्द समाप्त हो जाए। जनता और नेता दोनों अपने-अपने ढंग से इसे समाप्त कराने की कोशिश कर रहे थे। तभी सरकार द्वारा बनाई गई जेल सुधार समिति ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास भेज दीं। भगतसिंह समझ गये थे कि इनमें से अधिकतर माँगें मान ली जाएँगी। अतः उन्होंने अपने साथियों से कहा—'बस इस बार इतना ही बहुत है। अब हमें देखना है कि सरकार इन सिफारिशों पर क्या करती है।' अतः वे अपनी हड़ताल समाप्त करने को राजी हो गये। जेल के अधिकारियों को इससे बड़ी राहत मिली। उनके लिए फलों का रस तैयार किया गया, किन्तु भगतसिंह [illegible] एक साथ [illegible] अनशन तोड़ना चाहते थे। यद्यपि डाक्टर ने समझाया कि इतने दिनों तक पेट खाली रहने पर दाल खाना उनके लिए ठीक नहीं था फिर भी क्रान्तिकारी अपनी जिद पर अड़े रहे। इसलिए जेल के अधिकारियों को मजबूरी के साथ उनकी बात माननी पड़ी। अन्त में 15 अक्टूबर, 1929 को उन

हड़ताल समाप्त हुई।

सरकार जांच समिति की सिफारिशों को लागू करने में टालमटोल करने लगी। अतः भगतसिंह ने सरकार के इस कार्य का प्रबल विरोध किया। और उन्होंने विशेष मजिस्ट्रेट के माध्यम से भारत सरकार के गृह-मन्त्री को एक तार भिजवाया। इसमें सरकार को चेतावनी दी गयी कि वह समिति की सिफारिशों से पीछे हट रही थी, अतः उसे अन्तिम निर्णय के लिए एक सप्ताह का समय दिया गया। भगतसिंह सच बात से पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे, इसलिए उन्होंने स्वयं भी एक प्रार्थनापत्र दिनांक 20 जनवरी, 1930 को अलग से गृहमन्त्री, भारत सरकार को भेजा—

'हमने भूख हड़ताल जेल समिति के यह विश्वास दिलाने पर समाप्त कर दी कि राजनीतिक कैदियों के साथ व्यवहार का प्रश्न हमारी सन्तुष्टि के अनुसार शीघ्र ही अन्तिम तौर पर निपटाया जा रहा है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के भूख हड़ताल से सम्बन्धित प्रस्तावों की प्रतियाँ जेल के अधिकारियों ने रोक ली हैं। कांग्रेस को कैदियों से मिलने की आज्ञा देने से इन्कार कर दिया गया है। षड्यन्त्र केस (अण्डर ट्रायल) से सम्बद्ध व्यक्तियों को उच्च पुलिस अधिकारियों की आज्ञा से 23-24 अक्तूबर को निर्दयता से पीटा गया।'

ह०—भगतसिंह, दत्त एवं अन्य

यह प्रार्थनापत्र सरकार के पास पहुँचा, पर सरकार समझी कि शायद यह बाहरी राजनीतिज्ञों के दबाव में आकर लिखा गया है। षड्यन्त्र केस के बन्दियों के साथ मारपीट के विषय में भी सरकार ने पुलिस को निर्दोष माना। सरकार का मत था कि इन लोगों को केवल जबर्दस्ती अदालत में लाया गया था, किसी के साथ कोई मारपीट नहीं की गयी। भगतसिंह और उनके साथी सरकार की इन लचर दलीलों से बिल्कुल असन्तुष्ट थे। अतः उन्हें साथियों सहित फरवरी, 1930 में दो सप्ताह के लिए फिर भूख हड़ताल करनी पड़ी। इसलिए अन्त में सरकार को नाक रगड़कर समिति की मुख्य-मुख्य सिफारिशों के लिए कानून बनाना पड़ा। इस प्रकार यतीन दास के बलिदान एवं यातनाओं के सहने के बाद ये सुविधाएँ मिल सकीं।

सप्तम अध्याय

लाहौर षड्यन्त्र केस

पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि साण्डर्स हत्याकाण्ड के मामले की सुनवाई 10 जुलाई से लाहौर के मजिस्ट्रेट श्रीकृष्ण की अदालत में शुरू हुई थी और अदालत जेल में ही लगी थी। तब भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त भूख हड़ताल पर थे। कुल 24 व्यक्ति इस मामले से सम्बन्धित थे, जिनमें चन्द्रशेखर आजाद, भगवान दास, कैलाशपति, भगवती-चरण वोहरा, यशपाल और सतगुरु दयाल—ये 6 व्यक्ति हाथ न आने के कारण फरार घोषित किये गये थे। अजय घोष, यतीन्द्रनाथ सान्याल तथा देवराज—इन तीनों को विभिन्न धाराओं के आधार पर छोड़ दिया गया था। शेष पन्द्रह व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया। इनके अलावा सात अन्य व्यक्ति सरकारी गवाह बने थे, जिनके नाम रामसरन दास, ब्रह्मदत्त, जयगोपाल, फणीन्द्रनाथ घोष, मनमोहन बनर्जी, हंसराज वोहरा तथा ललितकुमार मुखर्जी हैं। इनमें से रामसरन दास और ब्रह्मदत्त को विश्वास करने योग्य नहीं समझा गया; अन्य पाँच गवाहियों को ही मुकदमे में बुलाया गया।

सभी युवकों को विश्वास था कि मुकदमे में होगा वही है जो अंग्रेज सरकार चाहेगी; चाहे न्याय का नाटक कितना ही क्यों न किया जाए, इसलिए उन्होंने इस केस में दिलचस्पी लेना ही छोड़ दिया। भगतसिंह और उनके साथियों ने अदालत की कार्यवाहियों को रोकने के लिए एक दूसरा ही रास्ता निकाल लिया; वे अदालत पहुँचते ही चारों ओर देखने लगते और फिर नारा लगाते—'इन्कलाब जिन्दाबाद', इसके बाद 'वन्दे मातरम्' गाने लगते तथा फिर ये दीवाने झूम-झूमकर गाने लगते—

हड़ताल समाप्त हुई।

सरकार जाँच समिति की सिफारिशों को लागू करने में टालमटोल करने लगी। अतः भगतसिंह ने सरकार के इस कार्य का प्रबल विरोध किया। और उन्होंने विशेष मजिस्ट्रेट के माध्यम से भारत सरकार के गृह-मन्त्री को एक तार भिजवाया। इसमें सरकार को चेतावनी दी गयी कि वह समिति की सिफारिशों से पीछे हट रही थी, अतः उसे अन्तिम निर्णय के लिए एक सप्ताह का समय दिया गया। भगतसिंह सच बात से पीछे हटनेवाले व्यक्ति नहीं थे, इसलिए उन्होंने स्वयं भी एक प्रार्थनापत्र दिनांक 20 जनवरी, 1930 को अलग से गृहमन्त्री, भारत सरकार को भेजा—

'हमने भूख हड़ताल जेल समिति के यह विश्वास दिलाने पर समाप्त कर दी कि राजनीतिक कैदियों के साथ व्यवहार का प्रश्न हमारी सन्तुष्टि के अनुसार शीघ्र ही अन्तिम तौर पर निपटाया जा रहा है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के भूख हड़ताल से सम्बन्धित प्रस्तावों की प्रतियाँ जेल के अधिकारियों ने रोक ली हैं। कांग्रेस को कैदियों से मिलने की आज्ञा देने से इन्कार कर दिया गया है। षड्यन्त्र केस (अण्डर ट्रायल) से सम्बद्ध व्यक्तियों को उच्च पुलिस अधिकारियों की आज्ञा से 23-24 अक्तूबर को निर्दयता से पीटा गया।'

ह०—भगतसिंह, दत्त एवं अन्य

यह प्रार्थनापत्र सरकार के पास पहुँचा, पर सरकार समझी कि सारा यह बाहरी राजनीतिज्ञों के दबाव में आकर लिखा गया है। षड्यन्त्र के बन्दियों के साथ मारपीट के विषय में भी सरकार ने पुलिस को नि[illegible]
माना। सरकार का मत [illegible] जबर्दस्ती अदा[illegible]
लाया गया था, [illegible] भगतसि[illegible]
उनके
उन्हें

में रँग जाती।

1 मई, 1930 में आर्डीनेन्स 3 सन् 1930 लागू किया गया। इसके अधीन विशेष प्रकार से न्यायाधिकरण का गठन किया गया। अतः यह लाहौर केस भी इसी आर्डीनेन्स के अधीन चला। इसमें न्यायमूर्ति जे० कोल्डस्ट्रीम अध्यक्ष थे तथा आगा हैदर एवं जी० सी० हिल्टन इसके अन्य दो सदस्य थे। वस्तुतः इस प्रकार ट्रिब्यूनल को मामले प्रथम महायुद्ध के दौरान सौंपे गये थे। यहाँ इन तीनों जजों की नियुक्ति लाहौर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गयी थी। इस ट्रिब्यूनल को विशेष उद्देश्य से बनाया गया था। सरकार को भय था कि ये क्रान्तिकारी जान-बूझकर अदालत को गुमराह करने की कोशिश करते थे, अतः इस ट्रिब्यूनल को विशेष प्रकार के अधिकार दिये गए थे, ताकि यह इस प्रकार के मामलों को निपटाने का काम कर सकें। इसके अन्तर्गत 5 मई, 1930 को 'पुंछ हाउस, लाहौर में मामले की सुनवाई शुरू हुई थी। भगतसिंह के मत में इस प्रकार के न्यायाधिकरण का मामला गैर-कानूनी था, उन्होंने इसे गैर-कानूनी सिद्ध करने के लिए पन्द्रह दिन का समय माँगा, परन्तु उनकी इस माँग को स्वीकार नहीं किया गया। सरकारी वकील कार्डन नोड ने बहस शुरू की और इन पर निम्नलिखित अभियोग लगाये—

1. षड्यन्त्र और हत्या।
2. टर्नी तथा बमों का निर्माण।
3. बमों के प्रयोग तथा अन्य तरीकों से ब्रिटेन के सम्राट् के विरुद्ध युद्ध।

भगतसिंह ने वकील रखने से इन्कार कर दिया, किन्तु कार्यवाही की निगरानी तथा अदालत में बहस के दौरान सलाह लेने के लिए लाला दुनीचन्द को अपना कानूनी सलाहकार बनाना स्वीकार कर लिया। 12 मई, 1930 को भगतसिंह को उनके अन्य क्रान्तिकारी मित्रों के साथ हथकड़ियाँ लगाकर अदालत में लाया गया। उन्होंने इसका डटकर विरोध किया तथा पुलिस की ओर से तब तक उतरने से इन्कार कर दिया जब तक उनकी हथकड़ियाँ न उतार ली जाएँ। न्यायाधिकरण के अध्यक्ष जे० कोल्डस्ट्रीम ने पुलिस को आदेश दिया कि उन्हें जबर्दस्ती जीप से उतारा जाए। ऐसा

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां,
हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।
ऐ शहीदे मुल्को मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार,
अब मेरी किस्मत की चर्चा गैर की महफिल में है।
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।

'इन्कलाब जिन्दाबाद !' क्रान्तिकारियों के इस व्यवहार पर मजिस्ट्रेट श्रीकृष्ण वर्मा कुढ़कर रह जाता। उन दिनों यह अदालत लाहौर की सबसे मुख्य जगह बन गई थी। अदालत का मुख्य गेट सड़क पर था। स्कूलों और कालेजों के छात्र मौका मिलते ही वहाँ आकर जमा हो जाते। अदालत के बाहर लोगों का बहुत बड़ा समूह इकट्ठा हो जाता। भगतसिंह की आवाज़ बड़ी बुलन्द रहती थी। ऐसा वह इसलिए भी करते थे, ताकि बाहर खड़ी भीड़ भी इसे सुन सके। इन वीरों के राष्ट्रगीत या अन्य कोई भी क्रान्तिकारी गीत को सुनकर बाहर खड़ी भीड़ भी इसे दुहराने लगती। उन दिनों कवि ओमप्रकाश शर्मा का निम्नलिखित गीत अत्यधिक लोकप्रिय था। घर-घर में लोग इसे गाते थे—

कभी वो दिन भी आयेगा कि आज़ाद हम होंगे,
ये अपनी ही जमीं होगी यह अपना आसमां होगा।
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशां होगा।

न्यायाधीश के अदालत के कमरे में आते ही राष्ट्रीय एवं क्रान्तिकारी गीतों की स्वरलहरियाँ गूँजने लगतीं। एक अजीब-सी खामोशी छा जाती। अन्य सभी लोग चुप हो जाते। जज सिर झुकाए कुर्सी पर चुपचाप बैठा रहता, वकील एकदम से खामोश हो जाते, अदालत के चपरासी या अन्य दूसरे कर्मचारी अपने-अपने स्थानों पर सिर झुकाकर बैठ जाते या खड़े रहते। क्रान्तिकारियों के जो रिश्तेदार अदालत में आये रहते, उनके चेहरे एक अनोखे अन्दाज में गम्भीर हो जाते। भगतसिंह और उनके साथी इस अदालत की कोठरी में हावी-जैसे हो जाते; सारी कोठरी देशभक्ति के रंग

मे रँग जाती।

1 मई, 1930 से आर्डीनेन्स 3 सन् 1930 लागू किया गया। इसके अधीन विशेष प्रकार से न्यायाधिकरण का गठन किया गया। अतः यह लाहौर केस भी इसी आर्डीनेन्स के अधीन चला। इसमें न्यायमूर्ति जे० कोल्डस्ट्रीम अध्यक्ष थे तथा आगा हैदर एवं जी० सी० हिल्टन इसके अन्य दो सदस्य थे। वस्तुतः इस प्रकार ट्रिब्यूनल को मामले प्रथम महायुद्ध के दौरान सौंपे गये थे। यहाँ इन तीनों जजों की नियुक्ति लाहौर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गयी थी। इस ट्रिब्यूनल को विशेष उद्देश्य से बनाया गया था। सरकार को भय था कि ये क्रान्तिकारी जान-बूझकर अदालत को गुमराह करने की कोशिश करते थे, अतः इस ट्रिब्यूनल को विशेष प्रकार के अधिकार दिये गए थे, ताकि यह इस प्रकार के मामलों को निपटाने का काम कर सकें। इसके अन्तर्गत 5 मई, 1930 को पुंछ हाउस, लाहौर मे मामले की सुनवाई शुरू हुई थी। भगतसिंह के मत मे इस प्रकार के न्यायाधिकरण का मामला गैर-कानूनी था, उन्होंने इसे गैर-कानूनी सिद्ध करने के लिए पन्द्रह दिन का समय माँगा, परन्तु उनकी इस माँग को स्वीकार नहीं किया गया। सरकारी वकील कार्डेन नोड ने बहस शुरू की और इन पर निम्नलिखित अभियोग लगाये—

1. षड्यन्त्र और हत्या।
2. डकैती तथा बमों का निर्माण।
3. बमों के प्रयोग तथा अन्य तरीकों से ब्रिटेन के सम्राट् के विरुद्ध युद्ध।

भगतसिंह ने वकील रखने से इन्कार कर दिया, किन्तु कार्यवाही की निगरानी तथा अदालत मे बहस के दौरान सलाह लेने के लिए लाला दुनीचन्द को अपना कानूनी सलाहकार बनाना स्वीकार कर लिया। 12 मई, 1930 को भगतसिंह को उनके अन्य क्रान्तिकारी मित्रों के साथ हथकड़ियाँ लगाकर अदालत मे लाया गया। उन्होंने इसका जमकर विरोध किया तथा पुलिस की ओर से तब तक उतरने से इन्कार कर दिया जब तक उनकी हथकड़ियाँ न उतार ली जाएँ। न्यायाधिकरण के अध्यक्ष जे० कोल्डस्ट्रीम ने पुलिस को आदेश दिया कि उन्हें जबर्दस्ती और से उतारा जाए। ऐसा

7. फील्ड फैक्ट्रीज एण्ड वर्कशाप।
8. सिविल वार इन फ्रांस।
9. लैण्ड रिवोल्यूशन इन रशिया।
10. थ्योरी ऑफ हिस्टोरीकल मिलिटैरिज्म।
11. प्रीजेण्ट इन प्रोस्पैरिटी एण्ड डैब्ट।

इन पुस्तकों के अध्ययन से परिचय मिलता है कि भगतसिंह कार्ल-मार्क्स तथा रूसी क्रान्ति से बहुत अधिक प्रभावित थे। अध्ययन से उनके प्रेम का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि फांसी पर चढ़ने से कुछ ही मिनट पहले तक वह किताबें पढ़ने में डूबे हुए थे। उनसे पूछा था कि "क्या तुम सचमुच इन किताबों को पढ़ते हो? मेरे लिए तो इन्हें ढूंढना भी मुश्किल काम हो जाता है।" इस पर भगतसिंह ने कहा था, "मैं इन्हें पढ़ता हूँ। आप कोई भी किताब ले लें और उसमें कहीं से भी कोई प्रश्न पूछ लें। मैं आपको बताऊँगा कि कहाँ क्या लिखा है।"

भगतसिंह को मुक्त कराने के लिए आजाद का प्रयत्न :

तब जिन दिनों भगतसिंह पर मुकदमा चल रहा था, हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र संघ की बैठक हुई, जिसमें क्रान्तिकारियों ने अपने कार्यों को और अधिक तेज करने तथा भगतसिंह को जेल से छुड़ाने का निश्चय किया। दिसम्बर, 1930 में दिल्ली रेलवे स्टेशन पर वाइसराय को ले जानेवाली विशेष रेलगाड़ी को उड़ा देने की कोशिश की गयी। रेल के आरम्भ के दो डिब्बों (बोगी नम्बर 8 और 9) को नुकसान पहुँचा, परन्तु वाइसराय घायल होने से बच गया। इसके बाद फैसला किया गया कि जब भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त पुलिस की गाड़ी में बैठने के लिए जेल से बाहर निकलें, तो उन्हें छुड़ाने के लिए धावा बोल दिया जाए। यह योजना जून 1930 में बनी थी। इस योजना का पहले अभ्यास करने के लिए क्रान्तिकारी 28 मई को रावी के तट पर पहुँचे। वहाँ बम का परीक्षण किया, किन्तु यह परीक्षण दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ; क्योंकि बम यकायक भगवतीचरण बोहरा के एकदम पास ही फट गया, जिससे उनकी उसी समय मृत्यु हो गयी। अपने इस साथी की मृत्यु से भी चन्द्रशेखर आजाद ने हिम्मत

नहीं हारी, वह भगतसिंह को मुक्त कराने का निश्चय कर चुके थे। योजना के अनुसार वह जून, 1930 को लाहौर पहुँचे और इसी महीने की 23 तारीख को सेण्ट्रल जेल के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर मौके का इन्तजार करने लगे। पहले पुलिस की जीप जेल के फाटक से कुछ दूर सड़क पर खड़ी होती थी; वहीं पर आकर अभियुक्तों को उसमें बैठना होता था, परन्तु उस दिन पुलिस की गाड़ी को फाटक के एकदम पास खड़ा किया गया। इसलिए यह सारी योजना धरी की धरी रह गयी।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि सरकार की आँखों में धूल झोंकते हुए चन्द्रशेखर आजाद पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिलते रहते थे। इससे पूर्व साण्डर्स की हत्या करने के बाद जब भगतसिंह लाहौर से भाग गये थे, तो वह भी पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिलते रहते थे। शायद उन्होंने कई बार भगतसिंह की आर्थिक सहायता भी की थी।

इस मुकदमे को भगतसिंह देश की आजादी के लिए अपने विचारों को फैलाने का साधन मानते थे; इससे अधिक कुछ नहीं और न उन्हें अंग्रेजों से न्याय मिलने की कोई आशा ही थी। इसीलिए इसमें उन्होंने कोई सफाई पेश नहीं की। अदालत की कार्यवाही लगभग तीन महीने तक चलती रही, 26 अगस्त, 1930 को अदालत का कार्य लगभग पूरा हो गया था। केवल कागजी कार्यवाही ही आगे को चली। इसके दूसरे दिन अभियुक्तों के पास सूचना भेजी गयी कि वे अपने बचाव के लिए जो कुछ भी कहना चाहें, कह सकते है, चाहें तो वकील भी रख सकते है या अपने गवाह भी पेश कर सकते हैं, परन्तु सभी अभियुक्तों ने इसे ठुकरा दिया, क्योंकि वे समझ गये थे कि यह सब करना या न करना बराबर ही है; शायद अब ट्रिब्यूनल अपना फैसला देने की तैयारी ही कर रहा था। भगतसिंह ने अपने भाई कुलबीर को 16 सितम्बर को एक पत्र लिखा—

ब्रादर अजीज कुलबीरजी सत श्री अकाल,

आपको मालूम ही होगा बमूजिब अहकाम अफसराना वाली मेरी मुलाकातें कम कर दी गयी हैं। अन्दरूनी हालात फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा खयाल है कि अनकरीब ही फैसला कर दिया जाएगा। इसके चन्द रोज बाद किसी दूसरी जेल को चालान हो जाएगा। इसलिए

किसी दिन जेल में आकर मेरी कुतुब व अखबारात व दीगर अशिया ले जाना। मैं बर्तन, कपड़े, कुतुब दीगर सामान जेल के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में भेज दूंगा, आकर ले जाना। न मालूम मुझे बार-बार यह ख्याल क्यों आ रहा है कि इसी हफ्ते के अन्दर या ज्यादा से ज्यादा इसी माह के अन्दर फैसला और चालान हो जाएगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहाँ तो उम्मीद नहीं है।

वकील को भेज सको, तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूँ। वालिदा साहिबा को तसल्ली देना, घबराएँ नहीं।

आपका भाई
भगतसिंह

भगतसिंह तथा उनके साथी जेल में फाँसी दिये जानेवाले कैदियों की कोठरियों में रखे गये थे। उन्हें साधारण कैदियों को मिलनेवाली सुविधाएँ देने से भी मना कर दिया गया। पण्डित मोतीलाल नेहरू को भगतसिंह से अपार स्नेह था। इस समय वह स्वयं सख्त बीमार थे, फिर भी उन्होंने अपना एक आदमी जेल में मिलने के लिए भगतसिंह के पास भेजा था। उसके द्वारा उन्होंने भगतसिंह को कहलवाया था कि वे रास्ते में रोड़ा न अटकाएँ। वह कुछ समय चाह रहे थे। वह समझ रहे थे कि जो बातें समझौते के लिए चल रही हैं, शायद उनमें भगतसिंह की जिन्दगी बच जाए, परन्तु भगतसिंह इस मामले को दूसरे ही ढंग से देखते थे। वे समझते थे कि उन्हें फाँसी की सजा मिलना ही देश के हित में होगा। इससे देश के लोगों को एक सबक मिलेगा, जिससे लोग आजादी के लिए और भी अधिक प्रयत्न करेंगे। सरकार एक ओर तो कांग्रेसियों के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ा रही थी और दूसरी ओर क्रान्तिकारियों को कुचल देने पर कमर कसकर तैयार थी। अतः फाँसी मिलना लगभग तय ही था। भगतसिंह को कई लोगों ने अनेक प्रकार से समझाया कि अपील अवश्य की जाए। हो सकता था इससे सजा कुछ कम हो जाए या फाँसी ही कुछ दिनों के लिए टल जाए, इससे उन्हें अपने विचारों का प्रचार करने का कुछ समय मिल जाता। बड़ी जिद्दोजहद पर, कई मिन्नतें करने पर बड़ी मुश्किल से वह अपील पर

इन्कार करने को राजी हुए। अपील में मुकदमा खारिज करने की प्रार्थना की गयी। इसके लिए तर्क दिया गया कि यह मुकदमा आर्डिनेन्स के अधीन चलाया गया था, अत: इसे अधिकार से बाहर माना जाए, सारा देश उनकी जान बचाने के लिए पुकार रहा था। भगतसिंह तथा उनके साथियों ने अदालत का बहिष्कार कर रखा था, अत: उनकी अनुपस्थिति में ही अदालत की सब कार्यवाही चली थी।

20 सितम्बर, 1930 को ही स्पष्ट हो गया था कि भगतसिंह को फाँसी की सजा ही मिलेगी। तब उन्होंने छोटे भाई कुलबीरसिंह को एक पत्र 25 सितम्बर, 1930 को लिखा था—

ब्रादर अजीज कुलबीरसिंह जी ! सत श्री अकाल।

मुझे यह मालूम करके कि आप वालदा को साथ लेकर आये और मुलाकात की इजाजत न मिलने पर मायूस लौट गए, बड़ा अफसोस हुआ। आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेल वाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते, फिर वालदा को क्यों साथ लाये ? मैं जानता हूँ वो इस वक्त सख्त घबराई हुई हैं। मगर घबराहट और परेशानी का क्या फायदा ? नुकसान जरूरी है, क्योंकि जबसे मालूम हुआ कि वे बहुत रो रही हैं, मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं और इससे कुछ हासिल भी नहीं। सब होसले से हालात का मुकाबला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फँसे हुए हैं और फिर अगर लगातार एक साल मुलाकातों पर तबीयत सैर नहीं हुई, तो दो-चार मजीद और मुलाकातों से तसल्ली न हो सकेगी। मेरा ख्याल है कि फैसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जाएँगी, लेकिन अगर फर्ज किया फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले, तो घबराने से क्या फायदा ?

आपका
भगतसिंह

फाँसी की सजा मिलना निश्चित हो जाने पर उनके पिता सरदार किशनसिंह ने उन्हें बचाने के लिए मामले की सुनवाई कर रहे न्यायाधिकरण को एक प्रार्थनापत्र दिया था। इस पत्र द्वारा वह सिद्ध करना चाहते थे कि घटना के दिन भगतसिंह लाहौर में न होकर कलकत्ते में थे। इसकी कुछ

जानते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में आपके और मेरे विचारों के बीच हमेशा ही मतभेद रहे हैं। मैं हमेशा ही स्वतन्त्रता के साथ आपकी स्वीकृति-अस्वीकृति की चिन्ता किए बिना कार्य करता रहा हूँ।

मुझे विश्वास है कि आपको यह बात याद होगी कि आप आरम्भ से ही मुझे यह बात मनवा लेने की कोशिश करते रहे हैं कि मैं अपना मुकदमा संजीदगी से लड़ूँ तथा अपना बचाव ठीक ढंग से प्रस्तुत करूँ। यह बात भी आपकी जानकारी में है कि मैं हमेशा ही इसका विरोध करता रहा हूँ। मैंने कभी भी अपने-आपको बचाने की आशा नहीं की और न ही कभी मैंने इस विषय में गम्भीरता से सोचा। भले ही यह एक निश्चित धारणा थी कि मेरे पास अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए ठोस प्रश्न थे—यह एक अलग प्रश्न है तथा यहाँ तक प्रसंग को नहीं उठाया जा सकता।

आप जानते हैं कि हम इस मुकदमे में एक विशेष नीति पर चल रहे हैं। मेरा प्रत्येक कदम उस नीति, मेरे नियमों तथा कार्यक्रमों के अनुकूल होना चाहिए था। इस समय स्थिति नितान्त भिन्न है। यदि यह इसके विपरीत भी होते, तब भी मैं अन्तिम व्यक्ति होता, जो कि सफाई पेश करता। इस मुकदमे के दौरान मेरे सामने मात्र एक विचार था और वह था—मेरे विरुद्ध अपराधों की गम्भीर प्रकृति के मुकदमे के प्रति उपेक्षा भाव दिखाना। मेरा हमेशा ही यही दृष्टिकोण रहा है कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं को निर्लिप्त रहना चाहिए तथा कभी भी कानूनी अदालतों में कानूनी लड़ाई सम्बन्धी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे स्वयं अपना बचाव पेश कर सकते हैं, पर सदैव शुद्ध राजनीतिक धरातल पर; न कि व्यक्तिगत दृष्टिकोण से। इस मुकदमे में हमारी नीति हमेशा इस सिद्धान्त के अनुकूल रही है। भले ही हम इसमें सफल रहें या न रहें, यह निर्णय मैं नहीं दे सकता। हम अपना धर्म पूरी तरह निःस्वार्थ भावना से निभाते चले आ रहे हैं।

'लाहौर षड्यन्त्र केस अधिनियम' के सहायक वक्तव्य में वाइसराय ने यह कहा था कि अपराधी इस मुकदमे में कानून तथा न्याय—दोनों का अपमान कर रहे हैं इस स्थिति ने हमें यह अवसर प्रदान किया है कि जनता को दिखा सकें कि हम कानून का अपमान कर रहे हैं। इस पहलू पर लोग

हमारे साथ असहमत हो सकते हैं। आप उनमें से एक हो सकते है, पर इसका कभी यह अर्थ नहीं हुआ कि आप मेरी इच्छा या मेरी जानकारी के बिना मेरी ओर से इस प्रकार का कदम उठाएँ। मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं, जितना आप समझते हैं। कम से कम मेरे लिए जीवन का इतना महत्त्व नहीं है कि इसे सिद्धान्तों की अमूल्य निधि का बलिदान करके बचाया जाए। मेरे और भी साथी हैं, जिनका मुकदमा मेरे मुकदमे के समान ही गम्भीर है। हम एक संयुक्त नीति अपनाये खड़े रहेंगे। भले ही हमें निजी तौर पर इसका कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

पिताजी ! मैं बड़ी उलझन में हूँ। मुझे डर है कि आप पर दोष लगाते हुए या इससे भी अधिक आपके इस कार्य की निन्दा करते हुए कहीं मैं सभ्यता की परिधि को न लाँघ जाऊँ और मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जाएँ। फिर भी मैं स्पष्ट शब्दों में इतनी बात अवश्य कहूँगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति इस प्रकार का व्यवहार करता, तो मैं उसे देशद्रोही से कम न समझता, किन्तु आपकी परिस्थिति में मैं यह बात नहीं कह सकता। मुझे और स्पष्टवादी होने दो। मैं अनुभव करता हूँ कि मेरी पीठ में छुरा घोंपा गया है। आपके प्रसंग में इसे मैं एक कमजोरी कहूँगा—निम्न कोटि की दुर्बलता।

यह एक ऐसा समय था, जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी। पिताजी मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप इस परीक्षा में असफल रहे हैं। मैं जानता हूँ कि आप उतने ही सच्चे देशभक्त रहे हैं, जितना कोई भी व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आपने अपना समस्त जीवन भारत की स्वतन्त्रता के लिए न्योछावर कर दिया है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में आपने ऐसी दुर्बलता क्यों दिखायी, मैं यह बात समझ नहीं पाता।

अन्तत: मैं आपको, अपने मित्रों तथा उन सबको जो मेरे मुकदमे में रुचि रखते थे, सूचित करना चाहता हूँ कि मैं आप द्वारा उठाये गए पग स्वीकार नहीं कर सकता। मैं अब भी अपनी सफाई पेश करने के पक्ष में नहीं हूँ, भले ही अदालत मेरे साथी अभियुक्तों द्वारा दिये गए किसी भी प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर लेती है, तब भी मैं अपना बचाव पेश नहीं करूँगा। भूख हड़ताल में मेरे भेंट सम्बन्धी ट्रिब्यूनल के भेजे गए मेरे प्रार्थना-पत्रों को गलत समझा गया है...।

ये क्रान्तिकारी यह मालूम होने पर भी कि इस मुकदमे का क्या फैसला होगा, *बिल्कुल निश्चिन्त और अल्हड़पने का जीवन* जीते थे। एक बार सितम्बर, 1930 में रात्रि में कैदियों को एक विशेष डिनर दिया गया। यह इस प्रकार का इनके जीवन का अन्तिम डिनर था। इसमें अभियुक्तों के साथ जेल के कुछ अधिकारी भी शामिल हुए थे। इन वीरों के चेहरों पर चिन्ता की एक रेखा भी नहीं दिखाई देती थी। ये कहकहे लगाकर हँस रहे थे; एक दूसरे से छेड़खानी, शरारतें कर रहे थे, चुटकुले सुना रहे थे तथा जेल के अधिकारियों के साथ इनका व्यवहार एकदम सभ्य, शान्त एवं परिवार के सदस्यों के जैसा था। इनके इस व्यवहार से जेल अधिकारी बड़े प्रभावित हुए थे।

इस मुकदमे में भगतसिंह पर जो आरोप लगे थे, उनमें तीन तरह के गवाह थे—

1. मौके के गवाह, जिन्होंने उन्हें साण्डर्स की हत्या करते तथा हत्या करके भागते समय देखा था और पहचाना था।

2. इकबाली गवाह—जयगोपाल तथा हंसराज वोहरा, जो स्वयं हत्या करने में उनके मददगार रह चुके थे।

3. भगतसिंह द्वारा लिखे गए पर्चे, जो 'राइटिंग एक्सपर्ट' द्वारा पहचाने गए।

जयगोपाल स्वयं साण्डर्स वध में शामिल था, किन्तु अब वह सरकारी गवाह बन गया था। एक दिन जब वह गवाहों के कटघरे में खड़ा था और अपने साथियों के ही विरुद्ध गवाही दे रहा था; यही नहीं वह अपने इन साथियों की ओर देखकर अपनी मूँछों में ताव भी दे रहा था। उसकी इस हरकत से क्रान्तिकारियों का खून खौल गया। प्रेमदत्त सबसे कम उम्र का क्रान्तिकारी था, उससे न रहा गया, उसने अपना जूता उतारा और जोर से जयगोपाल पर दे मारा। अदालत में खलबली मच गयी। मजिस्ट्रेट ने क्रान्तिकारियों को हथकड़ी पहनाने की आज्ञा दी, क्रान्तिकारी कहाँ मानने वाले थे; अदालत में भूचाल-सा आ गया, फलतः [illegible] देखे देनी पड़ीं।

फैसला :

अन्ततः ब्रिटिश अदालत के नाटक का अन्त हुआ। इस प्रकार अदालत ने भगतसिंह को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 129, 302 तथा विस्फोटक पदार्थ नियम की धारा 4 तथा 6 एफ तथा भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120 के अन्तर्गत अपराधी सिद्ध किया तथा 7 अक्तूबर, 1930 को उनके लिए यह दण्ड सुनाया गया—

"षड्यन्त्र के प्रमुख सदस्यों की हैसियत से तथा जान-बूझकर एवं बुज-दिली से किये गए कत्ल को ध्यान में रखते हुए, जिसमें उसने भाग लिया था, उसे फाँसी की सजा दी जाती है।"

याद रहे कि इस केस के सभी वीरों ने अदालतों का बहिष्कार कर रखा था। अतः अदालत में यह फैसला उनकी अनुपस्थिति में सुनाया गया। और इस अदालत का एक सन्देशवाहक जेल में पहुँचा। उसी ने उन्हें यह फैसला सुनाया। फैसले के एक दिन पहले से ही जेल के चारों ओर हथियार-बन्द पुलिस तैयार कर दी गयी थी। हर बात की बड़ी सावधानी रखी जा रही थी। इस मुकदमे में भगतसिंह सहित पन्द्रह अभियुक्तों पर मुकदमा चल रहा था, जिन्हें निम्नलिखित सजाएँ मिली थीं—

भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को फाँसी की सजा दी गयी। शिव वर्मा, किशोरीलाल, गयाप्रसाद, जयदेव कपूर, विजयकुमार सिन्हा, महावीर सिंह तथा कमलनाथ तिवारी—इन सातों को आजन्म कालेपानी की सजा मिली। कुन्दनलाल को सात वर्ष तथा प्रेमदत्त को पाँच वर्ष के कारावास की सजा हुई। अजय घोष, जितेन्द्रलाल सिन्हा तथा देशराज पर कोई आरोप सिद्ध नहीं हुआ, अतः इन्हें बरी कर दिया गया।

इस बात की पूरी सावधानी रखी गयी कि इस फैसले का पता जनता को न चले, लेकिन ऐसा कैसे हो सकता था। यह खबर हवा की तरह जल्द ही सारे देश में फैल गई। अदालत द्वारा अपने इस 68 पृष्ठीय फैसले को दिये जाने के बाद सरकार ने किसी भी प्रकार की सभाओं अथवा जुलूसों पर रोक लगाने के लिए लाहौर में धारा 144 लगा दी। इसके बावजूद भी न तो इस बात की कोई घोषणा की गयी और न पोस्टर लगाये गए, म्युनिसिपैलिटी के मैदान में भारी लोग जमा हो गए। इस सभा में बार-

सराय के अध्यादेश की, इसके अधीन चले इस एकतरफा मुकदमे की तथा क्रान्तिकारियों को दी गई इन कठोर सजाओं की कटु आलोचना की गई। यद्यपि जेल पर सशस्त्र पुलिस का सख्त पहरा था, फिर भी न जाने किस प्रकार भगतसिंह और उनके साथियों के नये फोटो पत्रकारों के हाथ लग गए। इन्हें समाचारपत्रों ने इस फैसले के साथ प्रमुखता के साथ छापा। सरकार परेशान हो उठी, उसकी सारी गुप्तचर व्यवस्था परेशान हो उठी। सारे देश में सभाओं और जुलूसों का एक तूफान-सा उठ खड़ा हो गया। दूसरे ही दिन 8 अक्तूबर को देश की जनता इस फैसले से सरकार के विरुद्ध गुस्से से पागल हो उठी। स्टुडेण्ट यूनियन ने पूरे लाहौर में हड़ताल रखी। लगभग सभी स्कूल या कालेज अपने-आप बन्द रहे। जो बन्द न रहे, उन्हें बन्द करने के लिए लोगों ने धरने दिये; उन्हें बन्द कराया। सरकार ने धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ शुरू की। अनेक छात्र गिरफ्तार हुए। डी० ए० वी० कालेज लाहौर के कुछ छात्र तथा एक अध्यापक गुस्से से पागल-जैसे हो उठे। उन्होंने पुलिस पर धावा बोल दिया। सारे देश में प्रदर्शनों पर लाठी-चार्ज हुए।

एक ओर सारा देश इस फैसले से सरकार से इस तरह आक्रोश में था, वहीं दूसरे ओर भगतसिंह के लिए जैसे कुछ हुआ ही न हो; वे एकदम शान्त और निर्विकार बने हुए थे। पहले ही कहा जा चुका है कि इस मुकदमे में इन क्रान्तिकारियों ने अदालत का बहिष्कार कर रखा था। अतः सरकारी वकील स्वयं जेल की उन कोठरियों में गया, जहाँ भगतसिंह तथा उनके साथियों को रखा गया था, उसने वहीं इन्हें अदालत का फैसला सुनाया—

"भगतसिंह ! अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि अदालत ने आपको मौत की सजा दी है।"

भगतसिंह ने इसपर कोई दुःख व्यक्त नहीं किया, क्योंकि वह पहले ही जानते थे कि यही होगा; अंग्रेजों के राज्य में और उम्मीद की ही क्या जा सकती थी। इस फैसले को सुनाते हुए शायद सरकारी वकील की आत्मा भी रो उठी थी। भावुक होकर उसने कहा था—"आप एक वीर पुरुष हैं, मैं आपकी इस वीरता की प्रशंसा करता हूँ, प [illegible] जवानी इस

चल सकते थे ।"

किन्तु भगतसिंह तो आखिर भगतसिंह ही थे, सरकारी वकील के इस प्रकार कहने पर भी वे अविचलित रहे। उनकी नजरों में मृत्यु परम आनन्द को प्राप्त करने का साधन थी। बुढ़ापे में दयनीय होकर मरने से जवानी में अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए मातृभूमि की सेवा में बलिदान हो जाना उनके मत में सबसे अच्छी मृत्यु थी। इसलिए सरकारी वकील से उन्होंने कहा था, "अच्छा यही है कि जवानी में ही ऐसी सजा मिले। मेरे पूर्वजों का कहना था—

जिस मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये पूरन परमानन्द॥

जिस मृत्यु से सारा संसार डरता है, उसे गले लगाते मुझे आनन्द मिल रहा है, क्योंकि मृत्यु होने पर ही परम आनन्द अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है।

इसके बाद सरकारी वकील ने उन्हें अपील करने की सलाह दी लेकिन भगतसिंह इसके विरुद्ध थे। उन्हें अंग्रेज सरकार से किसी न्याय की आशा नहीं थी। वे पुनः अपील करना, अंग्रेजों से भीख माँगने के समान समझते थे। इस प्रकार भीख माँगने से तो मरना उनकी दृष्टि में अच्छा था। अतः उन्होंने कहा—

"इससे कोई लाभ नहीं। हम इन साम्राज्यवादी अदालतों से न्याय की आशा नहीं करते। आजकल अंग्रेज अधिकारी भारतीय नवयुवकों को कुचलने में लगे हैं। यहाँ कोई दया नहीं है। यही वही तोहफा है, जो हमें मिला है। शत्रु से भीख माँगने के बजाय बहादुरी से मरना अच्छा है। मैं स्वतन्त्रता की शमा का परवाना हूँ।"

इसके बाद भगतसिंह को उनके दो अन्य साथियों राजगुरु एवं सुखदेव सहित कोठी नं० 14 में भेज दिया गया जहाँ फाँसी की सजा पाये बंदियों को फाँसी दिये जाने तक रखा जाता था।

अष्टम अध्याय

फैसले के वाद

कोठरी नं० 14 मे भेजे जाने से पहले भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव अपने-अपने साथियो से मिले। सभी साथी एक-दूसरे के गले मिले। विदा होने से पूर्व उन्होने आपस में कुछ मिनटों तक बातें की, तब भगतसिंह ने उन्हें अपना अन्तिम संदेश दिया—

"साथियो ! मिलना और बिछुड़ना लगा रहता है। हो सकता है हम फिर मिल सकें। जब आपकी सजा पूरी हो जाए, तो घर पहुँचकर दुनियादारी के कामों में उलझ मत जाना। जब तक आप भारत से अंग्रेजों को निकालकर समाजवादी गणतन्त्र स्थापित न कर लें, आराम से न बैठें। यह मेरा आपके लिए अन्तिम संदेश है।"

प्रिवी परिषद् में अपील :

इस फैसले के वाद बचाव कमेटी ने प्रिवी परिषद् मे अपील करने का विचार किया। प्रिवी परिषद ब्रिटिश साम्राज्य की सबसे बड़ी अदालत है। भगतसिह इसके पक्ष मे नहीं थे। अतः कोई भी अभियुक्त इसमें नहीं गया और न उन्होंने कोई वकील ही भेजा। न इसमे कोई जिरह हुई और न बहस ही। केवल सरकार द्वारा लगाये गए आरोपों का उत्तर भर दिया गया। भगतसिह की इच्छा थी कि देश की जो दशा है, उसे देखते हुए फाँसी ही हो। इससे कम से कम भारतीयों को कुछ तो शिक्षा मिलेगी कि गुलाम देश के नागरिकों की क्या दशा होती है। इसलिए वह मन ही मन इस बात से डर भी रहे थे कि कहीं प्रिवी परिषद् में फैसला बदल न जाए; कहीं फाँसी की सजा के बदले आजन्म कैद न हो जाए। इसे वे अपने लिए हानिकारक समझते थे। वास्तव में यदि प्रिवी परिषद् निर्णय देता तो वह

ऐसा ही होना चाहिए था।

उनके साथी बटुकेश्वर दत्त को आजन्म कैद की सजा हुई थी। इस समय वह मुल्तान जेल में थे। तब भगतसिंह ने नवम्बर, 1930 में उन्हें एक पत्र लिखा था—

मुझे सजा सुना दी गई है। फाँसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अलावा बहुत-से अपराधी हैं, जो फाँसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे लोग यही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह फाँसी टल जाए, परन्तु उनके बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूँ, जो बड़ी बेताबी से उस दिन का इन्तजार कर रहा हूँ, जब मुझे अपने आदर्श के लिए फाँसी के फन्दे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं खुशी के साथ फाँसी के फन्दे पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूँगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान कर सकते हैं।

मुझे फाँसी की सजा मिली है, किन्तु तुम्हें आजन्म कारावास का दण्ड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रहकर यह दिखाना होगा कि क्रान्तिकारी केवल मर ही नहीं सकते, वरन जिन्दा रहकर मुसीबतों का सामना भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति का साधन नहीं बननी चाहिए, बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोग से फाँसी के फन्दे से बच गए हैं, उन्हें जिन्दा रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फाँसी के फन्दे पर चढ़ सकते हैं, अपितु जेलों की अँधेरे से भरी छोटी-छोटी कोठरियों में घुल-घुलकर बदतर दर्जे के जुल्मों को भी बर्दाश्त कर सकते हैं।"

भले ही भगतसिंह प्रिवी परिषद में अपील के एकदम विरोध में थे, परन्तु उनके अनेक शुभचिन्तक थे जो अपील करना जरूरी समझते थे। बचाव समिति ने इस मुकदमे में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ी थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू की हार्दिक इच्छा थी कि इन वीरों का जीवन बच जाए, वह इन दिनों बीमार थे; मृत्यु के एकदम समीप। उन्होंने वहीं से भगतसिंह के पास सन्देश भिजवाया। वकील प्राणनाथ मेहता स्वयं जाकर जेल में उनसे मिले। उन्होंने अनेक प्रकार से भगतसिंह को समझाना कि प्रिवी परिषद में अपील करने से उनके विचार दूर-दूर देश के लोगों के

यह निवेदन तार द्वारा किया गया था, जो 6 मार्च, 1931 को वाइसराय को मिला। प्रिवी परिषद् में अपील निरस्त हो जाने से भारत के नौजवानों को बहुत अधिक गुस्सा था। इसे वे सम्पूर्ण भारतवर्ष का सबसे बड़ा अपमान समझ रहे थे और उनका खून बदले की भावना से उबल रहा था। पंजाब के युवक सबसे अधिक गुस्से में थे। 'खून के बदले खून' यही उनका आदर्श वाक्य बन चुका था। इस तरह के पोस्टर पूरे पंजाब में चिपकाये गए थे तथा पर्चे बाँटे गए थे। इसी प्रकार के एक पर्चे की भाषा निम्नलिखित शब्दों में थी —

"भारत के निडर नौजवानो ! क्या आप दिन-प्रतिदिन की उत्तेजक घटनाओं से शर्मिन्दा नहीं हैं ? क्या आप भारत की आज़ादी के परवानों को मौत के घाट उतारे जाने से प्रभावित नहीं हैं ? क्या आप देशभक्ति की भावना से पूरी तरह शून्य हैं ? क्या भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को काल-कोठरियों में देखकर भी आपके दिलों में स्वाभिमान की भावना उत्पन्न नहीं होती, भले ही आपके सोचने की ताकत खत्म हो गई हो, फिर भी भारत सरकार की धक्केशाही के विरुद्ध पाठ पढ़ाना आपका धर्म है। एक घटिया और मामूली पुलिस अफसर की हत्या पर पूरी अंग्रेज कौम ऐसा महसूस करती है, जैसे उनका जीवन खतरे में हो, लेकिन अफसोस की बात है कि आपके भाइयों में से तीन को फाँसी दी जा रही है और आप बदला लेने के लिए भी तैयार नहीं हुए।"

पहले उल्लेख हो चुका है कि भगतसिंह ने 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की थी, जिसे सरकार ने 1930 में गैर-कानूनी घोषित कर दिया था, किन्तु यह छिपे रूप में सक्रिय थी। लाहौर षड्यन्त्र केस के इन तीन वीरों की अपील रद्द किये जाने पर इस सभा के सदस्यों ने हस्ताक्षर-अभियान में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। वाइसराय को जो सजा कम करने के प्रार्थना-पत्र भेजे गए थे, उनमें हस्ताक्षर कराने के लिए एक समिति बनाई गई थी। इस समिति के सदस्य वास्तव में 'नौजवान भारत सभा' के ही सदस्य थे। सरकार इस तथ्य को जानती थी। इस विषय में सरकार ने अपनी रिपोर्ट में लिखा—

"षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों की अपील की आज्ञा का प्रार्थना-पत्र रद्द

में उदाहरण तक नहीं मिलता, कठोर हृदय तथा निर्दयता से किये गए लक्षणों को प्रकट करता है, जो ब्रिटेन की मजदूर साम्राज्यवादी सरकार की एक उन्मत्त इच्छा की परिणति है, जिससे कि दबे हुए लोगों के दिलों में भय उत्पन्न किया जाए।"

इस मुकदमे में अदालत की क्रूर कार्यवाही की दुनिया-भर में निन्दा की गई। बर्लिन के एक पत्रकार ने लिखा—

"लाहौर षड्यन्त्र का तथा मेरठ षड्यन्त्र का राजनीतिक ढाँचा क्रूर साम्राज्यवादी कसाई मैकडोनाल्ड के कारण आरम्भ हुआ। अदालती कत्ल का नारा इसलिए लगाया गया ताकि अंग्रेजी साम्राज्यवाद अपनी बस्ती के लोगों पर अपना कब्जा बनाये रखे।"

प्रिवी परिषद् द्वारा अपील रद्द कर दिये जाने पर देश के वातावरण का वर्णन करते हुए लाहौर से निकलनेवाले समाचार-पत्र 'ट्रिब्यून' ने लिखा—

"यह आन्दोलन पूरे राष्ट्र में फैल गया तथा इसमें पंजाब और दूसरे प्रान्तों के हजारों-सैंकड़ों लोगों ने भाग लिया।"

इस प्रकार भगतसिंह और उनके दो साथियों राजगुरु एवं सुखदेव की फाँसी की सजा रद्द करने के लिए देश के समाचार-पत्रों ने अपनी पुरजोर आवाज बुलन्द की थी। समाचार-पत्रों के कई पृष्ठ उनकी रिहाई के पत्रों से भरे रहते थे। लाखों लोगों ने हस्ताक्षर-अभियान चलाये। इन हस्ताक्षरों वाले निवेदन-पत्र भारत के वाइसराय तथा सरकार के पास भेजे जाते थे, जिनमें तीनों वीरों की मृत्यु-दण्ड की सजा को बदलने का निवेदन किया जाता था। इंगलैण्ड की सरकार के मन्त्रियों तथा भारत के वाइसराय के पास लोगों ने इसी उद्देश्य के लिए दुनिया के हर भाग से तार भेजे थे। इंगलैण्ड की संसद के निचले सदन के कुछ सदस्यों ने भी इस सजा का विरोध किया था। इन सदस्यों ने वाइसराय से इस सजा को बदलने की प्रार्थना की थी—

"हाउस ऑफ कॉमन्स की स्वतन्त्र मजदूर पार्टी समझौते के दृष्टिगत लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों के लिए सच्चे दिल से निवेदन करती है।"

यह निवेदन तार द्वारा किया गया था, जो 6 मार्च, 1931 को वाइसराय को मिला। प्रिवी परिषद् में अपील निरस्त हो जाने से भारत के नौजवानों को बहुत अधिक गुस्सा था। इसे वे सम्पूर्ण भारतवर्ष का सबसे बड़ा अपमान समझ रहे थे और उनका खून बदले की भावना से उबल रहा था। पंजाब के युवक सबसे अधिक गुस्से में थे। 'खून के बदले खून' यही उनका आदर्श वाक्य बन चुका था। इस तरह के पोस्टर पूरे पंजाब में चिपकाये गए थे तथा पर्चे बाँटे गए थे। इसी प्रकार के एक पर्चे की भाषा निम्नलिखित शब्दों में थी —

"भारत के निडर नौजवानो ! क्या आप दिन-प्रतिदिन की उत्तेजक घटनाओं से शर्मिन्दा नहीं हैं ? क्या आप भारत की आज़ादी के परवानों को मौत के घाट उतारे जाने से प्रभावित नहीं हैं ? क्या आप देशभक्ति की भावना से पूरी तरह शून्य हैं ? क्या भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को काल-कोठरियों में देखकर भी आपके दिलों में स्वाभिमान की भावना उत्पन्न नहीं होती, भले ही आपके सोचने की ताकत खत्म हो गई हो, फिर भी भारत सरकार की धक्केशाही के विरुद्ध पाठ पढ़ाना आपका धर्म है। एक घटिया और मामूली पुलिस अफसर की हत्या पर पूरी अंग्रेज कौम ऐसा महसूस करती है, जैसे उसका जीवन खतरे में हो, लेकिन अफसोस की बात है कि आपके भाइयों में से तीन को फाँसी दी जा रही है और आप बदला लेने के लिए भी तैयार नहीं हुए।"

पहले उल्लेख हो चुका है कि भगतसिंह ने 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की थी, जिसे सरकार ने 1930 में गैर-कानूनी घोषित कर दिया था, किन्तु यह छिपे रूप में सक्रिय थी। लाहौर षड्यन्त्र केस के इन तीन वीरों की अपील रद्द किये जाने पर इस सभा के सदस्यों ने हस्ताक्षर-अभियान में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। वाइसराय को जो सजा कम करने के प्रार्थना-पत्र भेजे गए थे, उनमें हस्ताक्षर कराने के लिए एक समिति बनाई गई थी। इस समिति के सदस्य वास्तव में 'नौजवान भारत सभा' के ही सदस्य थे। सरकार इस तथ्य को जानती थी। इस विषय में सरकार ने अपनी रिपोर्ट में लिखा—

"षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों की अपील की आज्ञा का प्रार्थना-पत्र रद्द

कम किये जाने के समाचार से और भी सजा पानेवालों की सजा कम करवाने, अनुस्मारकों पर हस्ताक्षर लेने के लिए एक तेज अभियान आरम्भ हो गया है। समिति जो इस अभियान को चला रही है, बदले हुए रूप में 'नौजवान भारत सभा' ही फिर से जीवित हुई है।"

इस समय युवा वर्ग के आन्दोलन से कांग्रेसियों को अपना भविष्य भी अन्धकारमय दिखाई देने लगा था। कांग्रेस के एक प्रसिद्ध नेता डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है—

"घोषित किये गए दण्डों पर देशभर में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कांग्रेसी इन दण्डों के परिवर्तन के लिए पूरे देश-भर में फैली सद्भावना से कोई अवसर ढूंढ़ लेना चाहते थे।"

इस विषय में गांधीजी की भूमिका :

इन दिनों महात्मा गांधी कांग्रेस के एकछत्र नेता थे। उनका भारत के उस समय के वाइसराय से एक समझौता हुआ था। इस समझौते को गांधी-इरविन समझौता कहा जाता है, जो फरवरी-मार्च, 1931 में सम्पन्न हुआ था। लार्ड इरविन भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल वाइसराय थे। अतः भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को मिली फांसी की सजा के सन्दर्भ में महात्मा गांधी की क्या भूमिका रही। यहाँ इस पर एक संक्षिप्त सरसरी निगाह डाली जा रही है।

गांधी-इरविन समझौता वार्ता 17 फरवरी से 4 मार्च, 1931 तक कुल सोलह दिन तक चली। यह वार्ता दिल्ली में वाइसराय के निवास स्थान में हुई, जिसमें इन दोनों के अलावा कोई सहायक नहीं था। इस प्रकार यह गुप्त वार्ता थी। लार्ड इरविन इन सभी बातों को अपनी फाइल में लिखता था, किन्तु गांधीजी इस पर यही कुछ नहीं कहते थे। इस सजा की बात गांधीजी ने 18 फरवरी, 1931 को उठाई थी, किन्तु उनकी सजा कम करने की बात नहीं की थी। इस समझौते पर 5 मार्च, 1931 को हस्ताक्षर हुए तथा 6 मार्च को इसे भारत सरकार के गजट में प्रकाशित कर दिया गया। सारा देश इस समझौते पर आशा लगाये बैठा था कि शायद इसमें भगतसिंह तथा उनके दो मित्रों की सजा को कम करने के बारे में भी कुछ होगा,

लेकिन ढाक के वही तीन पात इस मामले की इसमें कहीं कोई चर्चा भी नहीं हुई थी।

यही नहीं स्वयं कांग्रेसी भी इस प्रकार के समझौते से सन्तुष्ट नहीं थे। इसे पहले 4 मार्च रात ढाई बजे, जब गांधीजी वाइसराय भवन से लौटे, तो कांग्रेस कार्यकारिणी के सभी सदस्य बेसब्री से उनका इन्तजार कर रहे थे। गांधीजी बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। उन्होंने समझौते की सभी बातें बताईं। इस समझौते की धारा पांच पर कोई भी सदस्य खुश न था। यह धारा राजनीतिक बन्दियों को लेकर थी, परन्तु इसमें केवल सत्याग्रही बन्दियों का ही उल्लेख हुआ था, भगतसिंह या अन्य देशभक्त राजनीतिक बन्दियों की कोई चर्चा नहीं हुई थी। भगतसिंह तथा अन्य साथियों की फांसी की बात पूरी तरह गुप्त रखी गई थी, फिर भी यह बात सभी को मालूम हो गई थी कि यह फांसी 23 मार्च को दी जाएगी। अतः 5 मार्च को जिस दिन गांधी-इरविन समझौते पर हस्ताक्षर हुए, अभी इस फांसी के 18 दिन बाकी थे। समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद 5 मार्च, 1931 को शाम गांधीजी ने पत्रकारों के एक समूह को सम्बोधित किया था। इन पत्रकारों में इंगलैण्ड, अमेरिका तथा भारत के प्रतिनिधि थे। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने वाइसराय लार्ड इरविन की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी; इसके साथ ही पिछले एक वर्ष से राजनीतिक कारणों से परेशानियां सहनेवालों की प्रशंसा में उन्होंने कहा था—

"पीड़ा की निश्चित सीमा होती है। दुःख उचित भी होता है और अनुचित भी, किन्तु जब उसकी सीमा खत्म हो जाती है, तो उसे झेलना समझदारी नहीं, वरन् मूर्खता होगी। जब आपका विरोधी आपकी इच्छा पर आपके लिए विचार-विमर्श के अवसर उपलब्ध करा रहा हो, तो पीड़ा सहते जाना मूर्खता है। अगर कोई वास्तविक मार्ग खुलता है, तो हरएक व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसका लाभ उठाए। और मेरे तुच्छ मत से इस समझौते ने वास्तविक रास्ता खोल दिया है।"

सत्याग्रहियों के अलावा दूसरे बंदियों के लिए वह कुछ भी नहीं कर पाये थे। अतः जब एक पत्रकार ने इस विषय पर उनके विचार जानने चाहे, तो इस पर गांधीजी बोले—

यदि हजारों नहीं भी, तो उन सैकड़ों लोगों के प्रति कुछ कहना मेरा फर्ज है, जो मेरे भूतपूर्व बन्दी साथी रहे हैं और जिनके पक्ष में मुझे तार मिले हैं तथा जो अब भी जेलों में सड़ते रहेंगे, किन्तु सत्याग्रही बन्दी जो पिछले बारह महीनों में गिरफ्तार किये गए हैं, मुक्त कर दिये जाएँगे। व्यक्तिगत रूप से मैं दण्ड के रूप में किसी को भी बन्दी बनाये जाने में विश्वास नहीं रखता; उन्हें भी नहीं, जो हिंसा करते हैं। मैं जानता हूँ कि जिन लोगों ने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हिंसा की है, वे भी उतने ही प्रेम और बलिदान का दावा करने के अधिकारी हैं, जितना कि मैं कर सकता हूँ। भले ही उतना समझदार होने का दावा वे न कर सकते हों। और इसलिए यह मेरे लिए न्यायपूर्ण बात होती कि मैं अपने या अपने सत्याग्रही साथियों के बदले उनकी स्वतन्त्रता प्राप्त करता, किन्तु मुझे विश्वास है कि वे इस बात को समझेंगे कि मेरे पास उनकी रिहाई की माँग का कोई औचित्य नहीं था। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे या कार्यकारिणी के सदस्यों के मस्तिष्क में उनका विचार नहीं था। यद्यपि कांग्रेस ने जान-बूझ कर अन्तिम रूप से सहयोग का मार्ग अपनाया है, यदि कांग्रेसी समझौते में अपने साथ जुड़ी शर्तों को ईमानदारी के साथ पूरी तरह पूर्ण करते हैं, तो कांग्रेस को पूरी तरह पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त होगी और इससे सरकार को यह विश्वास प्राप्त होगा कि कांग्रेस शान्ति बनाये रखने में समर्थ है तथा वैसे ही समर्थ है जैसे मैं सोचता हूँ, जैसे उसने असहयोग के दौरान शान्ति दिखाई है। और यदि जनता कांग्रेस को यह अधिकार और आदर प्रदान करती है, तो मैं वचन देता हूँ कि नजरबन्दों, मेरठ नजरबन्दियों तथा अन्य सभी राजनीतिक कैदियों सहित सभी बन्दियों को रिहा कराने में अधिक समय नहीं लगेगा।"

क्रान्तिकारियों का विशेष उल्लेख करते हुए उन्होंने आगे कहा था—

"भारत में निःसन्देह एक लघु किन्तु गतिशील संगठन है, जो हिंसा के प्रयोग से भारत को स्वतन्त्र कराना चाहता है। मैं पहले की तरह इस संगठन से प्रार्थना करता हूँ कि यह अपनी गतिविधियाँ बन्द कर दे, विश्वास के अन्तर्गत न सही स्थिति की माँग को देखते हुए, उन्होंने शायद इस बात को समझ लिया है कि अहिंसा में कितनी बड़ी शक्ति है। वे इस बात से

इन्कार नहीं करेंगे कि अहिंसा के रहस्यात्मक और फिर भी निश्चित प्रभाव के कारण ही जनता को जगाने का आश्चर्यजनक कार्य सम्भव हुआ है। मैं उनसे धैर्य और सत्य एवं अहिंसा की योजना को कार्यान्वित करने के अवसर की अपेक्षा करूँगा। आखिर डांडी-यात्रा को मुश्किल से अभी एक वर्ष ही हुआ है। तीस करोड़ मनुष्यों के जीवन को प्रभावित करने वाले प्रयोग का एक वर्ष कालचक्र के एक सेकिण्ड के बराबर है। उन्हें अपने जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए सुरक्षित रखना चाहिए। उसके लिए सबकी जरूरत होगी और उन्हें कांग्रेस को एक अवसर देना चाहिए कि वह अन्य सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा करा सके और उन लोगों को भी फाँसी के फन्दे से बचा सके, जिन्हें हत्या के आरोप में दोषी पाये जाने पर यह सजा दी जानी है। मैं झूठी आशाएँ नहीं बंधाना चाहता। मैं सबके सामने अपनी और कांग्रेस की बात आपको बता सकता हूँ। प्रयत्न करना ही हमारा काम है, परिणाम सदा ईश्वर के हाथ में है।"

6 मार्च को गांधीजी ने दरियागंज, दिल्ली में एक पत्रकार-सम्मेलन बुलाया था, जिसमें भारत के साथ ही पश्चिमी देशों के भी विख्यात पत्रकार आये थे। भगतसिंह की फाँसी की सजा को कम कराने के विषय में पूछे जाने पर गांधीजी ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया था। लार्ड इरविन ने अपनी 19 मार्च, 1931 की फाइल में लिखा है—"जाते समय गांधीजी ने मुझसे पूछा कि क्या मैं भगतसिंह के मुकदमे की बात कर सकता हूँ, क्योंकि अखबारों में 24 मार्च को उसे फाँसी दिये जाने की सूचना है। यह दिन दुर्भाग्यपूर्ण होगा, क्योंकि इस दिन करांची में कांग्रेस के नये अध्यक्ष को पहुँचना है और वहाँ काफी गहमा-गहमी होगी। मैंने उन्हें समझाया कि मैंने इस विषय में बहुत सावधानी से सोचा है, परन्तु मुझे कोई आधार नहीं मिला, जिससे मैं सजा बदलने के लिए अपने को समझा पाऊँ। ऐसा लगा कि उन्हें मेरे तर्क में वजन प्रतीत हुआ।"

हर्बर्ट इमरसन लार्ड इरविन के समय भारत के गृह सचिव थे। जब गांधी-इरविन समझौता चल रहा था; महात्मा गांधी तथा लार्ड इरविन आपस में समझौते की बातें करते थे, तो कभी-कभी बीच में हर्बर्ट इमरसन

को भी कमरे में बुलाया जाता था। इस विषय में इमरसन के शब्दों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भगतसिंह आदि की फाँसी की सजा बदलने के लिए गांधीजी ने कोई विशेष कोशिश नहीं की थी—"गांधी मुझे इस विषय में विशेष चिन्तित नहीं लगे। मैंने उनसे कहा कि यदि सबकुछ बिना गड़बड़ के हो जाता है, तो हम सौभाग्यशाली होंगे। मैंने उनसे यह भी कहा कि अगले कुछ दिनों के लिए दिल्ली में हो रही सभाओं और हिंसा भड़काने वाले भाषणों के लिए वह कुछ करें, तो उन्होंने हर सम्भव प्रयत्न करने का वायदा किया।"

एलन कैंपबेल जॉनसन ने लार्ड इरविन की जीवनी लिखी है, जिसमें उन्होंने इमरसन के संस्मरणों का भी उल्लेख किया है। इसमें एक स्थान पर हर्बर्ट इमरसन के भगतसिंह की फाँसी के विषय में गांधीजी तथा इमरसन के बीच हुई बातचीत का एक संस्मरण यहाँ दिया जा रहा है—

"सर हर्बर्ट इमरसन गृह सदस्य, जिन्हें दिल्ली वार्ता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था, कहते हैं कि जब भगतसिंह को फाँसी लगाने के सम्बन्ध में गांधी और इरविन समझौता हो गया, तो उसके बाद उन्होंने उन दोनों की बातचीत को आश्चर्यचकित होकर सुना। यह बातचीत दो राजनीतिज्ञों के बीच इस बात पर नहीं हो रही थी कि आतंकवाद के राजनीतिक परिणाम क्या हो सकते हैं, अपितु मानव जीवन की पवित्रता पर दो सन्तों के बीच हो रही थी।"

भगतसिंह तथा साथियों की फाँसी के सन्दर्भ में महात्मा गांधी की भूमिका पर बाद के भारतीय चिन्तकों ने भी तीव्र आपत्ति की है। उपर्युक्त सभी विवरणों से यही बात सामने आती है कि इस सजा को कम कराने के लिए उन्होंने कोई ठोस कदम नहीं उठाया था। इस बात को उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है। अपनी पुस्तक 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा है कि—

"मैं इस सजा के परिवर्तन को समझौते की शर्त बना लेता, पर यह ठीक न हो सका…। कार्यकारिणी समिति मुझसे सजा के परिवर्तन को समझौते की शर्त न बनाने में सहमत थी। इसलिए मैं केवल इसका जिक्र

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यदि गांधीजी इसी शर्त पर समझौता करते, तो ऐसी कोई बात ही नहीं थी कि यह सजा न बदलती। गांधी-इरविन समझौते पर 5 मार्च, 1931 को हस्ताक्षर हो गये थे। इस समझौते के आधार पर सभी सत्याग्रही राजनीतिक बन्दियों को छोड़ दिया गया किन्तु देश-प्रेम के लिए अपने जीवन की भी परवाह न करनेवाले क्रान्तिकारियों के लिए इस समझौते ने कुछ भी नहीं किया। गांधीजी के इस व्यवहार के प्रति आज़ाद हिन्द फौज के जनरल मोहनसिंह ने लिखा है—

"वह (गांधीजी) भगतसिंह को फाँसी पर चढ़ने से बचा सकते थे, यदि उन्होंने इस राष्ट्रीय वीर की रिहाई को एक राष्ट्रीय प्रश्न बना लिया होता तो पूरा राष्ट्र कुर्बानी के लिए तैयार था। दूसरे वह भगतसिंह तथा उनके साथियों को बचा सकते थे। परन्तु वह अपनी अहिंसावादी विचारधारा की झूठी प्रशंसा को नहीं त्याग सके क्योंकि भगतसिंह के छूटने से क्रान्तिकारी नेताओं में दृढ़ता आ जाती और वह वह तथ्य था जिसे महात्मा गांधी सहन नहीं कर सकते थे।"

महात्मा गांधी के इस समझौते को कांग्रेसियों के अलावा सभी राष्ट्रीय विचारधारा वाले राजनीतिज्ञों ने एक विश्वासघात कहा था। ऐसा कहने वालों में 'कांग्रेस वर्कर यूथ लीग' वाले भी थे। बम्बई के 'फ्री प्रेस जनरल' ने इस समझौते को देश की जनता के साथ गद्दारी की संज्ञा देते हुए लिखा था—"कांग्रेस कार्यकारिणी पर विश्वासघात तथा हार मानने के अपराध का आरोप लगाया जा सकता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समझौते में महात्मा गांधी की भूमिका एक विवादास्पद रूप में सामने आई। जहाँ सारा देश इन वीरों के जीवन की रक्षा करना चाहता था, देशवासियों ने उनके जीवन की रक्षा के लिए हर सम्भव कोशिश की थी, वहीं गांधीजी ने, जो वास्तव में उनके जीवन की रक्षा कर सकते थे, इसके लिए जो कोशिश की, वह नहीं के बराबर थी। गांधीजी की दृष्टि में केवल राजनीतिक बन्दी वही थे, जो कांग्रेस के सत्याग्रही थे। उन्होंने ही एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था, "व्यक्तिगत रूप से मैं किसी को भी बन्दी बनाये जाने में विश्वास नहीं रखता, उन्हें भी नहीं, जो हिंसा करते हैं।" पर इसमें

क्या होता है ? उनका यह कथन ठीक वैसा ही है जैसे कोई छाया में बैठा व्यक्ति किसी तेज धूप में झुलसते हुए व्यक्ति से कहे कि मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है, मैं चाहता हूँ, तुम भी छाया का आनन्द लो, पर क्या करूँ मेरा मन यहाँ से उठने को है ही नहीं, मैं तुम्हें यहाँ पर बिठा नहीं सकता। इस तरह की चिकनी-चुपड़ी बातें करने से धूप में झुलसते व्यक्ति को क्या राहत मिलेगी, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। यदि वास्तव में हमें किसी से सहानुभूति है, तो उसके दुःख को दूर करने के लिए हमें कुछ त्याग तो करना ही पड़ेगा। गांधीजी को अपने सिद्धान्त सबसे अधिक प्रिय थे। ऐसे सिद्धान्त भी क्या, जो एक ऊँचे आदर्शों के लिए लड़नेवाले, महान देशभक्त के जीवन की रक्षा नहीं कर सके। वस्तुतः इन [illegible] वे कांग्रेस के भविष्य को ही सुन्दर बनाना चाहते थे, इसी प्रसंग में पत्रकारों से उन्होंने आगे कहा था, "उन्हें (क्रान्तिकारियों को) अपने जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए सुरक्षित रखना चाहिए। उनके लिए सबको [illegible] होगी और उन्हें कांग्रेस को एक अवसर देना चाहिए कि वह अन्य सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर सके और उन लोगों को भी फाँसी के फन्दे से बचा सके, जिन्हें हत्या के आरोप में दोषी पाये जाने पर यह सजा दी जाती है।" भला इसे क्या कहा जाए; जब उन्हें फाँसी के फन्दे से बचाया जा सकता था, उस समय तो उस मामले को ही दबा गए थे और अब उन्हीं के कन्धे पे बन्दूक रखकर कांग्रेस की जीत के लिए निशाना साध रहे थे।

साथियों राजगुरु और सुखदेव की फाँसी की सजा को बदलने के विषय में कई बार लम्बी बातचीत हुई थी।"

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि डॉ० पट्टाभि सीतारमैया एक प्रसिद्ध गांधीवादी कांग्रेसी नेता थे। गांधीजी की उन पर विशेष कृपा थी, इस बात का प्रमाण सुभाषचन्द्र बोस के कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने पर मिला था। इस चुनाव में दो व्यक्ति खड़े हुए थे—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा डॉ० पट्टाभि सीतारमैया, जिसमें नेताजी जीते थे। नेताजी की जीत पर गांधीजी इस बात पर अड गए थे कि कांग्रेस की कार्यकारिणी में उनकी (गांधीजी की) पसन्द के व्यक्ति रखे जाएँ और यही नहीं उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि 'पट्टाभि रमैया की हार मेरी अपनी हार है।' गांधीजी के इस व्यवहार से दु खी होकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र देना पडा था। उन्होंने कांग्रेस भी छोड दी थी। अत कहा जा सकता है कि डॉ० पट्टाभि रमैया गांधीजी के अन्धभक्त थे; उनकी इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। वास्तव में गांधीजी कांग्रेस तथा अपने यश का लोभ संवरण न कर सके। आज़ाद हिन्द फौज के जनरल मोहनसिंह की यह बात सत्य लगती है कि यदि गांधीजी भगतसिंह तथा अन्य साथियों को बचा लेते, तो क्रान्तिकारी अधिक शक्तिशाली हो जाते, जो कांग्रेस के हित में नहीं रहता। इसे गांधीजी कभी सहन नहीं कर सकते थे। गांधीजी ने इरविन से स्वयं कहा था कि 'यदि इन नौजवानों को फाँसी पर चढ़ाना ही है, तो कांग्रेस के कराँची अधिवेशन से पहले ही चढ़ा दिया दिया जाए तो अच्छा रहेगा।' इसका उल्लेख भी डॉ० सीताभि पट्टारमैया की पुस्तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास, भाग एक में हुआ है। महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रीय नेता को क्या इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना शोभा देता है ?

क्या गांधीजी की क्रान्तिकारियों के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी ? क्या वे इन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते थे अथवा क्या ऐसे देशप्रेमियों की तुलना में महात्माजी के सिद्धान्त ही सबकुछ थे ? यह प्रश्न विवाद का विषय हो सकते हैं, परन्तु इतना सत्य है कि जब अखिल भारतीय स्तर पर भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव स्मारक बनाया जा रहा था, तो गांधीजी

के भागीदार बनेंगे ?"

यह एक कड़वी सचाई है कि हम भारतीय सदा से ही व्यक्ति-पूजक रहे है। इसीलिए हमने महात्मा [illegible]
अधिकतर व्यक्ति उनके अन्धभक्त [illegible]
समझते हैं, परन्तु सत्य सदा सत्य ही रहता है, चाहे सारी दुनिया एक तरफ हो जाए परन्तु सत्य हमेशा सत्य ही रहता है। जब मनुष्य स्वार्थ अथवा पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाता, तो उसे सत्य दिखाई नही पड़ता; उसकी आँखें सत्य को नही देख सकती; सत्य पर पर्दा पड़ जाता है। सत्य के दर्शन तभी हो सकते है, जब मनुष्य उस विषय के प्रति, जिसके विषय में उसे फैसला लेना है, एक न्यायाधीश की तरह अपने-पराये, मत-मतान्तर आदि भावनाओं से मुक्त होकर उसे देखे, हर प्रकार के स्वार्थ अथवा पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाए।

यद्यपि गांधीजी एक युगपुरुष रहे है, वह एक पूर्ण मानव थे, भारतीय इतिहास में उनका एक अद्वितीय स्थान रहा है, उनका सत्य तथा अहिंसा का मार्ग मानवता के लिए एक उदात्त भावना है; तथापि इतिहास की उपर्युक्त दो घटनाओं के लिए स्वतन्त्र विचार करनेवाले भारतीय उन्हें कभी माफ नहीं कर पाएँगे—प्रथम घटना गांधी-इरविन समझौते मे भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव के साथ उनका न्याय न करना तथा द्वितीय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को कांग्रेस का अध्यक्ष-पद छोड़ने को बाध्य करना। इसी प्रथम घटना के लिए तब करांची जाने पर रेलवे स्टेशन पर ही नौजवान सभा के सदस्यों ने उनके विरोध में नारे लगाये थे—'गांधी वापस जाओ', 'गांधीवाद मुर्दाबाद', 'गांधी के समझौते ने भगतसिंह को फाँसी लगवायी है', 'भगतसिंह जिन्दाबाद'।

दशम अध्याय

सूर्य अस्त

पिछले अध्याय के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि भगतसिंह के जीवन को रक्षा करने का भारतीयों का हर सम्भव प्रयत्न असफल रहा तथा गांधी-इरविन समझौते ने उनकी फांसी को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया। अतः अब वह मृत्यु का गले लगाने के लिए एक बहादुर देशभक्त की तरह फांसी के फन्दे का इन्तजार करने लगे।

घरवालों से अन्तिम मिलन :

जिन दिनों भगतसिंह जेल में थे, उनके परिवार के लोग उनसे मिलने आते थे, परन्तु उन मुलाकातों तथा 3 मार्च, 1931 की मुलाकात में एक बहुत बड़ा अन्तर था; पिछली मुलाकातों में घरवालों के दिल के किसी कोने में कुछ क्षीण-सी आशा थी कि शायद भगतसिंह की फाँसी की सजा बदल जाए, परन्तु आज का यह मिलन अन्तिम मिलन था; अलविदा की घड़ी थी। इस दिन उनके परिवार के सभी लोग, माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची, मामा-मामी तथा छोटे भाई-बहिन आये थे। दादाजी सरदार अर्जुनसिंह सबसे अधिक व्याकुल थे। वे भगतसिंह के सामने गये; उन्होंने पोते के सिर पर प्यार-भरा हाथ फेरा; कुछ कहना चाहा, किन्तु मन की बात होठों तक आते-आते रह गयी, होठ केवल कुछ फड़फड़ाकर रह गये; गला भर आया; उनके लिए पोते के पास रहना कठिन हो गया, वे वहाँ से हट गये, उनके हृदय की व्याकुलता आँखों से बरसने लगी। उनके इस दुःख का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है, क्योंकि कहा जाता है कि बेटे से पोता तथा धन से सूद अधिक प्रिय होता है।

छोटे भाई-बहिन उनसे मुस्कराते हुए मिले। फिर माँ विद्यावती से

उनकी बातें हुई। उन्होंने अपनी माँ से कहा—"माँ, दादाजी अब ज्यादा दिन नही जिएँगे, आप बगा जाकर उन्ही के पास रहना, उनकी सेवा करना।"

माँ ने एक वीरागना की तरह पुत्र को उसके कर्तव्य की शिक्षा दी। शायद उनके मन में यह बात रही हो कि उनका बेटा अन्तिम क्षणों में कहीं मृत्यु से भयभीत न हो जाए, अत उन्होंने कहा—"बेटे अपनी बात पर अडे रहना, एक न एक दिन सभी को मरना है, किन्तु मृत्यु वही है, जिसे सारी दुनिया देखे, जिसकी मृत्यु पर सब रो उठें, उसी का मरना सफल है। मुझे गर्व है कि मेरा पुत्र श्रेष्ठ आदर्श एव कार्यों के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर रहा है। मैं हृदय से चाहती हूँ कि तुम फाँसी के तख्ते पर खडे होकर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाओ। तुम्हारा नाम घटे नहीं; बल्कि आगे को बढता रहे।"

सचमुच माँ विद्यावती एक वीर भारतीय महिला है। आखिर ऐसी वीरप्रसू माँ का पुत्र भला भगतसिंह की तरह क्यो न होता। उनका यह देश-प्रेम; ऐसा स्वाभिमान विरली ही माताओ में पाया जाता है। क्या कोई साधारण स्त्री अपने पुत्र को ऐसा उपदेश दे सकती है।

इसके बाद भगतसिंह की अपने पिता से कुछ बातचीत हुई। इस बात-चीत में हमें एक पिता के पुत्रस्नेह तथा भगतसिंह की मृत्यु के प्रति निर्भीकता दिखाई देती है—

पिता—बेटे! शायद एक बार फिर भेंट हो।

भगतसिंह—क्या आपने कुछ सुना है?

पिता—हाँ।

भगतसिंह—क्या?

किशनसिंह—तुम्हारी, राजगुरु तथा सुखदेव की फाँसी की सजा नहीं बदली है। गाधी-इरविन समझौते के अनुसार केवल कांग्रेसी बन्दी ही रिहा होंगे; कोई भी क्रान्तिकारी बन्दी नहीं छोड़ा जाएगा। वाइसराय चाहे तो अपने अधिकार का प्रयोग करके फाँसी की सजा को बदल सकता है, किन्तु वह ऐसा करने को राजी नहीं है।

भगतसिंह—मैं शुरू से ही कह रहा हूँ कि हमारी सजा को कोई भी

उन्होंने यहाँ तक कहीं सोचा था कि ज़ालिम अंग्रेज सरकार ऐसा भी नहीं होने देगी।

फाँसी से पहले

अन्त में 23 मार्च, 1931 का वह मनहूस दिन भी आ गया, जब इन वीरों को फाँसी की सजा दी जानी थी। भगतसिंह ने जेल में ही अपने वकील से लेनिन की जीवनी मँगा ली थी। खाली समय में पुस्तकें ही उनकी दोस्त थीं। वह लेनिन की जीवनी पढ़ने में डूबे हुए थे। एकदम निश्चिन्त, भय अथवा व्याकुलता का उनके चेहरे पर कोई चिह्न नहीं था, किन्तु जेलर खानबहादुर मोहम्मद अकबर के मन और मस्तिष्क में विचारों का बवण्डर उठ रहा था। शायद वह सोच रहा था, काश वह भगतसिंह को बचा सकता। काश नौकरी से उसके हाथ बँधे न होते। उसके सामने बार-बार इन वीरों के चेहरे आ जाते थे, दिल में एक बेचैनी-सी होने लगती, एक तूफान-सा उठने लगता; एक लावा-सा उबल रहा था उसके अन्दर, जिसे कोई देख नहीं सकता था, वह स्वयं भी, पर उसका अनुभव कर रहा था वह, एक ऐसा अनुभव, जिसे बयान नहीं किया जा सकता। दोपहर का समय था, सूर्य आकाश के बीच में पहुँच चुका था। कुछ ही देर पहले भगतसिंह ने रसगुल्ले मँगाकर खाये थे। तभी जेल के सहायक जेलर ने कैदियों को अपनी-अपनी कोठरियों के अन्दर चले जाने को कहा। कैदियों की समझ में *कुछ भी नहीं आया कि यह क्या हो रहा है; अभी तो एकदम दोपहर थी,* जबकि शाम को ही, उन्हें कोठरियों में बन्द किया जाता था। इसका क्या अर्थ हो सकता है; सब अपनी-अपनी अक्ल के घोड़े दौड़ा रहे थे। तभी जेलर मोहम्मद अकबर वहाँ पहुँचा और 14 नम्बर की बैरक के सामने जाकर खड़ा हो गया। सभी कैदी उसके चेहरे की ओर देखने लगे; जैसे पूछना चाह रहे थे कि आखिर बात क्या है? परन्तु उसका चेहरा देखकर किसी को भी पूछने का साहस न हुआ। उसके चेहरे को देखकर लगता था, जैसे वह अत्यधिक तनाव में था, कोई बात थी, जो उसके अन्दर ही अन्दर घुमड़ रही थी, वह कोई फैसला नहीं कर पा रहा था। कैदियों की ओर देखकर उसके मुँह से केवल इतना ही निकला था कि वे चाहें तो बन्द न हों

नहीं बदलेगा। फांसी का फन्दा हमारे गले में अवश्य डाला जाएगा। इसमें कोई नई बात नहीं है।

पिता—मैंने कुछ और सुना है।

भगतसिंह—वह क्या?

पिता—महात्मा गांधी ने कह दिया है कि यदि इन तीनों नौजवानों को फांसी पर चढ़ाना है, तो यह काम कांग्रेस के कराची अधिवेशन के पूर्व ही हो जाना चाहिए।

भगतसिंह—यह अधिवेशन कब तक हो रहा है?

पिता—इसी महीने के आखिर में।

भगतसिंह—यह तो बड़ी खुशी की बात है। गर्मियां आ रही हैं, मैं व[illegible] को कालकोठरी की आग में जलने से तो मर जाना बेहतर समझता हूं। मैं पुनः भारत में जन्म लूंगा और हो सकता है कि फिर एक बार अंग्रेजों के साथ टक्कर लेनी पड़े। मेरा देश भारत अवश्य आज़ाद होगा।

आप तैयार हो जाएँ।"

उनकी नजर किताब पर से नहीं हटी, पढ़ते-पढ़ते वह बोले, "रुको। एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है।" थोड़ी देर तक किताब के उस भाग को पढ़ लेने पर उन्होंने किताब ऊपर को उछाल दी और बोले, "चलो।" और वह कोठरी से बाहर आ गए।

फाँसी के तख्ते की ओर ले जाने से पहले जेल के अधिकारियों ने इन तीनों वीरों, भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव से जेल के नियमों के अनुसार काले कपड़े पहनने को कहा गया, लेकिन भगतसिंह इसके लिए राजी न हुए और उन्होंने कहा, "मैं चोर, लुटेरा, डाकू, खूनी या कोई मामूली अपराधी नहीं हूँ, मैं एक राजनीतिक कैदी हूँ, एक क्रान्तिकारी हूँ।" इस पर चीफ वार्डन तथा उप-अधीक्षक की कुछ भी कहने की हिम्मत न हुई, अत उन्होंने इस मामले में दारोगा तथा अधीक्षक से रिपोर्ट की। तब दारोगा अकबर खाँ उनके पास आया। उसने उनसे मिन्नत की कि वे जीवन के अन्तिम समय में इस प्रकार का व्यवहार न करें। तब भगतसिंह मान गये।

तीनों क्रान्तिकारी कोठरी से बाहर निकले। उन्होंने एक-दूसरे को देखा; तीनों आपस में गले मिले। तीनों हँस रहे थे। कैसी विडम्बना थी कि जिन्हें फाँसी दी जा रही थी, वे हँस रहे थे, उनके चेहरे खिले हुए थे; गम का कोई भी निशान उनके चेहरों पर न था; वे सीना फुलाये हुए अकड़ कर मस्ती से झूमते हुए चल रहे थे, परन्तु जेल के उन अधिकारियों के चेहरों पर मुर्दनी-जैसी छायी हुई थी। जो उन्हें ले जा रहे थे; उनके चेहरों पर दुःख और अवसाद की रेखाएँ साफ दिखाई दे रही थीं। भगतसिंह बीच में थे, राजगुरु दाहिनी ओर थे तथा सुखदेव बाईं ओर। भगतसिंह की दोनों भुजाओं में अन्य दो साथियों की भुजाएँ थीं। तीनों ही मौत से एकदम बेखबर-से लग रहे थे और झूम-झूमकर गा रहे थे—

> दिल से निकलेगी न मरकर वतन की उलफ़त।
> मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आयेगी॥

सारा माहौल गमगीन हो चला था, परन्तु इन देशभक्तों के चेहरों से एक विचित्र तेज चमक रहा था। तब भारत माता के ये लाडले सपूत जेल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से घिरे हुए बढ़ चले महाप्रस्थान की ओर;

फाँसी के फन्दे को गले लगाने।

महाप्रयाण तथा अन्तिम क्रिया :

शाम छ: बजकर पैंतालीस मिनट पर वे तीनों फाँसी दिये जानेवाली जगह पर पहुँच गये। उस समय जेल अधीक्षक, आई॰ जी॰ पुलिस, डिप्टी कमिश्नर लाहौर तथा आई॰ जी॰ जेल भी वहाँ उपस्थित थे। तीनों वीर बुलन्द आवाज में नारे लगाने लगे—'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'अंग्रेजी साम्राज्यवाद का नाश हो', 'राष्ट्रीय झण्डा ऊँचा रहे', 'डाउन-डाउन यूनियन जैक'। इन नारों को जेल के अन्य कैदियों ने भी सुना, तब उन्होंने अनुमान लगाया कि इन महान क्रान्तिकारियों की महाप्रयाण की बेला आ गई है, अतः उन्होंने अपनी-अपनी कोठरियों से ही ऊँची-ऊँची आवाजों में इन नारों को दुहराया तथा नारों को दुहराकर ही उन्हें अपनी श्रद्धांजलि दी।

जब तीनों फाँसी के तख्ते के पास पहुँचे, तो फाँसी के नियमों के अनुसार डिप्टी कमिश्नर वहाँ पर खड़ा था। भगतसिंह तथा उनके साथियों को हथकड़ी नहीं लगायी गयी थी, क्योंकि जेलर से उन्होंने पहले ही कह दिया था कि उन्हें हथकड़ी न लगायी जाए तथा मुँह पर काला कण्टोप न चढ़ाया जाए। जेलर इनकी इस अन्तिम इच्छा को मान गया था, किन्तु इस समय उन्हें इस प्रकार देखकर डिप्टी कमिश्नर यकायक सहम गया, तब जेलर मोहम्मद अकबर ने उन्हें सारी बात बतायी और विश्वास दिलाया कि वे कुछ नहीं करेंगे। फाँसी के तख्ते पर चढ़ने से पहले भगतसिंह ने अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर को सम्बोधित करते हुए कहा, "मजिस्ट्रेट ! तुम भाग्यशाली हो, जो आज तुम्हें यह देखने का अवसर मिला है कि भारतीय क्रान्तिकारी किस तरह प्रसन्नता से अपने सर्वोच्च आदर्शों के लिए मौत को भी लगा सकते हैं।"

निःसन्देह जीवन के अन्तिम क्षणों में भी इस प्रकार के आदर्श पर अडिग रहनेवाले भगतसिंह की बात को सुनकर मजिस्ट्रेट प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका होगा। मजिस्ट्रेट से इतना कहने के बाद वह फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये। तीन फन्दे टँगे हुए थे। यहाँ भी तीनों उसी क्रम से बीच में

भगतसिंह दाहिनी ओर राजगुरु तथा बाँये सुखदेव खड़े हो गये। तीनों ने फिर गरजती आवाज में नारे लगाए—

'इन्कलाब जिन्दाबाद'

'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद'

तीनों ने फन्दे की ओर देखा, मुस्कराये, उसे चूमा और गले में डाल लिया, जैसे रणभूमि में जाने के लिए फूलों की माला डाल रहे हों। भगत सिंह ने जल्लाद से फन्दों को ठीक कर लेने को कहा। शायद उसने ये शब्द अपने जीवन में पहली बार सुने थे। साधारण अपराधियों के तो तख्ते पर चढ़ने में ही पैर लड़खड़ाने लगते हैं, परन्तु भगतसिंह फन्दा ठीक करने को कह रहे थे। जल्लाद ने फन्दे ठीक किये। चर्खी घुमाई। तख्ता हटा और वे तीनों वीर मातृभूमि की बलिवेदी पर शहीद हो गये। भारत भूमि की आजादी के लिए एक चमकता हुआ सूर्य सदा-सदा के लिए अस्त हो गया।

सरकारी तार के अनुसार यह फाँसी शाम 7 बजे दी जानी थी। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि यह फाँसी सात बजकर पन्द्रह मिनट पर दी गयी। कुछ दूसरी पुस्तकों में यह समय साढ़े सात बजे अथवा सात बज कर तैंतीस मिनट लिखा हुआ है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि सामान्य तौर पर फाँसी सुबह दी जाती है, जबकि भगतसिंह के मामले में इन नियम का पालन नहीं किया गया। उन्हें रात में फाँसी दी गयी। *फाँसी के बाद व्यक्ति का मृत शरीर उसके घरवालों को सौंप दिया जाता* है, किन्तु इन महान क्रान्तिकारियों के घर इस बात की सूचना भी नहीं दी गई कि उन्हें फाँसी दी जा रही है। इससे अधिक जालिमाना हरकत और क्या हो सकती है। कहा जाता है कि इन वीरों के शरीरों को काटकर छोटे-छोटे टुकड़े कर दिये गए। इन टुकड़ों को बोरों में भर दिया गया, किन्तु अपने इस नीच कर्म के कारण अंग्रेजी सरकार खुद कितनी डरी हुई थी, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इन बोरों को जेल के मुख्य दरवाजे से बाहर लाने की हिम्मत अंग्रेजों की नहीं पड़ी। अंग्रेज स्वयं अपराधी थे, जबकि सच्चाई तो यह थी कि इन वीरों ने कोई अपराध नहीं किया था; अपनी मातृभूमि के लिए; उसकी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करना कौन-सा अपराध था कि वे विदेशी अंग्रेजों को देश से बाहर खदेड़ना

पाहुते थे। इसी काम के लिए उन्हें फांसी हुई थी। सम्भवत. जेल के किसी पिछले दरवाजे से इन बोरो को बाहर निकाला गया। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि "इस भय से कि यदि शवो को जेल से बाहर ले जाया गया, तो हो सकता है कि क्रान्तिकारियों का कोई छिपा साथी देख ले। जेल की पिछली दीवार तोड़कर शवों को तुरन्त जलाने के लिए फीरोजपुर ले जाया गया।"

यह सब काम रातों-रात चोरी छिपे किया गया। इधर लाहौर सेंट्रल जेल में यह सब हो रहा था, उधर भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह लाहौर में ही मोरी दरवाजे के मैदान में भाषण सुन रहे थे। वहीं किसी ने उन्हें इस फांसी की सूचना दी। लोग गुस्से से पागल हो उठे, उन्होंने भीड़ को किसी तरह समझा-बुझाकर शान्त किया और स्वयं तेजी से जेल की तरफ कदम बढाये। इस पर भी कुछ लोग उनके पीछे हो लिये, किन्तु उनका वहाँ पहुँचना बेकार ही रहा, जेल का ट्रक पहले ही रवाना हो चुका था। यह ट्रक पहले कसूर पहुँचा। सब कुछ पहले ही बनी योजना के अनुसार हो रहा था। वहाँ से एक सिख ग्रन्थी तथा एक हिन्दू पण्डित को साथ लिया गया। ये सब फिरोजपुर के पास सतलुज नदी के किनारे पहुँचे। ट्रकों से लाशों के बोरे उतारे गये। फिर आधी रात के समय उन बोरों पर मिट्टी का तेल छिडककर आग लगा दी गई, ताकि शव शीघ्र जल जाएँ।

लाशें जलने लगीं। प्रचण्ड अग्नि से सारा वातावरण आलोकित हो उठा। साथ आया अंग्रेज अधिकारी बोला, "अब मैं जाता हूँ। जब यह जल जाए, तो राख को नदी में बहा देना।" उसके जाने के बाद बाकी लोग भी शायद डरे हुए थे; उन्होंने अधजले टुकड़े जल्दी-जल्दी नदी में डाल दिये। पुलिस वालो को इससे क्या अन्तर पड़ता था। उन्होंने बाल्टी से पानी डालकर राख भी नदी में बहा दी। जहाँ पर चिताएँ लगी थीं, उस स्थान को बालू-मिट्टी आदि से ढक दिया गया।

तब तक शायद समीप के गाँववालों को इस सब घटना का पता लग चुका था, वे हाथों में मशालें लेकर सतलुज के तट की ओर चल पड़े। मशालों को अपनी ओर आता देखकर इन शवों को जलाने आये जेल के

कर्मचारी आदि ट्रकों में बैठकर नौ-दो ग्यारह हो गये। गाँववालों की भीड़ वहाँ पहुँची। शायद उन्हें विश्वास हो गया था कि शवों को ठीक ढंग से नहीं जलाया गया है। श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार "गाँववालों ने शवों को नदी से निकाला तथा फिर पूरे नियम से उनका दाह-संस्कार किया।"

दूसरे दिन प्रात काल में ही वहाँ लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। वह स्थान भारतीयों के लिए तीर्थस्थान बन चुका था, अत: जिसके हाथ भी मिट्टी, धूल, खून से सने पत्थर या हड्डियों के टुकड़े जो लगा, उन्होंने उठा लिये।

अंग्रेज सरकार ने अपनी ओर से दूसरी सुबह केवल एक औपचारिकता पूरी करने के लिए जनता के लिए यह सूचना दी। लाहौर के जिलाधीश की ओर से दीवारों पर 24 मार्च को निम्नलिखित पोस्टर चिपकाये गये—

"जनता को सूचना दी जाती है कि भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव के शव, जिन्हें कल 23 मार्च को शाम के समय फाँसी दे दी गयी थी, जेल के बाहर सतलुज के तट पर ले जाये गये और वहाँ सिखों तथा हिन्दुओं के रीति-रिवाजों के अनुसार उनका संस्कार कर दिया गया और उनकी अस्थियों को नदी में डाल दिया गया।"

दूसरे दिन यह समाचार पूरे देश में फैल गया।

फाँसी पर देश की प्रतिक्रिया :

इस समाचार से पूरे देश में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। सारे देश में 24 मार्च को शोक-दिवस घोषित किया गया। सारा देश शोक के सागर में डूब गया। लाहौर में प्रशासन ने यूरोपीय स्त्रियों को दस दिन तक बाहर न निकलने की सलाह दी। बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता जैसे महानगरों का माहौल चिन्तनीय हो उठा। कलकत्ते में सशस्त्र पुलिस सड़कों पर गश्त लगा रही थी, फिर भी वह प्रदर्शनों को न रोक सकी, जगह-जगह पुलिस से उनकी मुठभेड़ें हुईं, कई व्यक्ति मारे गये, इससे भी अधिक घायल और गिरफ्तार किये गए।

क्रान्तिकारियों की चिताओं के कुछ अवशेषों को जयदेव गुप्ता तथा

बीबी अमरकौर लाहौर से आये। इनका जुलूस निकाला गया। हजारों लोगों ने इनके दर्शन किये। देश-भर के समाचार पत्रों ने इन महान आत्माओं को श्रद्धांजली देते हुए लेख लिखे। जगह-जगह शोक-सभाएँ हुईं, सरकार की क्रूरता तथा गांधी-इरविन समझौते की कटु आलोचना हुई। इस शोकपूर्ण वातावरण में लाहौर के 'ट्रिब्यून' ने लिखा—

"भारत में अंग्रेजी सरकार ने जो कुछ गलतियाँ कीं, वे महत्त्व और गम्भीरता की दृष्टि से उन गलतियों के समान हैं, जो उसने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के मृत्यु-दण्ड को न बदलने में की है।

लाहौर के उर्दू अखबार पयाम ने 3 अप्रैल, 1931 को लिखा—

"भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दे दी गई है। सिर्फ तीन जानें गई हैं, लेकिन उन्हें 23 करोड़ हिन्दुस्तानी प्यार करते थे। उनका खून करके ब्रितानवी हुकूमत ने सारे हिन्दुस्तान की मर्दानगी को ललकारा है। अगर हिन्दुस्तान इस चुनौती को स्वीकार करता है, तो इगलैण्ड का भविष्य अँधेरे से भर जायगा। और, अगर वह इसे मंजूर नहीं करता तो उसे अपने भविष्य से हाथ धोना पड़ेगा। शहीदों ने हमें शहादत का अनोखा रास्ता दिखाया है और हमें उनके दिखाये रास्ते पर चलना चाहिए। इगलैण्ड ने सारे हिन्दुस्तान की इबादत को ठुकरा दिया है। इसका जवाब सिसकियों और अश्कों से नहीं दिया जा सकता, क्योंकि ये कमज़ोरी के हथियार हैं। ब्रितानवी हुकूमत में दयानत, आदमियत और उदारता नहीं है। यह शैतान हुकूमत है, जो सिर्फ जोर के आगे झुकती है। तुममें ताकत है, इसका सही इस्तेमाल करो। ब्रतानवी हुकूमत, ब्रितानवी तिजारत, ब्रितानवी इल्म का बहिष्कार करो और ब्रितानिया बेइज्जत होकर तुम्हारे कदमों पर गिरेगा और उसे शहीदों के खून की कीमत चुकानी पड़ेगी। भगतसिंह के खून की कीमत इससे कम नहीं है कि हिन्दुस्तान आज़ाद हो, क्योंकि उसके बिरादरान ने हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए अपनी जानें दी हैं। जब पूरे आज़ाद मुल्क का खून एक आम अंग्रेज के खून की कीमत नहीं चुका सकता, तब गुलाम भारत के फर्जन्द बेटों जिन पर पुलिस अफसर के खून का इल्जाम था, के खून को कैसे मुआफ किया जा सकता है। लेकिन अगर एक आम अंग्रेज की जान इतनी

कीमती है, तो क्या हिन्दुस्तान भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की कीमत कम समझता है, जिनका अंग-अंग देशभक्ति और पाक शहादत से भरा हुआ था। ब्रितानिया को इसका जवाब काम करके दो, अल्फाजों से नहीं। हिन्दुस्तान इन तीन शहीदों को पूरे ब्रितानिया से ऊपर समझता है। अगर हम हजारों-लाखों अंग्रेजों को भी मार गिराएँ, तो भी हम पूरा बदला नहीं चुका सकते। यह बदला तभी पूरा होगा, अगर हिन्दुस्तान को आज़ाद करा लो, तभी ब्रितानिया की शान मिट्टी में मिलेगी। ओ भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव! अंग्रेज खुश हैं कि उन्होंने तुम्हारा खून कर दिया है, लेकिन वो गलती पर है। उन्होंने तुम्हारा खून नहीं किया, उन्होंने अपने ही भविष्य में छुरा घोपा है। तुम ज़िन्दा हो और हमेशा ज़िन्दा रहोगे।"

भारत ही नहीं विदेशी अखबारों ने भी अंग्रेज सरकार के इस काम की आलोचना की थी। न्यूयार्क के समाचार-पत्र 'डेली वर्कर' ने लिखा था—

"लाहौर के तीन कैदी, भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव, जो भारत की आज़ादी के लिए लड़ रहे थे, अंग्रेजी साम्राज्यवाद के हितों के लिए अंग्रेज मजदूर सरकार द्वारा खत्म कर दिये गए। मैकडोनल्ड के नेतृत्व में अंग्रेजी मजदूर सरकार द्वारा की गई यह सबसे पहली खूनी कार्यवाही है, तीन भारतीय क्रान्तिकारियों की मृत्यु पूर्वनिश्चित राजनीतिक योजना के अनुसार मजदूर सरकार की आज्ञा पर यह स्पष्ट करती है कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद को बचाने के लिए मैकडोनल्ड सरकार कितनी दूर जा सकती है।"

तब इंगलैण्ड में मजदूर दल की सरकार थी और रैमजे मैकडोनल्ड उसके प्रधानमन्त्री थे। इंगलैण्ड की मजदूर पार्टी अपने को मजदूर वर्ग का शुभचिन्तक मानती है। यह इस पत्र में इस पार्टी के कार्यों की खुलकर निन्दा की गई है तथा क्रान्तिकारियों को देशभक्त कहा गया है। कई-एक विदेशी समाचार-पत्रों ने भी उनकी इस तरह प्रशंसा की थी; इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत ही नहीं विदेशों में भी उनके कार्यों की प्रशंसा करनेवाले व्यक्ति थे, वस्तुतः वह एक महान वीर

थे, उनकी मृत्यु के बाद बंगाल में 'भगतसिंह की वीरता' नामक एक लघु पुस्तक भी छपी थी, किन्तु बंगाल की अंग्रेज सरकार इसे कैसे बर्दाश्त कर सकती थी; अतः यह पुस्तक जब्त कर ली गई। इसी प्रकार की एक छोटी-सी पुस्तक पंजाब में भी प्रकाशित हुई, जिसमें भगतसिंह के वीरतापूर्ण कार्यों और उनके बलिदान का वर्णन किया गया था। इसे भी पंजाब सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।

इस शहादत पर सरकार के विरोध में बंगाल के राष्ट्रवादी दलों ने विधान सभा का बहिष्कार किया। उस समय सदन में वित्त विधेयक पर बहस हो रही थी। कांग्रेस को छोड़कर अन्य सभी दलों ने सरकार के इस कार्य पर अपनी आपत्ति प्रकट की थी।

शहीद भगतसिंह के गांव बंगा में लोगों ने अपने खून से लिखकर शपथ ली थी कि वे भगतसिंह की फांसी का बदला लेंगे। पंजाब के कई स्थानों पर किसानों ने भूमि कर देने से इन्कार कर दिया। इसका कारण पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि उन्हें भगतसिंह की आत्मा ने दर्शन दिये और टैक्स न देने को कहा। 13 अप्रैल, 1931 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सभा हुई, जिसे सम्बोधित करते हुए डॉ० सैफुद्दीन किचलू ने कहा कि लोगों को संघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्होंने पुलिसवालों से भी प्रार्थना की कि यदि उन्हें जनता पर ज्यादतियां करने का आदेश मिले, तो वे नौकरी छोड़ दें। इस सभा के अध्यक्ष श्री इमामुद्दीन ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने को कहा। देखते ही-देखते विदेशी वस्तुओं की होली जल उठी। आने-जानेवाले लोगों ने भी इसमें कोई-न-कोई विदेशी चीज डालकर भाग लिया। पूरे पंजाब में 'बेईमान सरकार को तबाह कर दो', 'हम टैक्स नहीं देंगे', आदि नारे सुनाई देने लगे। स्वामी योगानन्द ने घोषणा की—"हम कर नहीं देंगे, देशवासियो गदर करो, रात को पुलिस थाने लूटकर जला दिये जाएंगे…।" बहादुरगढ़ में शिवकुमार नामक एक व्यक्ति ने 6 अप्रैल को यह कहकर एक सनसनी-सी फैला दी कि "वे एक खास व्यक्ति का इन्तजार कर रहे हैं, उनका इशारा मिलते ही खून की नदियां बहा दी जाएंगी।" इसी प्रकार 19 अप्रैल को अमृतसर में बोलते हुए भिकरेनसिंह ने कहा, [illegible] आनेवाला है,

यह दमनकारी सरकार मिटा दी जाएगी। इस काम के लिए लाला हरदयाल जर्मनी से हथियार ला रहे हैं, राजा महेन्द्रप्रतापसिंह बोल्शेविक सेना के साथ लाल झण्डा लेकर खैबर दर्रे से आ रहे हैं, रासबिहारी बोस, जापान से आ रहे हैं तथा मेरठ काण्ड के कैदी जेलें तोड़कर आ रहे हैं।" इस तरह के जोशीले समाचारों से अंग्रेजों की नींद हराम हो गई।

कुल मिलाकर भगतसिंह की शहादत ने सारे देश को झकझोर कर रख दिया। इससे लोगों को दुःख तो अवश्य हुआ, परन्तु उनका उत्साह कम नहीं हुआ, वरन वे और भी अधिक जोश के साथ अंग्रेजों को देश के बाहर निकाल देने को तैयार हो गये। भगतसिंह भारत के मन एवं मस्तिष्क में बस चुके थे। भारतवर्ष के हर गाँव और शहर में उनके नारे सुनाई देते थे। अखबारों के पहले पृष्ठ पर उन्हीं का चित्र दिखाई देता था, उनके चित्र धड़ाधड़ बिक रहे थे। वे भारतीय जनता के आराध्य देव बन चुके थे। अंग्रेज सरकार ने उनके शरीर को तो खत्म कर दिया, पर वे भारतीयों के दिलों से उन्हें निकालने में असमर्थ थे। भगतसिंह के चित्रों में उन्हें अंग्रेजी हुकूमत की मौत का साया नजर आता था, अतः अंग्रेज सरकार उनके चित्रों को भी जब्त करने से पीछे नहीं हटी। अंग्रेज उनसे इस कृत्य से कितने भयभीत थे, इस बात का अन्दाज इन घटनाओं से आसानी से लगाया जा सकता है कि होशियारपुर का पुलिस अधीक्षक घोड़े पर बैठकर कहीं जा रहा था, इतने में उसकी नजर एक पान की दुकान पर पड़ी; भगतसिंह का चित्र टँगा था, उसने इसे ब्रिटिश सरकार के काल जैसा देखा; वह घोड़े से उतरा, लपककर पनवाड़ी का गिरेबान पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया और चित्र को पाँवों तले कुचल डाला, इसे क्या कहा जा सकता है; खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे; जुल्म की इन्तहा : एक बौखला, पागलपन या कुछ और। किसी आदमी के शरीर या चित्र को नष्ट किया जा सकता है, लेकिन क्या उसके नाम को; उसकी यादगार को; उसके कार्यों को; उसकी दिखाई राह को? नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता। अंग्रेजों के इस व्यवहार ने भारतीयों को भगतसिंह का और भी अधिक दीवाना बना दिया।

कांग्रेस का करांची अधिवेशन :

मार्च, 1931 के अन्तिम सप्ताह में भगतसिंह की मृत्यु के बाद कांग्रेस का करांची में 46वां अधिवेशन हुआ। लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल इस अधिवेशन के सभापति थे। इस अधिवेशन में भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह भी उपस्थित थे। लोगों के दिलों में भगतसिंह की शहादत की याद एकदम ताजा थी, अतः इस अधिवेशन की शुरूआत मुर्दनी-सी छाये हुए माहौल में हुई।

अधिवेशन के आरम्भ में भगतसिंह सम्बन्धी प्रस्ताव रखा गया। प्रस्ताव की भाषा पर सम्मेलन में काफी वाद-विवाद रहा। कांग्रेस का नरम दल भगतसिंह के बलिदान की प्रशंसा करना चाहता था, परन्तु उनकी हिंसा के मार्ग को अस्वीकार करते थे। युवा पीढ़ी प्रस्ताव के इस संशोधन का विरोध कर रही थी। अन्त में नरम दल का ही प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार थी—

"कांग्रेस, जबकि किसी भी प्रकार की राजनीतिक हिंसा को अस्वीकार करती है और अपने-आपको इससे अलग रखती है, भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव की वीरता तथा बलिदान की प्रशंसा करती है तथा दुखी परिवारों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करती है। कांग्रेस का मत है कि इन तीनों को फांसी एक असंगत प्रतिशोध की भावना का कार्य है और राष्ट्र की ओर से सर्वसम्मतिपूर्वक क्षमा की मांग का एक सोचा-समझा अपमान है, और कांग्रेस इस विचार से सहमत है कि सरकार ने दोनों राष्ट्रों के बीच सद्भावना फैलाने तथा दल को शान्ति के मार्ग पर लाने, जो कि निराशा की स्थिति में राजनीतिक हिंसा को अपनाती है एक स्वर्णिम अवसर को खो दिया है, जिसकी इस गम्भीर परिस्थिति में आवश्यकता थी…।"

इन वीरों की रक्षा न कर पाने के लिए महात्मा गांधी को भी इस अधिवेशन में विरोध का सामना करना पड़ा। युवा वर्ग ने जब इस विषय में गांधीजी से सवाल पूछे तो उन्होंने केवल इतना ही कहा—

"भगतसिंह का जीवन बचाने के लिए वाइसराय से की गई याचना का कोई लाभ नहीं हुआ। मैंने एक बात अ कर ली होती कि सजा बदलने

को समझौते की शर्त बना लिया होता, जैसा आप लोगों का कहना है, किन्तु ऐसा नहीं किया जा सका और समझौता त्याग देने की धमकी एक विश्वासघात हो जाती। 'सजा बदलने' को समझौते की शर्त न बनाने के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी मुझसे सहमत थी, इसलिए मैं समझौते में केवल इसका जिक्र ही कर पाया। मैंने उदारता की आशा की थी, मेरी आशा पूरी नहीं हुई, पर यह समझौते को तोड़ने का आधार नहीं हो सकता।"

जब सम्मेलन में भगतसिंह के सम्बन्ध में प्रस्ताव चल रहा था तथा अधिवेशन की कार्यवाही चल रही थी, तो पण्डाल के बाहर नौजवान जोर-जोर से शोर करते हुए अपने गुस्से को प्रकट कर रहे थे। इससे एक दिन पूर्व इन्हीं नौजवानों ने गांधीजी को काले झण्डे दिखाये थे।

इस प्रस्ताव के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए नेताजी सुभाष चन्द्र बोस को कहना पड़ा था, "करांची की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि लोगों को प्रस्ताव की कड़वी गोली खानी पड़ी, जो सामान्य परिस्थितियों में भी इससे हजारों मील दूर रहते थे और जहाँ तक महात्मा गांधी का सम्बन्ध था, उन्हें अपने मन की बात प्रस्ताव की कार्यवाही में डालनी पड़ी। यद्यपि इस प्रस्ताव में उस समय संशोधन कर दिया गया, पर इससे विवाद का अन्त नहीं हुआ; कांग्रेस के राज्यों के सम्मेलनों में भी इस पर विवाद हुआ था।

भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु के मृत शरीरों का जो अपमान अंग्रेजों ने किया था; उसके बारे में इस सम्मेलन में बड़ी उत्तेजना देखने को मिली। अतः इसके लिए कांग्रेस की कार्यकारिणी ने एक जाँच समिति भी बनायी थी। इसके विषय में डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास' में लिखा है—

करांची में कांग्रेसियों को एक और बात ने उत्तेजित किया था, वह थी सरदार भगतसिंह और सुखदेव तथा राजगुरु के शवों के साथ अपमान-जनक व्यवहार की चारों ओर फैली अस्पष्ट खबर। इसलिए कार्यकारिणी ने इन आरोपों की जाँच के लिए एक समिति का गठन किया, जिसे 30 अप्रैल तक कार्यकारिणी को अपनी रिपोर्ट देनी थी। इसके साथ ही हम यह भी बता दें कि भगतसिंह के पिता जो इस पग के लिए सबसे अधिक

एकादश अध्याय

भगतसिंह का जीवन-दर्शन

प्रत्येक मनुष्य की जीवन में अपनी अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं। या यों कहिए कि जीवन के विभिन्न पहलुओं के विषय में हर एक मनुष्य अलग-अलग ढंग से सोचता और विचारता है। दल, धर्म, राजनीति आदि के विषय में लोगों के अलग-अलग विचार देखने में आते हैं। यही जीवन को देखने का अलग-अलग ढंग साधारणतया उसका जीवन-दर्शन कहा जाता है। यद्यपि भगतसिंह का जीवनकाल अधिक लम्बा नहीं रहा, उनका जन्म 27 सितम्बर, 1907 को हुआ तथा 23 मार्च, 1931 को उन्हें फाँसी दी गयी थी। इस प्रकार उनका कुल जीवन केवल 23 वर्ष 5 माह तथा 2[illegible] दिनों का रहा। इतने अल्प जीवन में उन्होंने जो कुछ भी कर दिखाया उसका महत्व अपने-आपमें अनूठा है। उनके जीवन-दर्शन अर्थात् उनके विचारों को संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

धर्म निरपेक्षता :

भगतसिंह धर्म को देश और राजनीति से अलग रखना चाहते थे। कदाचित् वह धर्म को राजनीति से मिलाने के दुष्परिणामों को जानते थे। उनकी दृष्टि में देश-प्रेम ही सबसे बड़ा धर्म था और देश ही उनका ईश्वर था। मार्च 1926 में उन्होंने लाहौर में 'नौजवान भारत सभा' का गठन किया था। [illegible] युवकों [illegible] थी कि वह दल के [illegible] को [illegible] से [illegible] रहकर [illegible]। [illegible] में [illegible] भगतसिंह के इन विचारों को [illegible] आवश्यकता है। [illegible] हो रहा है। [illegible]

कोशिश मे थे, इस विषय मे कोई प्रमाण प्रस्तुत नही कर सके, और न ही वे किसी प्रकार की सहायता देने के लिए समिति के सामने प्रस्तुत हुए। अतः इसका कोई परिणाम न निकला।"

भला जब शव ही जला दिये गए तो इसके बाद क्या प्रमाण मिल सकता था।

इस प्रकार हम देखते है कि भले ही अंग्रेजों ने यह सोचा हो कि भगतसिंह को फाँसी दे देने के बाद, भारतीय इस घटना को भूल जायेंगे, किन्तु इसके बाद के घटनाचक्र ने यह सिद्ध कर दिखाया कि उनका ऐसा सोचना स्वयं एक बहुत बड़ी भूल थी।

एकादश अध्याय

भगतसिंह का जीवन-दर्शन

प्रत्येक मनुष्य की जीवन में अपनी-अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं। या यों कहिए कि जीवन के विभिन्न पहलुओं के विषय में हर एक व्यक्ति अलग-अलग ढंग से सोचता और विचारता है। इस धर्म, राजनीति आदि के विषय में लोगों के अलग-अलग विचार देखने में आते हैं। यही जीवन को देखने का अलग-अलग ढंग साधारणतया उसका जीवन-दर्शन कहा जाता है। यद्यपि भगतसिंह का जीवनकाल अधिक लम्बा नहीं रहा। उनका जन्म 27 सितम्बर, 1907 को तथा 23 मार्च 1931 को उन्हें फाँसी दे दी गयी थी। इस प्रकार उनका कुल जीवन केवल 23 वर्ष 5 माह और 26 दिनों का रहा। इतने अल्प जीवन में उन्होंने जो कुछ भी कर दिखाया उसका महत्व अपने-आपमें अनूठा है। उनके जीवन-दर्शन तथा कुछ उनके विचारों का संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

धर्म निरपेक्षता .

कि धर्म का देश की राजनीति में कोई स्थान नहीं है, परन्तु आज लोग इसे एक प्रकार से भूल ही चुके हैं। लोगों की दृष्टि में धार्मिक कट्टरता के सामने देश के हितों का कोई मूल्य नहीं रह गया है।

भगतसिंह का जन्म भले ही एक सिख परिवार में हुआ था, किन्तु उनके जीवन को देखने से लगता है कि उन्होंने अपने को कभी भी एक सिख के रूप में नहीं देखा था। वह एक भारतीय थे; भारतीयता ही उनका धर्म था; भारतभूमि उनकी आराध्या देवी थी; वह समस्त भारत के थे और समस्त भारत उनका अपना था। 'नौजवान भारत सभा' का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य साम्प्रदायिकता रहित सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक संगठनों से सहानुभूति रखना भी था। वस्तुतः यदि भारत को अपने अस्तित्व की रक्षा करनी है, तो आज हमारे राष्ट्रीय नेताओं को इस बात पर ध्यान देना ही होगा कि साम्प्रदायिक आधार पर बने सभी प्रकार के संगठनों पर रोक लगाई जाए, अन्यथा इसके दुष्परिणामों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। राष्ट्र के भविष्य को सुनिश्चित रखने के लिए भगतसिंह के इस विचार से हमें प्रेरणा लेनी ही होगी।

राष्ट्रीय भावना का विकास :

भगतसिंह का यह निश्चित विचार था कि देश तभी मजबूत हो सकता है जब वहाँ के नवयुवकों में देशभक्ति की भावना का सही रूप में विकास हो। हमें यह कहने में थोड़ा-सा संकोच नहीं है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी भारत में इस भावना का उचित विकास नहीं हो पाया है, जबकि राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय यह भावना अपनी ऊँचाइयों पर थी। भगतसिंह इस तथ्य को जान गये थे कि भारत तभी एक रह सकता है, जब यहाँ के नवयुवकों में देशभक्ति की भावना हो। इसीलिए 'नौजवान भारत सभा' का सबसे पहला उद्देश्य ही यही था—'एक संयुक्त भारतीय गणराज्य के लिए भारतीय युवकों में देशभक्ति की भावनाओं को जगाना।'

इस भावना के न होने पर भले ही बाहरी रूप में देश की एकता बनी रहे, पर वास्तविक रूप में यह एकता केवल दिखावे की [illegible] जो देश के लिए कभी भी घातक हो सकती है।

समाजवादी दृष्टिकोण

भगतसिंह के राजनीतिक विचार समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित थे। नौजवान भारत सभा के निम्नलिखित दो उद्देश्यों में उनके इन विचारों का पहली बार परिचय मिलता है—

'किसानों एवं मजदूरों तथा संपूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य प्राप्ति के पास ले जाने वाले आन्दोलनों को समर्थन देना।'—'श्रमिकों तथा कृषकों को संगठित करना।'

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि नौजवान भारत सभा की स्थापना मार्च, 1926 में हुई थी, तब तक राष्ट्रीय कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य की बात सोची भी नहीं थी, तब तक कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटेन के एक अंग के रूप में स्वतन्त्र भारत का निर्माण था, न कि संपूर्ण प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र का निर्माण। कांग्रेस ने पहली बार सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग अपने लाहौर अधिवेशन में सन् 1929 में की थी। वास्तव में भगतसिंह कम्यूनिस्ट विचारों के जन्मदाता कार्ल मार्क्स तथा 1917 की रूसी क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित थे। इस बात का प्रमाण उनके जीवन की अनेक घटनाओं से मिलता है।

असेम्बली बम काण्ड में दिल्ली जेल में लगी सेशन जज मिडल्टन की अदालत में दिया गया उनका भाषण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भगतसिंह एक समाजवादी थे। उन्होंने यह भाषण 6 जून, 1927 को दिया था। इस भाषण के निम्नलिखित अंश देखिए—

"हमारा उद्देश्य यह है कि अन्याय पर आधारित' वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहिए। उत्पादक और श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं, तथापि शोषक लोग उन्हें श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर अन्न उगाने वाले किसान भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाजारों में कपड़ों की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीरों को ढकने के लिए पूरे कपड़े प्राप्त नहीं कर पाते, भवन-निर्माण, लोहारी और बढ़ईगीरी के काम में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते हैं और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूँजीपति, शोषक और समाज पर पर-

की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों को पानी की तरह वहा देते हैं।...क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है जिसे इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाए। इसका परिणाम यह होगा कि विश्व संघ मानवजाति को पूंजीवाद के बन्धन तथा युद्ध से उत्पन्न होने वाली बर्बादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।"

इस प्रकार की विषमताओं को दूर करने का इलाज उनका केवल समाजवाद ही था। वह समाजवाद से किस सीमा तक प्रभावित थे, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि लाहौर सेण्ट्रल जेल में भी उन्होंने मार्क्स तथा रूसी क्रान्ति की पुस्तकें मँगाई थीं और फांसी चढ़ने से कुछ ही देर पहले तक वह लेनिन की जीवनी पढ़ने में डूबे हुए थे।

देश को नेता नहीं स्वयंसेवक चाहिए :

भगतसिंह काम करने में विश्वास करते थे, नेतागीरी करने में नहीं। देश का कल्याण इसी में है कि वहाँ के राजनीतिक व्यक्ति अपने को नेता न समझकर; जनता का सेवक, एक कार्यकर्त्ता अथवा जनसेवक समझें। भारत में समाजवाद की स्थापना के उद्देश्य से क्रान्तिकारियों ने 'भारत 'समाजवादी गणतन्त्र संघ' की स्थापना की थी। इस विषय में भगतसिंह ने लिखा था—

"मैं नौजवानों से कहना चाहता हूँ कि वे इस काम में कार्यकर्त्ता के रूप में भाग लें, जहाँ तक नेताओं का सवाल है वे पहले से ही बहुत हैं। हमारी पार्टी को नेता नहीं चाहिए। यदि आप सांसारिक प्राणी हैं, पारिवारिक प्राणी हैं, तो हमारे पास न आएँ। किन्तु यदि आप हमारे उद्देश्य से सहानुभूति रखते हैं, तो दूसरी तरह से हमारी सहायता करें। केवल कड़े अनुशासन से रहनेवाले लोग ही आन्दोलन को आगे बढ़ा सकते हैं।"

किन्तु आज हमारे राजनीतिक दलों की स्थिति इ[illegible] म विपरीत है, इनमें अनुशासन जैसी कोई चीज नहीं है; हाँ [illegible] व्यक्ति-पूजा को तो अनुशासन कहा नहीं जा सकता। [illegible] भी

सदस्य कार्यकर्त्ता बनकर नहीं रहना चाहता,सभी की नजर कुर्सी पर रहती है, हर कोई नेता ही बनना चाहता है।

मानवता / हिंसा :

ऊपर लिखा जा चुका है कि भगतसिंह पर समाजवादी विचारों का प्रभाव था। अतः वह मानवता के प्रबल समर्थक थे। मनुष्य का जीवन उनकी दृष्टि में सबसे अधिक पवित्र वस्तु था। उन्हें अंग्रेजों से कोई व्यक्तिगत शत्रुता नहीं थी। अपने इन विचारों का परिचय देते हुए उन्होंने दिल्ली जेल में लगी अदालत में कहा था—

"मानवमात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से कम नहीं है, अत किसी के प्रति विद्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव जीवन इतना पवित्र है कि उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता।···किसी को चोट पहुँचाने के बजाय मानवजाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर है। हम साम्राज्यवादी सेना के उन भड़ैत सैनिकों की तरह नहीं हैं, जो हत्या करने में आनन्द लेते हैं। इसके विपरीत हम मानव जीवन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे।"

स्पष्ट है कि भगतसिंह व्यर्थ के रक्तपात के पक्ष में नहीं थे, किन्तु भारत की आजादी के लिए इस समय उन्हें हिंसा का सहारा लेना पड़ा था। उन्होंने ऐसा क्यों किया?—उनका उत्तर भी उन्होंने अपने इस भाषण में स्वयं दिया है—

"हमने पिछले खण्ड में काल्पनिक हिंसा शब्द का प्रयोग किया है, हम उसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि में बल प्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है जब वह आक्रमण की विधि से किया जाए, किन्तु जब बल का प्रयोग किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाए, तो वह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत हो जाता है। बल प्रयोग का पूरी तरह बहिष्कार कोरी काल्पनिक गलतफहमी है।"

भगतसिंह के इन शब्दों में कितनी सच्चाई है, इसका फैसला पाठक स्वयं कर सकते है। क्या हमारा कोई शत्रु हमारे देश पर आक्रमण कर दे, या व्यक्तिगत जीवन में ही कोई हमें हानि पहुँचाए; हमारा जीना दूभर

करते हैं, तो हमारा इस तरह मरना कहाँ तक उचित है? और कोई उन्हें कह सकता है कि यदि आदमियों में ही विवेकशक्ति सम्भव होती, तो किसी देश को सेना अथवा पुलिस तथा गुप्तचरों के लिए पुलिस आदि की व्यवस्था करने की कोई जरूरत ही न रहती। इसीलिए क्रान्तिकारी आदर्शों के लिए बल प्रयोग, अर्थात् हिंसा के प्रयोग को सर्वथा अनुचित नहीं मानते थे। सम्पूर्ण राष्ट्र के हित को ध्यान में रखकर ही उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध हिंसा का मार्ग अपनाया था, किन्तु उनकी यह हिंसा भावनाओं से ऊपर थी। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण भारत भूमि को स्वतन्त्र करना था; न कि अंग्रेज जाति से कोई वैर की भावना।

अपनी सभ्यता एवं संस्कृति पर गर्व

किसी भी सच्चे राष्ट्रप्रेमी के हृदय में अपने देश की संस्कृति तथा सभ्यता के लिए अनुराग होना स्वाभाविक है, अतः भगतसिंह भी इसके अपवाद नहीं थे। यद्यपि वह साम्यवादी विचारों के प्रबल समर्थक थे; धर्म में उनकी कोई विशेष आस्था नहीं थी, रूसी क्रान्ति के जनक लेनिन उनके आदर्श थे, तथापि उन्हें भारत, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से अपार प्रेम था। इसी प्रेम के कारण उन्होंने अपने जीवन में समस्त सुख-सुविधाओं को तिलाञ्जलि देकर क्रान्ति का कठोर मार्ग अपनाया था। उनके संस्कृति प्रेम का परिचय भी 'नौजवान भारत सभा' के गठन से स्पष्ट रूप में प्राप्त होता है। अन्य बातों के साथ ही इस सभा का एक महान् उद्देश्य भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषाओं का प्रचार करना भी था।

भारतीय इतिहास के दो महापुरुष गुरु गोविन्द सिंह तथा छत्रपति शिवाजी के लिए उनके दिल में अपार श्रद्धा थी। उनके विचारों के अनुसार ये दो महापुरुष भारतीय इतिहास के महान् क्रान्तिकारी थे। इन दोनों को वह अपनी क्रान्ति का प्रेरणास्रोत मानते थे—

"इस देश में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आन्दोलन गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी, कमाल पाशा और रिजा खाँ, वाशिंगटन और गैरी बाल्डी तथा लाफरेते और लेनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण कर...

गीता भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण रचना है। भगतसिंह को गीता ने भी प्रभावित किया था। अपने जेल के जीवन में शायद वह कम्यूनिस्ट साहित्य के साथ ही गीता का भी अध्ययन करते रहते थे। सम्भवत. गीता के निष्काम कर्मयोग से प्रभावित होकर ही उन्होंने सुख-शान्ति का जीवन छोड़कर निष्काम भाव से मातृभूमि की सेवा का मार्ग अपनाया था। उनके गीता प्रेम का परिचय उनके एक पत्र से प्राप्त होता है। यह पत्र उन्होंने दिल्ली जेल से अपने पिता सरदार किशनसिंह को लिखा था, जब वह असेम्बली बम काण्ड में पहली बार गिरफ्तार हुए थे—

"हाँ, अगर हो सके, तो 'गीता रहस्य' नेपोलियन की मोटी सुआने उमरी, जो आपको कुतुब में मिल जाएगी और अंग्रेजी के कुछ नावल लेते आना।"

इस तरह बिना कोई इच्छा के सच्चाई के लिए लड़ते रहना तथा मृत्यु से बिलकुल भी भयभीत न होना इत्यादि गुण स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि उन्होंने गीता का अध्ययन अत्यन्त गम्भीरता के साथ किया था, जिनसे प्रभावित हुए बिना वह नहीं रह सके। लाहौर के अपने डी० ए० वी० स्कूल के विद्यार्थी जीवन में संस्कृत उनका प्रिय विषय था, इसका उल्लेख उनके प्रारम्भिक जीवन के अन्तर्गत हो चुका है।

बलिदान आवश्यक :

शहीद भगतसिंह की यह निश्चित अवधारणा थी किसी लक्ष्य को पाने के लिए बलिदान आवश्यक है। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। अतः इसके लिए वह कठिन से कठिन परीक्षा भी देने को तैयार थे, और उन्होंने दी भी; अपने जीवन का बलिदान देकर उनका कहना था कि लक्ष्य की प्राप्ति आसानी से नहीं होती; इसके लिए लगातार प्रयत्न करना पड़ता है—

"....मैं युवकों से अपील करना चाहूँगा कि समाजवादी प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए उत्साहपूर्वक कार्य करें। यदि वे इस संघर्ष को बिना थके करते चले जाते हैं तो वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं, पर एक वर्ष में नहीं, अपितु भारी बलिदान और कठिन परीक्षाओं के बाद!"

कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ता है, कुछ ही नहीं, बहुत कुछ खोना पड़ता है, इस भावना से कार्य करने वाला ही लक्ष्य को प्राप्त करता है, इन पंक्तियों से यही शिक्षा प्राप्त होती है। भगतसिंह को जब लाहौर जेल की काल कोठरी में भेजा गया तो उस समय अपने अन्य मित्रों को विदाई देते हुए उन्होंने कहा था—

"साथियो! मिलना तथा बिछुड़ना तो लगा रहता है, हो सकता है हम फिर मिल सकें। जब आपकी सजा पूरी हो जाए तो घर पहुँचकर सांसारिक कार्यों में न उलझ जाना। जब तक आप भारत से अंग्रेजों को निकालकर समाजवादी गणतन्त्र स्थापित न कर लें, आराम से न बैठें। यह मेरा आपके लिए अन्तिम सन्देश है।"

अर्थात् चलते रहो, रुको मत; तब तक, जब तक कि मंजिल न मिल जाए, यही उनका सिद्धान्त था। यह एक श्रेष्ठ प्रकार की त्याग भावना है।

एकता के समर्थक :

भारत विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों का देश है। यहाँ विभिन्न धर्मों के मानने वाले लोग सदियों से एक साथ रहते आये हैं; साथ ही यह भी सत्य है कि यहाँ विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों में से अधिकतर एक ही पूर्वजों की सन्तान हैं। इस प्रकार धार्मिक विश्वासों के अलग होने पर भी वे भाई-भाई हैं, किन्तु कभी-कभी कुछ फिरकापरस्त लोगों के शतरंज के मोहरे बनकर वे आपस में ही एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। एक सच्चा इन्सान, जो सच्चे अर्थों में धर्म को मानता है, इस प्रकार के कार्यों एवं विचारों को कभी उचित नहीं कह सकता। शहीद भगतसिंह जो एक सच्चे मानव थे, उनकी दृष्टि में मानवता ही सबसे बड़ा धर्म थी; वे सभी भारतीयों को आपस में भाई मानते थे। अतः इनको आपस में लड़ते देखकर उनकी आत्मा रो उठती थी। इस विषय में श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ने एक घटना का उल्लेख किया है—

'वे (भगतसिंह) रात में चौबारे की छत पर अकेले बैठे रो रहे थे। बहुत दिनों तक मैं इसे उनकी घरेलू परिस्थिति का फल समझा

एक दिन रात मे कोई बारह बजे मेरी आँखें खुलीं तो सिसकियाँ भर-भर कर रो रहे थे। मैंने उन्हें धीरज बंधाया, तब रोने का कारण पूछा, तो बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोले—"मातृभूमि की दुर्दशा को देखकर मेरा दिल छलनी हो रहा है। एक ओर विदेशियों के अत्याचार, दूसरी ओर भाई भाई का गला काटने को तैयार है। इस हालत मे ये बन्धन कैसे कटेंगे ?"

1925 मे जब भगतसिंह दिल्ली मे 'वीर अर्जुन' मे काम करते थे, तो उन दिनों देश साम्प्रदायिक दगों की आग मे जल रहा था, दिल्ली भी इससे अछूती नहीं रही, अतः भगतसिंह जैसे सच्चे राष्ट्रभक्त का इस प्रकार के हालातों को देखकर दु खी होना स्वाभाविक ही था।

समस्त भारतवासी आपस मे एक होकर रहे, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने जून 1928 मे लाहौर मे 'विद्यार्थी यूनियन' बनायी थी। अधिकतर विद्यार्थी ही इसके सदस्य बनाये जाते थे। क्योंकि विद्यार्थी ही भावी राष्ट्र के निर्माता होते है। देश की एकता के लिए सामाजिक बुराइयों को दूर करना इस यूनियन का मुख्य कार्य था। द्वितीय अध्याय मे लिखा जा चुका है कि यह यूनियन हिन्दुओं और मुसलमानों के जाति-पाँति, छुआछूत आदि संकीर्ण विचारों को दूर करने के लिए मिले-जुले भोजों का आयोजन करती थी, जिसमे सभी जातियों और धर्मों के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे। इस सभा के अनेक सदस्यों ने अपने-अपने धर्म की कुप्रथाओं पर लेख लिखे थे तथा जातिवाद का जमकर विरोध किया था।

इस प्रकार शहीद भगतसिंह राष्ट्रीय भावना के विकास के प्रबल समर्थक, धर्म निरपेक्ष राजनीति के विचारक तथा एक ऊँचे आदर्शों वाले समाजवादी थे। वह मानवता के सच्चे प्रेमी, कोरे आदर्शवाद के विरोधी, अपनी संस्कृति एवं सभ्यता पर अभिमान करने वाले और राष्ट्रीय एकता के प्रचारक भी थे। उन्होंने भारत के सुनहरे भविष्य का स्वप्न देखा था; वे एक सच्चे मनुष्य और सच्चे भारतीय थे, जिन्होंने भारत को स्वाधीन करने के लिए अपने अमूल्य प्राणों का भी बलिदान कर दिया।

जिसके बुद्धियुक्त स्पष्ट चेहरे से विद्रोही कृतियों की झलक मिलती थी।"

अपने देश से प्रेम करना कोई अपराध नहीं है। यदि कोई अपनी मातृभूमि की रक्षा-सुरक्षा अथवा उसकी आज़ादी के लिए उसके शत्रुओं को भयभीत कर दे; उन्हें आतंकित कर दे तो इसे उसका दुर्गुण नहीं कहा जा सकता; यह तो एक श्रेष्ठ कार्य है; तब उसे किस आधार पर आतंकवादी कहा जा सकता है! भगतसिंह एक ऐसे ही सूरमा थे। अपने 2 फरवरी, 1931 को देश के युवकों के नाम दिये गये सन्देश में उन्होंने यही बात कही थी—

"यह बात प्रसिद्ध है कि मैं आतंकवादी रहा हूँ, लेकिन मैं आतंकवादी नहीं हूँ। मैं एक क्रान्तिकारी हूँ, जिसके कुछ निश्चित विचार, निश्चित आदर्श तथा लम्बा कार्यक्रम है।"

यदि अपने देश की रक्षा के लिए कोई शत्रु की हत्या करे तो उसे अपराधी नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा होता, तो देश की रक्षा के लिए लड़ने वाले योद्धा भी अपराधी कहे जाते। यही बात भगतसिंह पर भी लागू होती है, जिसे उन्होंने असेम्बली बम काण्ड की लाहौर उच्च न्यायालय में स्वयं कहा था—

पहली बात यह है कि हमने असेम्बली में जो बम फेंके थे, उनसे किसी व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टि से जो सजा हमें दी गई है, वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावनायुक्त भी है। दूसरी दृष्टि से देखा जाए, तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाए, उसके असली उद्देश्य का पता नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए, तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को दृष्टि में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नज़र आएँगे, सरकारी टैक्स वसूल करने वाले अधिकतर चोर-जालसाज़ दिखायी देंगे और न्यायाधीशों पर कत्ल का आरोप लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता, खून-खराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए, तो हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे। उद्देश्य की उपेक्षा करने पर धर्म-प्रचार झूठ का

प्रचार दिखायी देगा और हरएक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उन करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को दृष्टि दिया जाए तो हज़रत ईसामसीह गड़बड़ करनेवाले, शान्ति भंग करनेवाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे। कानून के शब्दों में खतरनाक व्यक्तित्व माने जाएँगे।"

वास्तव में भगतसिंह एक युद्धबन्दी थे। उन्होंने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए, उसकी गुलामी को समाप्त करने के लिए अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध युद्ध किया था। ऐसा उनका स्वयं भी मत था। अतः यदि अंग्रेज उन्हें आतंकवादी कहते थे, तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे वास्तव में सत्य कहते थे, क्योंकि राजनीति में अपने शत्रु को लोगों की नजरों में नीचा दिखाने के लिए ऐसा कहने का कोई महत्त्व नहीं होता।

विभिन्न विद्वानों-राजनीतिज्ञों की दृष्टि में :

इतना तो स्पष्ट है कि भगतसिंह भारतमाता के सच्चे सपूत और सेवक थे, चाहे विदेशी अंग्रेज सरकार उन्हें कुछ भी क्यों न कहे। इस अद्वितीय वीर के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं कि भारत ही नहीं विदेशी विद्वान तथा राजनीतिज्ञों ने इनका महत्त्व स्वीकार किया है।

भगतसिंह ने भारतवर्ष के सुन्दर भविष्य की कल्पना की थी। कांग्रेस ने भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य की माँग अपने लाहौर अधिवेशन में की थी, जबकि भगतसिंह इससे पूर्व ही पूर्ण स्वतन्त्रता को अपने कार्यक्रमों का लक्ष्य बना चुके थे। इस प्रकार भगतसिंह एक भविष्यद्रष्टा कहे जा सकते हैं। उनके इसी गुण के विषय में डॉ० राम मनोहर लोहिया ने कहा था कि "व्यक्तिगत रूप से कायर किसी देश की स्वतन्त्रता के लिए उतने खतरनाक नहीं होते, जितने सामाजिक और आर्थिक विषमताओं की समझ न रखने-वाले वीर योद्धा और बढ़-चढ़कर बोलनेवाले राजनीतिज्ञ होते हैं। अपने समकालीनों से कहीं ऊँचा भगतसिंह अपने समय से आगे था। उसने भारत के भविष्य की परिकल्पना आधी शताब्दी से पूर्व ही कर ली थी।"

"भगतसिंह का व्यक्तित्व सभी गुणों से सम्पन्न था, उसमें एक जादू-सा था, जो उनके सम्पर्क में आनेवाले हर व्यक्ति पर अपनी

बिना नहीं रहता था। उनके इसी गुण की चर्चा करते हुए डॉ० सतपाल लिखते हैं, "मुझे कांग्रेस तथा 'नौजवान भारत सभा' में भगतसिंह के साथ काम करने का अवसर मिला। अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में मुझे उन जैसा उपयोगी, जोशीला, चतुर, साहसी तथा समझदार युवक शायद ही मिला हो। इश्तहार चिपकाने को वे तैयार, दरियाँ बिछानी हों, तो वे तैयार, भाषण करवाना हो, तो आग बरसा दे। मतलब यह है कि प्रत्येक कार्य वे लगन से करते थे। जनता पर उनके असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे स्वार्थ, ईर्ष्या या लोभ से सदा दूर रहते थे। उनके चरित्र में इतने गुण थे कि उनमें शालीन पुत्र, प्रिय साथी तथा आदरणीय नेता को एक साथ पाया।"

पण्डित मोतीलाल नेहरू भगतसिंह से किस सीमा तक प्रभावित थे, इसका प्रमाण उनके अनेक बार भगतसिंह से मिलने तथा उन्हें बचाने के प्रयत्नों से अच्छी तरह मिल जाता है। उन्होंने केन्द्रीय विधान सभा में बोलते हुए एक बार कहा था, "ये नौजवान उपासना करने के योग्य तथा महान आत्मा वाले वीर थे।"

पण्डित मोतीलाल नेहरू की तरह महामना मदनमोहन मालवीय के हृदय में भी भगतसिंह के लिए अपार आदर भावना थी; उन्होंने भगतसिंह राजगुरु तथा सुखदेव की फाँसी की सजा बदलवाने के लिए वायसराय से दया की अपील भी की थी। इन वीरों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा था, "भगतसिंह तथा उनके साथी साधारण अपराधी नहीं हैं। ये वे व्यक्तित्व हैं, जिनके हिंसा कार्यों की, जिनके लिए वे दोषी प्रमाणित किये गये हैं, जितनी आलोचना की जाए, किन्तु वे ऐसे व्यक्ति हैं, जो स्वार्थमय भावनाओं से प्रेरित नहीं हैं। वे सभी ऐसे व्यक्ति हैं, जो देशभक्ति की उच्च भावना तथा स्वदेश की स्वतन्त्रता की भावना से प्रेरित हुए हैं।"

महान समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्रदेव ने क्रान्तिकारी भगतसिंह की प्रशंसा करते हुए कहा था, "भगतसिंह तथा दूसरे क्रान्तिकारियों में एक बड़ा अन्तर यह है कि उन्होंने असाधारण रूप से इस बात की घोषणा की थी कि भारत को दासता के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त है। उनका शौर्य एक विशेष वस्तु है, जो हमारे लिए सदा प्रेरक उदाहरण

रहेगा। जो राष्ट्र दीर्घकाल तक पराधीन था, जिसमें राष्ट्रीय तत्त्व शेष नहीं रह गया था, जो यह सोचता था कि विदेशी शक्ति का सामना करने का साहस मुझमें नहीं है और जो अंग्रेजों का चेहरा देखकर भयभीत हो जाता था, उस राष्ट्र के लिए शूरवीरता के ऐसे उदाहरण प्रिय क्यों न हों। भगतसिंह का नाम लेने ही हृदय में बिजली-सी कौंध जाती है। थोड़ी देर के लिए मानवीय दुर्बलताएँ दूर हो जाती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको भावुकता के नये संसार में पाता है।"

वास्तव में पराधीन भारत को स्वाधीनता का महत्त्व समझाने के लिए तथा उसकी राह दिखाने में भगतसिंह ने एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य किया था, उन्होंने गुलाम भारतीयों को सन्देश दिया था कि गुलामी के अपमानपूर्ण जीवन से सम्मान के साथ मातृभूमि की सेवा करते हुए मृत्यु का आलिंगन करना श्रेयस्कर है। उनके लिए मातृभूमि की स्वतन्त्रता ही जीवन का लक्ष्य था। उनके क्रान्तिकारी साथी विजयकुमार सिन्हा के ही शब्दों में—"जहाँ तक आत्मत्याग की भावना का प्रश्न है, उनके पास पर्याप्त मात्रा में थी। वह क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए प्राण तक को न्यौछावर करने के लिए हरदम तैयार रहता था। जब वह असेम्बली में बम फेंकने के लिए जा रहा था, तो किसी ने परामर्श दिया कि उसे बम फेंकने के बाद बच निकलना चाहिए, परन्तु उसने इस बात का डटकर विरोध किया। उसने इस बात पर बल दिया कि उसे स्वयं अपने-आपको गिरफ्तार करवा-कर दोषी सिद्ध करवाना चाहिए, ताकि वह अपने समाजवादी सिद्धान्तों को और अधिक प्रभावशाली ढंग तथा प्रेरणा द्वारा प्रचारित कर सके। साण्डर्स वध पर पार्टी नहीं चाहती थी कि वह इसमें भाग ले, परन्तु भगतसिंह खतरा उठाने के लिए इतना तीव्र इच्छुक था कि उसे अन्त तक न रोका

भगतसिंह की उदात्त देशभक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पूर्व उपकुलपति कृपालसिंह नारंग लिखते हैं—

"भगतसिंह का क्रान्तिकारी जीवन भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए एक प्रकाश दीप का प्रतीक है। वे एक असाधारण दृष्टि एवं ऊर्जा नवयुवक थे, जिन्होंने भारत की आत्मा को झकझोरा और विश्व की महानतम साम्राज्यवादी शक्ति को चेतावनी दी। वे एक सच्चे और उदात्त देशभक्त थे। उन्होंने अपनी भारतमाता को स्वतन्त्र कराने के लिए जो निर्भयतापूर्ण बलिदान दिया, उसका परिणाम यह रहा है कि तत्कालीन नवयुवकों में एक नवीन चेतना एवं उत्साह भर गया। स्वतन्त्र भारत इसके लिए उनका अत्यधिक ऋणी है और उनके पराक्रमयुक्त कार्यों को कभी नहीं भुला सकता। अपने अद्वितीय राष्ट्रप्रेम एवं बलिदान द्वारा उन्होंने अपने समकालीन भारतीय नवयुवकों के समक्ष अतीव निराशा को छिटककर राष्ट्र-निर्माण, सम्मान एवं उज्ज्वल पथ का निर्माण किया।"

शहीद भगतसिंह भारतीय जनमानस में वीरता एवं बलिदान के प्रतीक बन गये हैं। इसी ओर संकेत करते हुए पूर्व केन्द्रीय मन्त्री डॉ० कर्णसिंह ने लिखा है, "भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए जिन्होंने अपने जीवन का बलिदान दिया, उन सब में सरदार भगतसिंह एक वीर योद्धा एवं नाटकीय व्यक्तित्व थे। वह पंजाब के रहने वाले थे, और उनके मनुष्यत्व एवं साहस की परम्परा के साथ 'भगतसिंह बलिदान' सरीखा महान कार्य करके उस विद्रोह की विचारधारा के प्रतीक बन गये, जिसे तत्कालीन भारतीय युवा पीढ़ी ने अपनाया। उनकी कहानी एक पौराणिक कथा बन गई है और उनका नाम स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में देशभक्ति एवं बलिदान का पर्यायवाची बन गया है।"

अपने इन महान् कार्यों के लिए भगतसिंह भारतीयों के दिलों में सदा जिन्दा रहेंगे। भगतसिंह तथा उनके दो अन्य साथियों को फाँसी दे दिये जाने पर लाहौर के उर्दू दैनिक समाचार-पत्र 'पयाम' ने लिखा था—

"हिन्दुस्तान इन तीनों शहीदों को पूरे ब्रितानिया से ऊँचा समझता है। अगर हम हजारों-लाखों अंग्रेजों को मार भी गिराएँ, तो भी हम पूरा बदला

नहीं चुका सकते। यह बदला तभी पूरा होगा अगर तुम हिन्दुस्तान को आज़ाद करा लो। तभी ब्रितानिया की शान मिट्टी में मिलेगी। ओ भगतसिंह! राजगुरु! और सुखदेव! अंग्रेज खुश हैं कि उन्होंने तुम्हारा खून कर दिया है, लेकिन वो गलती पर हैं। उन्होंने तुम्हारा खून नहीं किया, उन्होंने अपने ही भविष्य में छुरा घोंपा है। तुम ज़िन्दा हो और हमेशा ज़िन्दा रहोगे।"

भगतसिंह जैसी विभूतियाँ कदाचित् ही जन्म लेती हैं। इसी विषय में श्री के० के० खुल्लर ने लिखा है—

"भगतसिंह के जीवन और मृत्यु का निष्कर्ष यह है कि व्यक्तियों के दमन से विचारों का दमन नहीं किया जा सकता। भगतसिंह जैसा व्यक्ति अनेक शताब्दियों में एक बार जन्म लेता है। उसने मृत्यु का वरण किया, ताकि जीवित रहे।"

भगतसिंह के गुणों से पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी अभिभूत थे। भगतसिंह के जेल के जीवन में भी वह उनसे मिलते रहे थे। भगतसिंह के विषय में उन्होंने प्रशंसा करते हुए और उनके महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहा था कि "क्या कारण है कि यह नवयुवक अचानक ही इतना लोकप्रिय हो गया।" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस शहीद भगतसिंह को एक प्रतीक के रूप में मानते थे—"भगतसिंह आज एक व्यक्ति नहीं एक प्रतीक है। उसने विद्रोह चेतना को प्रकट किया है।"

भगतसिंह की जीवनी लेखक मेजर गुरुदेव सिंह दयोल ने उन्हें एक सच्चा क्रान्तिकारी बताते हुए लिखा है—

"भगतसिंह वास्तविक अर्थों में एक क्रान्तिकारी थे। उनका विश्वास था कि उचित गन्तव्य की प्राप्ति के लिए हर प्रकार के साधनों का प्रयोग उचित है। अपने संक्षिप्त राजनीतिक जीवन में उन्होंने कभी भी अपने बारे में चिन्ता न की और न ही अपने-आपको ऐसे अवसरों पर बचाने की कोशिश की, जबकि कर्तव्य इसकी माँग करता था।"

इस प्रकार भगतसिंह के कार्यों का अवलोकन करने पर कहा जा सकता है कि इतनी छोटी अवस्था में भी भगतसिंह [illegible]ऊँचे आदर्शों के उस उन्नत शिखर पर पहुँच गये थे, उन्होंने वह अद्[illegible] [illegible]गाया,

जिसकी साधारण आदमी अपने जीवन मे कल्पना भी नही कर सकता। भारत राष्ट्र के निर्माण मे, उसकी नीव मे भगतसिंह का जो योगदान रहा है, उसके लिए यह देश उनका तब तक ऋणी रहेगा, जब तक कि इसका अस्तित्व रहेगा। हमारी सस्कृति मे देवता शब्द का अर्थ देने वाला भी है, भगतसिंह ने भारतराष्ट्र के निर्माण मे अपनी सर्वप्रिय वस्तु; अपना जीवन भी बलिदान कर दिया इस दृष्टि से वह इस देश के लिए देवतुल्य कहे जा सकते हैं। वह त्याग, देशभक्ति तथा बलिदान के प्रतीक बन गये है। किसी भी सद्गुण का प्रतीक बन जाना अपने-आपमे अद्वितीय है, इसे मानव जीवन की सार्थकता कहा जा सकता है। यह सर्वोच्च उपलब्धि है। सन. भगतसिंह का मूल्याकन अथवा उनका स्थान निर्धारण कर पाना सम्भव नहीं है। उनकी किसी के साथ तुलना नही की जा सकती। अन्त मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह स्वय मे अपनी उपमा है, भगतसिंह, भगतसिंह के ही समान है।